॥ जैनाचार्य श्रीमद् चिदानन्द स्वामि विरचित

॥ जिनाज्ञा विधि प्रकाश ॥

भाषा ग्रन्थ प्रकाश ७

॥ प्रसिद्धकर्त्ता बाबूसाहेब रायबद्रीदासजी बहादुर

कलकत्ता निवासी की आज्ञासे जमनालाल कोठारी.

ग्रन्थ मिलनेका पता

शा० भीमजी हीरजी की कंपनी

जैन बुकसेलर्स एन्ट कमीशन एजंटस

पायधुनी नं० [illegible]

बम्बई

कीमत ॥) डाक महसूल अलग

महालक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस — बम्बई

श्री

उपोद्घात.

" प्रस्तुत यह प्रकाश करते हमे बहुत ही दुःख होता है की (जिनाज्ञा विधी प्रकाश) ग्रंथ जिन महात्माने रचा था. उनका स्वर्गवास स १९७९ में होगया ग्रंथ छापनेके लीये राममताप रतलाम नीवासीको दीया गया था उसने फक्त २६ फरमे छापे, ओर अन्त तो गरबा स १९८९ मुदतमे महालक्ष्मी छापखानेका संपादक होकर दिवाला नीकाल दीया, इस वक्त यह हस्त लीखीत ग्रंथ, छापखानेका सामान साथ लिलाम हुआ उसमें नस्ट होगया अब न तो ग्रंथ रचनेवाले रहे न ग्रंथ है जिसमें संपूर्ण कीया जावे श्रीयुत् मोहनलालजी महाराजने अनुग्रह करके ज्ञानखातेमें रु २०० दीलाकर यह २६ फरमे रामपरतापसे लेकर लालबागमें रखलीये थे सो बच गये इस लीए उक्त महाराजके हम बहुत कृतज्ञ हे अगर एसा नहि होता तो संपूर्ण ग्रंथ नष्ट हो जाता इस ग्रंथमें छ प्रकाश हे जिसमें ५ प्रकाश सम्पूर्ण ओर थोडा छठा प्रकाश छपा है बाकीमे सामायक प्रतिक्रमणके पाठ अर्थ हेतु युक्तीसहीत तथा गर्भ जागरणकी वीधी विगेरेका विषय था वह सब नष्ट हो गये

ओर जो छपा है उसमे इस प्रकार रचना की गई है प्रथम प्रकाशमें मंगलाचरण ओर सम्बन्ध चतुष्टयका वर्णन दुसरे प्रकाशमें वर्तमान कालके साधु श्रावकोका स्वरुप तथा जैन मतकी व्यवस्थाका वर्णन तीसरे प्रकाशमे शास्त्रानुसार साधुके स्वरुपका वर्णन चोथे प्रकाशमे कारण कार्य निश्चय व्यवहारका कथन पाचवे प्रकाशमे दर्शनपूजा तीर्थयात्राकी विधीका वर्णन ओर छठे प्रकाशमे पचखाणकी बाकी संपूर्ण होकर समायककी विधी अधुरी रह गई इस ग्रंथकी उत्तमताके विषयमे ज्यादे न लिखकर यही कहेना बस होता है की पाठकोको ग्रंथ पढनेसे इसकी उत्तमता मालुम होगी दिलगीरी सबब इस बातकी हे की एसा उपयोगी ग्रंथ भव्य जीवोके वास्ते संपूर्ण प्रसिद्ध नही हो सका मेरे बहोत मित्रोने आग्रह कीया इसमे जितना छप चुका उतनाही प्रसिद्ध कीआ है, आशा है की इस ग्रंथसे आत्महीतार्थी भव्य जीव अवलोकन करके जिनाज्ञासहीत क्रियामे तत्पर होकर आतमाका कल्याण करेंगे

चतुर्विध संघका दास

जमनालाल कोठारी.

॥ श्री जिनाज्ञा-विधि-प्रकाश ॥

प्रथम प्रकाश।

मंगलाचरण।

सोरठा।

केवल ज्ञान अनन्त, आदिनाथ प्रगटावियो।
याते प्रथम नमन्त, सुलभ मोक्ष मारग करन ॥ १ ॥

दोहा।

तपे अगन मिथ्यात की, लहै शान्ति भव जीव।
तातें वन्दन करत हौं, शान्ति नाथ सुखसींव ॥ २ ॥
विषय वासना अनितता, नेमनाथ दरसाय।
तिन को वंदन करन तें, नेक न विषय सताय ॥ ३ ॥
पार्श्वनाथ को प्रणमिये, जिन के वाल गोपाल।
तुरतै जिन मारग लहैं, मिटैं सकल जंजाल ॥ ४ ॥
शासनपति स्वामी सबल, वर्द्धमान भगवान।
भक्ति सहित वंदन किये, होय सकल कल्यान ॥ ५ ॥
सद्गुरु आतम ज्ञान को, फुरमायो उपदेश।
भाव सहित वंदन करौं, मेटहु सकल कलेश ॥ ६ ॥
श्रीजिनवर वाणी विमल, श्रुति देवी सुख रूप।
ज्ञान खान वंदन करौं, दरसै शुद्ध सरूप ॥ ७ ॥

श्रीवीतराग, गुरु, व श्रुति देवी को नमस्कार रूप मंगलाचरण ग्रंथ

की आदि में किया जाता है सो हम भी ग्रंथ की आदि में मंगलाचरण कर-
के ग्रंथ का प्रारम्भ करते हैं। अब इस जगह कोई ऐसी शंका करे कि एक
स्तुति करने से क्या मंगल नहीं होता जो इतनी स्तुतियां कीं? तो समा-
धान यह है कि, जो काम किया जाता है सो निष्प्रयोजन नहीं किंतु
सप्रयोजन, सो अभिप्राय को नहीं जानने से शंका होती है। वह अभिप्राय
यह है कि प्रथम इस अवसर्पिणी काल में मोक्षमार्ग का, इस क्षेत्र आश्रय
अठारा (१८) कोड़ाकोड़ी सागरोपम का अभाव था सो उस अभाव को
श्रीआदिनाथजी अर्थात् ऋषभदेव स्वामी ने दूरकर केवल ज्ञान उत्पन्न
करके भव्य जीवों के वास्ते मार्ग खुलासा किया इसलिये युगादि अर्थात्
प्रथम तीर्थंकर को नमस्कार किया है। दूसरा श्रीशान्तिनाथ स्वामीजी
की स्तुतिरूप मंगल को इसवास्तें आचारण किया है कि भव्य
जीव जो कि मिथ्यात्व रूप अग्नि से तपते हैं उन की शान्ति के
वास्ते समगत प्राप्त होने का विषय कहेंगे। श्रीनेमनाथ स्वामीजी
की स्तुति करने का कारण यह है कि श्रीबाईसवें तीर्थंकर
बालब्रह्मचारी थे। इस बालब्रह्मचारीपने से विषय-सुख की अनित्यता दि-
खाने का प्रयोजन है। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी स्तुति का कारण यह है
कि जैनी श्रीपार्श्वनाथ स्वामीजी के बालगोपाल सर्व जगत् में प्रसिद्ध हैं।
और श्रीवर्द्धमान स्वामीजी की स्तुति का कारण यह है कि श्रीवर्द्धमान
स्वामीजी आसन्नोपकारी अर्थात् नजदीक के उपकार करनेवाले व शासन-
पति-वर्त्तमान काल में शासन अर्थात् चतुर्विध संघ के शिक्षक हैं।
श्रीगुरुजी की स्तुति रूप मंगल का कारण यह है कि आत्मस्वरूप जिस से
प्राप्त हो ऐसी जो विद्या तिस की शिक्षा करनेवाला अर्थात् पढ़ानेवाला नतु
भेषधारी या न्याय व्याकरण छन्द काव्य आदि पढ़ानेवाला। यहां तो एक

नाम मात्र कहा है परन्तु गुरु का लक्षण आगे कहेंगे कि गुरु किस को कहते हैं। श्रीश्रुतिदेवी ताकी स्तुति रूप मगलाचरण इसवास्ते है कि श्रुति कहिये वाणी अर्थात् भाषा वर्णना, जिस से उत्पन्न हुआ जो शब्द, उस के श्रोत्र सम्बन्ध से जो हुआ ज्ञान, इस ज्ञान से रचना की इस ग्रंथ की अर्थात् इस ग्रथ में भगवत की वाणी रूप अतिशय का; बहु मान पूर्वक मैंने अपने हृदय में स्मरण कर इस ग्रथ का प्रारंभ किया है इसलिये जुदे २ मगल का प्रयोजन ठीक है ॥

शंका– आपने यह मगलाचरण क्यों किया है? जो कहो कि ग्रन्थ की आदि से लेकर अन्त तक समाप्ति के वास्ते मगलाचरण किया है तो हम कहते हैं कि देखो जिन्हों ने मगल किया है उन के ग्रथ की समाप्ति नहीं हुई जैसे "घल्यादऊ" जिन्हों ने मगलाचरण करके ग्रथ प्रारंभ किया और ग्रथ की समाप्ति नहीं हुई। और जिन्होंने ग्रथ के प्रारम्भ में मगल नहीं किया उन के ग्रथ समाप्त अर्थात् परिपूर्ण हुए हैं, जैसे कि कादम्बरी आदि। जिन्हों ने ग्रंथ के प्रथम में मगल न किया और ग्रथ की समाप्ति होगई, सो उन के ग्रथ मोजूद हैं, इसलिये ग्रथ की समाप्ति के वास्ते मगल का करना निष्प्रयोजन है॥

समाधान– जो ऐसी शका तुमने की सो तुम को, अभिप्राय नहीं जानने से ऐसी तर्क उठती है। अभिप्राय यह है कि ग्रथ समाप्ति के वास्ते मगलाचरण नहीं है क्योंकि देखो जिस पुरुष को ग्रथ बनाने की शक्ति है वही अपनी शक्ति से ग्रंथ को समाप्त करेगा। कदाचित् ऐसा न होय तो हर एक पुरुष स्तुति आदिक मगल को आचरण करके ग्रथ बनाने का प्रारम करे परन्तु कदापि उस से पूर्ण न होगा अर्थात् किंचित् भी न बनेगा। इसलिये मगलाचरण ग्रथ समाप्ति का कारण नहीं

किन्तु श्रेष्ठ अर्थात् अच्छे पुरुषों ने जिस मार्ग को आचरण अर्थात् अंगीकार किया है उस मार्ग की श्रेष्ठता दिखाने के वास्ते है। दूसरा प्रयोजन यह है कि जो सर्वज्ञ देव को नहीं मानने वाले ऐसे नास्तिक मत-वाले हैं उनका निराकरण करने के वास्ते और सर्वज्ञ देव सिद्ध करने के वास्ते है। इस मंगल पर झगड़े तो बहुत हैं परन्तु हमको तो ग्रंथ बढ़जाने के भयसे दिखाने की इच्छा नहीं है। अब मंगल का असल प्रयोजन तुम को सुनाते हैं कि मंगल ग्रंथ में तीन जगह होता है। आदि का मंगल तो इसवास्ते होता है कि जो जिज्ञासु ग्रंथ को पढ़ना शुरू करे उस जिज्ञासु को उस ग्रंथ की आदि से अन्त तक समाप्ति हो जाय अर्थात् उसको सम्पूर्ण पढ़जाय इसलिये ग्रंथकर्त्ता उस जिज्ञासु के अर्थ स्तुति रूप मंगल करता है नतु अपने ग्रंथ बनाने की समाप्ति के अर्थ। और मध्य मंगल इसवास्ते किया जाता है कि जो जिज्ञासु उस ग्रंथ को बांचे उसका जो अर्थ सो यथावत् जिज्ञासु के चित्त में दृढ़ होकर स्थित रहे, और अन्त मंगल जो है सो इसवास्ते किया जाता है कि जो ग्रंथ आत्म उपदेश का है सो अविच्छेद अर्थात् उसका परम्परागत से अभाव न हो। इसका यह तात्पर्य है कि वह ग्रंथ गुरु परम्परा से चिरंजीव अर्थात् प्रलय पर्यन्त स्थिर रहै और जब तक धर्म के आचरण करनेवाले भव्य जीव रहैं तब तक रहै। इस प्रयोजन से ग्रंथकर्त्ता मंगल को आचरण करता है। मंगल तीन प्रकार का है—एक तो नमस्कारात्मक जैसे 'सद्दर्शणं जिणं नत्वा' इसको नमस्कार आत्मक कहते हैं। दूसरा वस्तु निर्देशात्मक जैसे "धम्मो मंगल मुक्कट्टं" इसको वस्तुनिर्देश—आत्मक कहते हैं। और तीसरा आशिर्वादात्मक जैसे 'जयई जगजीव जोनि विनायक' इस को आशिर्वाद आत्मक कहते हैं।

सो, नमस्कार मगल आदि मे, वस्तु निर्देश मगल मध्य में, और आशिर्वाद मगल अन्त में चाहिये। इसलिये ग्रंथकर्त्ता अवश्यही मगलाचरण करे। अब ग्रथ की आदि में सम्बन्ध आदि चतुष्टय होता है सो सम्बन्ध आदि चतुष्टय उसको कहते हैं कि सम्बन्ध, विषय, प्रयोजन और अधिकारी इनको अनुबन्ध कहते हैं। इन च्यारों के विना जिज्ञासु की प्रवृत्ति रुचि पूर्वक नहीं होती इसलिये ग्रथकर्त्ता को सम्बन्ध आदि च्यारों को अवश्य करना चाहिये सो हमभी इस ग्रथ में सम्बन्ध विषय प्रयोजन और अधिकारी दिखाते हैं ॥

सम्बन्ध कई प्रकार का होता है । ग्रंथ का और विषय का प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध है, ग्रंथ प्रतिपादक है और विषय प्रतिपाद्य है । जो प्रतिपादन करनेवाला होय सो प्रतिपादक होता है, जो प्रतिपादन करने के योग्य होय सो प्रतिपाद्य होता है। और अधिकारी का और फल का प्राप्य और प्रापक भाव सम्बन्ध है। फल प्राप्य है और अधिकारी प्रापक है, जो वस्तु प्राप्त होय सो प्राप्य होती है जिसको प्राप्त होय सो प्रापक होय है । ग्रथ का और ज्ञान का जन्य जनक भाव सम्बन्ध है। विचार द्वारा ग्रथ ज्ञान का जनक है और ज्ञान जन्य है,जो उत्पन्न होय सो जन्य होता है और उत्पन्न करनेवाला जनक है इसी रीति से कर्त्ता कर्त्तव्य और आधार आधेय सम्बन्ध आदि अनेक सम्बन्ध जानलेना ॥

अब विषय कहते हैं—इस ग्रथ में विषय ऐसा है कि निश्चय का वर्णन तो नाममात्र, बाकी शुद्ध अशुद्ध व्यवहार से सामायक प्रतिक्रमण देवयात्रा आदिक जिनाज्ञा शुद्ध व्यवहार तथा शुभ व्यवहार से वर्णन किया जायगा ॥

अब प्रयोजन वर्णन करते हैं—इस ग्रंथ का मुख्य प्रयोजन यह है कि भव्य जीवों को समकित की प्राप्ति और मिथ्यात्व की निवृत्ति होकर परम्परा सम्बन्ध से मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् परमानन्द की प्राप्ति हो।

अब अधिकारी का लक्षण कहते हैं—इस ग्रंथ का अधिकारी निकट भव्य जीव है सो अधिकारी का लक्षण विशेष करके तो हमने स्याद्वादानुभवरत्नाकर में लिखा है परन्तु किंचित् यहां भी दिखाते हैं। प्रथम जीव निगोद में से निकलकर भवस्थिति परिपाक होने से 'नदीघोल' न्याय करके संसार परिभ्रमण करता हुआ अकाम निर्ज्जरा के जोर से तिर्य्यंच पंचेन्द्री या मनुष्यभव में आवे और उस जीव के डेढ़ पुद्गल परावर्त बाकी रहे तब वह जीव मार्ग खोजना अथवा मार्ग भ्रमण अथवा मार्गानुसारी मार्ग प्राप्त इत्यादिक धर्म की किंचित् वाञ्छा से जिनोक्त मार्ग को श्रवण करने की इच्छा करे। परन्तु तीव्र भाव करके खोजना न करे उसको जिन शास्त्रों में मार्गपतित कहा है। और अब जीवका संसार में भ्रमण करना एक पुद्गल परावर्त रहे तब जीव जिन मार्ग की शुद्ध अशुद्ध गवेषणा (देखना) मात्र अर्थात् किंचिन्मात्र शुद्धि करे। इस रीति से करते २ जिस जीव को धर्म का यौवन काल आवे और न्याय सम्पन्न मित्रादिक दृष्टि च्यार तक प्राप्ति का अवसर होय ऐसे जीव को मार्ग अनुसारी कहते हैं। परन्तु इस जीव के षट् दर्शन की भिन्नता जाने और जिनोक्त मार्ग को व्यवहार में आदरे। इस जगह मिथ्यात्व मन्द पड़गया तिस से व्यवहार द्रव्य धर्म पावे। परन्तु समकित प्राप्त न होय। इस जगह ऐसे जीव को पहले तीन अनुष्ठान की प्रबलता होय तिससें सर्व क्रिया करे उस क्रिया को देखकर अनेक जीव धर्म पावें परन्तु पोते न अर्थात् अपने को न होय। लेकिन उस क्रिया का फल स्वर्ग

आदि होय परन्तु निर्ज्जरा के अर्थ वह क्रिया सफल न होय। इसरीति से कल्पभाष्य आदि शास्त्रों में कहा है। अब इस जगह किंचित् तीन करणों का स्वरूप कहते हैं— १ यथा प्रवृत्ति करण २ अपूर्व करण ३ अन्यवृत्ति करण। इन करणों के करने से उपशम आदि समकित पाते हैं। प्रथम यथा प्रवृत्ति करण का स्वरूप कहते हैं कि जो सर्व कर्म की उत्कृष्ट स्थिति के बाधनेवाले हैं वे सक्लेश अर्थात् परिग्रह आदि तृष्णा अत्यन्त रूप होने से अथवा क्रोध आदि अत्यन्त कषाय आदि होने से यथा प्रवृत्ति करण नहीं कर सकते उक्तंच "विशेषावश्यके—उक्को सट्ठि नलद्दभयणाए एसुपुव्वलद्धाए ॥ सव्वजहन्नठि सुवि नलप्भइ जणे पुव्व यडिवन्नो ॥ १ ॥" इसलिये कर्म्म की उत्कृष्ट स्थिति को बाधनेवाला जीव च्यार सामायक के लाभ को न प्राप्त होय और जो जीव सात कर्म की जघन्य स्थिति बांधनेवाला है सो तो गुणवत जानना। इस रीति से जो जीव एक कोडाकोडी सागरोपम पल्योपम से असख्यातवें भाग ओछी स्थिति बध करता होय वह जीव यथाप्रवृत्ति करण करे क्योंकि जिस जीव ने कर्मखपण रूप शक्ति न पाई होय सो शक्ति पामे तिसका नाम यथा प्रवृत्तिकरण कहिये। उक्तंच भाष्ये "येनअनादि संसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्त कर्म क्षपण क्रियते ऽनेनेतिकरण जीव परिणामेवोच्यते अनादिकालात् कर्मक्षपण प्रवृत्तावध्यवसाय विशेषो यथा प्रवृत्तिकरणमित्यर्थ" क्षय उपशमी चेतना वीर्यसे जानी है ससार की असारता जिसने अपना ससार को दुःखरूप जानके परिग्रह शरीरादिक से उद्वेग उदासीनता परिणाम से मान कर्म की स्थिति एक कोडाकोडी पल्योपम का असंख्यातवां भाग कमती करके बाकी स्थिति राखे इसका नाम यथाप्रवृत्ति करण है। इन तीनों करणों का विशेष स्वरूप, स्याद्वादानुभवरत्नाकर में

जानलेना । जो जीव समकित पाया हुआ अथवा समकित से पड़ा हुआ है वह इसका अधिकारी है अथवा मार्ग अनुसारी भी किंचित् अधिकारी है ॥

अब अधिकारी का लक्षण कहते हैं—विनय, विवेक, वैराग और मोक्ष की इच्छा ये चार चीजें जिस में हों सो जिज्ञासु है। विनय का अर्थ यह है कि गुरु की सेवा अर्थात् गुरु की आज्ञा में चलना, जो गुरु कहै सो करे। गुरु का लक्षण तो आगे कहेंगे परन्तु गुरु वही है कि जो हेय ज्ञेय उपादेय को समझाय कर आत्मा के स्वरूप को दिखलावे नतु लिंगमात्र, अथवा संसार के कृत्यादिक सिखलानेवाले। अब विवेक का अर्थ करते हैं कि "सत्याऽसत्य विचारशीलः इति विवेकः" सत्य को ग्रहण करना असत्य को छोड़ना नतु हठग्राहीपना अर्थात् गधे की पूंछ पकड़ कर अपने शरीर का नाश करना। यहां दृष्टान्त देते हैं कि एक साहूकार था वह बहुत धनवान था और उसके एक पुत्र था उस के विवेक कम था इस कारण से वह अपने पिता का कहना कम मानता था। जब उस साहूकार की आयु पूर्ण होने पर आई उस वक्त वह अपने पुत्र को बुलाकर कहने लगा कि हे पुत्र! अब तक तो तू मेरा कहना नहीं मानता था परन्तु अब मेरा अन्त समय है सो मैं तुझ को चार बातें कहता हूं उन चारों बातों को जो तू याद रखकर उन पर चलेगा तो तुझ को सुख होगा। सो तुझे मुनासिब है कि मेरे अन्त समय की शिक्षा मानकर इन चार बातों पर तू चले। वे चार बातें ये हैं—(१) मकान के गिर्द हाड़ों की बाड़ रखना (२) मीठा भोजन करना (३) घर से दूकान पर छाया मेंही आना और जाना (४) चौथी बात यह है कि पकड़ी चीज को नछोड़ना। इतना कह वह साहूकार परलोक

सिधाया और उसके पुत्र ने अपने पिता के क्रिया कर्म करने के बाद उसी वक्त महतरों को हुक्म दिया कि मेरी हवेली के चारों तरफ हाड़ों की चाड़ बनादो और घर के रसोईवालों को हुक्म दिया कि सिवाय मीठे भोजन के और कुछ रसोई में मत करो और गुमाश्तों से कहा कि घर से लेकर दूकान तक ऐसी चांदनी बाधो कि धूप न रहे। ये तीन काम तो उस साहूकार के पुत्र ने धन खर्च कर करलिये। उस साहूकार के लडके को मीठा भोजन करने से अजीर्ण आदिक होने से वायु का प्रकोप होकर निद्रा बहुत आने लगी। एक दिन दूकान के किनारे पर बैठा था उस वक्त में कोई गधा बाजार में चरता हुआ उस दूकान के नीचे आया और वह साहूकार का पुत्र नींद से झोका खाने से दूकान के किनारे से नीचे गिरपडा उस वक्त और तो कुछ उसके हाथ में आया नहीं कि जिस से रुके परन्तु गधे की पूछ उस के हाथ में आई। उसके पकडतेही पिता की बात को याद करता हुआ कि मेरा बाप कहगया है कि पकड़ी चीज को न छोडना सो उस गधे की पूछ को काठी करके पकडता हुआ। उस पूछ को काठी पकडने से उस गधेने अपने पैरों से दुलत्ती मारना शुरू किया परन्तु उस साहूकार के पुत्र ने लातें खाना कबल किया लेकिन पूछ छोडना न चाहा। आखिर को उस गधे की दुलत्ती लगते २ छाती माथा तमाम चोटों से घायल हुआ और बेहोश होकर जमीन पर गिरपड़ा आखिर को पूछ हाथ से छूट गई। उस वक्त में अड़ोसपडोस के लोग सब इकट्ठे होगये और उस को सडक से उठाकर दूकान पर रक्खा और शीतलोपचार किया उस को कुछ होश आया उस वक्त एक बुद्धिमान पुरुष कहने लगा कि सेठजी आपने यह क्या काम किया जिस से आप को इतना दु-

को रचा है। इसलिये इस ग्रन्थ का बनाना सफल है ॥

शंका– भला आगे के जो सूत्रादिक अर्द्ध मागधी भाषा में रचे हुए हैं और उन की संस्कृत में टीका और अच्छे २ आचार्यों के बनाये हुए प्रकरणादिक हैं उन से क्या उन को बोध न होगा, जो तुमने यह नवीन ग्रन्थ बनाया? इसलिये तुम्हारा यह नवीन ग्रन्थ बनाना निष्फल है ॥

समाधान—जो सूत्रादिक वास्ते कहा सो तो ठीक है परन्तु उन सूत्रों में जो अर्द्ध मागधी भाषा है उस का अर्थ वा उन को बांचना गृहस्थ को मना है लेकिन तौभी बहुत गृहस्थी लोग जैन मत की व्यवस्था बिगड़ने से बांचते हैं परन्तु उस अर्द्ध मागधी का गुरु-कुल-वास बिना यथावत् अर्थ मिलना बहुत कठिन है। क्योंकि देखो अर्द्ध मागधी का लक्षण लिखते हैं। श्रीहेमाचार्यजी ऐसा कहते हैं—"षट भाषा संयुक्त अर्द्ध मागधी" इस का अर्थ यह है कि जिस में ६ भाषा मिली हों उस का नाम अर्द्ध मागधी है। वे ६ भाषा ये हैं—१ संस्कृत २ प्राकृत ३ सूरसेनी ४ पिशाची ५ मागधी ६ अपभ्रंशा अर्थात् देश २ की भाषा। ये भाषा जिस में हों उस का नाम अर्द्ध मागधी है इसलिये जब तक ऊपर लिखी ६ भाषाओं का ज्ञान न हो तब तक सूत्र का अर्थ यथावत् न बैठेगा, इसलिये सूत्र बांचने से तो अर्थ की प्राप्ति न होगी। और जो तुमने कहा कि उन की संस्कृत आदि टीका है अथवा और आचार्यों के बनाये हुए प्रकरणादिक हैं उन से बोध होगा तो हम कहते हैं कि जिन आचार्यों ने उन सूत्रों की टीका बनाई है सो टीका उन बनानेवालों के वास्ते सुगम थी क्योंकि जो शब्द उन को कठिन मालूम पड़े उन की उन्हों ने संस्कृत में टीका रची है और जिस जगह

उन को सूत्र में सुगमता मालूम हुई उस जगह सुगम ऐसा, कहकर छोड दिया अर्थात् उस की टीका न बनाई। सो अब वे शब्द वर्त्तमान काल में बहुत कठिन होगये। और जो आचार्यों ने प्रकरण आदि मन्दबुद्धियों के वास्ते रचे थे सो अक्सर करके उन के रचेहुए प्रकरण मिलते ही बहुत कम हैं। जो कोई प्रकरण मिलता है तो उस के समझानेवाले गुरु नहीं मिलते इसलिये इस ग्रंथ का बनाना सप्रयोजन है॥

शंका—अजी भाषा के भी ग्रंथ तो बहुत मिलते हैं, क्या उन से उन लोगों को बोध न होगा क्योंकि अक्सर करके भाषा के ग्रंथ छापे के होने से प्राचीन और नवीन गुजराती व हिन्दी भाषा में बहुत मिलते हैं। क्या उन से बोध नहीं होगा, तो तुम्हारे ग्रंथ से ही बोध होगा?॥

समाधान—जो तुमने कहा कि प्राचीन नवीन भाषा के ग्रंथ भी बहुत मिलते हैं सो ठीक परन्तु जो प्राचीन बुद्धिमान् थे, उन्हों ने अक्सर करके जो ग्रंथ भाषा में बनाये हैं उन में एक दो अनुयोग की विशेषता करके वर्णन किया है जिस में एक अनुयोग को मुख्य करके लिखा है और दूसरे को गौण करके किंचित् लिखा है। अन्य बातें जो जताई है सो भी दोहा, ढाल, स्तवन आदि कहके प्रकरण रचे हैं सो उन में मार्ग तो दिखाया है परन्तु सरल भाषा करके उन दोहे छन्द आदिक का अर्थ अथवा अपना अभिप्राय खुलासा न कहा। और जो नवीन ग्रंथों के बनानेवाले हैं उन्हों ने अपने २ पक्षपात से ग्रंथ में किसी ने निश्चयही को पुष्ट करके व्यवहार को उठाया है, और किसी ने उत्सर्ग मार्ग को अंगीकार करके ग्रंथ रचा है, किसी ने अपवाद मार्ग को ही पुष्ट करके ग्रंथ रचा है इसलिये उन ग्रंथों की भिन्न २ प्रक्रिया देखने से जिज्ञासु को उलटे सन्देह पैदा होते हैं। तो जहा

सन्देह पैदा होता है उस जगह बोध होना ही असम्भव है । कितनेही ग्रंथों के रचनेवाले ऐसे बुद्धिमान हैं कि जिन्हों ने सूत्र टीका में लिखा है उस की भाषा बनाय कर खाली अपना नाम किया है, कितनेही लोग अपनी बुद्धि अथवा पण्डितों की सहायता से केवल अपना नाम करने के वास्ते ग्रंथ बनाते हैं परन्तु उन ग्रंथों के देखने से जिनाज्ञा से विरुद्ध और अशुद्ध मार्ग की पुष्टि होने के सिवाय कुछ बोध होने का कारण नहीं मालूम होता है । इसलिये इस ग्रंथ का बनाना सप्रयोजन है ॥

शंका— अजी इस ग्रंथ में विनय विवेक आदि जो अधिकारी के साधन कहे हैं सो साधन कठिन हैं इसलिये अधिकारी अपने में साधन के न होने से ग्रंथ में प्रवृत्ति की इच्छा न करेगा इसलिये ग्रंथ का रचना निष्प्रयोजन है ॥

समाधान—यह तुम्हारा कहना एकान्त ठीक नहीं क्योंकि हम तुम से पूछते हैं कि बहुत अधिकारी नहीं हैं अथवा कोई अधिकारी नहीं है ? जो तुम कहोगे कि बहुत अधिकारी नहीं हैं सो तो तुम्हारा कहना ठीक है, हमभी अंगीकार करते हैं । और जो तुम कहो कि कोईभी नहीं है, यह कहना तुम्हारा असम्भव है । क्योंकि देखो सर्वज्ञ का ऐसा वचन है कि "हुण्डा सार्प्पिणी इस पंचम काल में एक-भवतारी भी हैं और बहुत भव्य जीवों को इसी काल में समकित की भी प्राप्ति होगी" । इसलिये जो भव्य जीव आत्मार्थी तत्व-रसिक होगा सोही इस का अधिकारी है । क्यों कि इस ग्रन्थ में कारण कार्य शुद्ध अशुद्ध जिनाज्ञानुसार जो व्यवहार, उस व्यवहार से युक्ति सहित कारण से कार्य उत्पन्न होता है उन्हीं बातों का प्रतिपादन किया जायगा ।

क्योंकि देखो वर्त्तमान काल में कितनेही लोगों ने कारण को कार्य कहकर उस का समझानाही उठा दिया है और जिस कारण से कार्य उत्पन्न होता है उस कारण को छोड़कर केवल कार्य को पकडकर बैठ गये हैं और आपस में विवाद आदि करके झगडा मचाते हैं। कितने ही लोग कारण को ही कार्य मानकर आपस में विवाद करते हैं और अपने२ पक्ष को खैंचकर नवीन ग्रन्थ बनायकर, छापेद्वारा प्रसिद्धकर अपनी२ पण्डिताई को प्रगट करते हैं। सो इस से लोगों को बोध तो होना अलग रहा परन्तु भ्रम होकर अविश्वास होजाता है। इसलिये श्रीजसविजयजी उपाध्यायजी सवासौ गाथा के स्तवन में कहते हैं, पहिली ढाल की दशमी गाथा "बहु मुखे बोल एम सांभली नवि धरे लोक विश्वासरे । ढूढता धर्मने ते थया भमर जेम कमल निवासरे" ॥ इस गाथा का अर्थ तो सुगम है परन्तु आगे व्यवस्था कहने में इस का अर्थ कहेंगे। ऐसे २ पूज्यों के वाक्य को समझकर और वर्त्तमान काल की व्यवस्था किंचित् देखकर जिन-धर्म के अनुराग से हुआ जो अनुभव, तिस अनुभव में किंचित् करुणा से जिज्ञासुओं के लाभ के वास्ते जिन-मत जो अनादि शुद्ध आत्म-स्वरूप दिखानेवाला है उस में उत्पन्न तीर्थंकर आदि सर्वज्ञ देव, उनके मुखारविंद से अमृत रूप जो वचन भाषा वर्गणा से जो प्रगट हुए, उन वचनों में जो चार प्रकार के अनुयोग कहे, उन अनुयोगों में कारण और कार्य जिस रीति से कहे हैं उसी रीति से कहकर युक्ति सहित जिज्ञासु को बोध कराना है। और वर्त्तमान काल में अशुद्ध प्रवृत्ति होने का कारण दिखायकर पीछे से जिनाज्ञा सहित कारण कार्य से धर्म की व्यवस्था कहेंगे क्योंकि जब तक जिज्ञासु कारण को नहीं जानेगा तब तक उस की कार्य में

प्रवृत्ति नहीं होगी इसलिये कारण को प्रथम कहना आवश्यक है क्योंकि देखो जो जिज्ञासु जिस कार्य के कारण को यथावत् समझ-लेता है उस जिज्ञासु को कार्य करना सुगम हो जाता है और उस को कार्य करने में आलस्य वा सन्देह कदापि नहीं होता है। इस-लिये इस ग्रन्थ का बनाना सप्रयोजन सिद्ध हुआ। जब प्रयोजन सिद्ध हुआ तो इस ग्रन्थ का बनाना भी सफल हुआ क्योंकि देखो शास्त्रों में कहा है कि जो कोई जिनाज्ञा सहित नवीन ग्रन्थ बनायकर भव्य जीवों को आत्मबोध करावे उसको बहुत निर्जरा होती है ॥

॥ इति श्रीजैनाचार्य मुनि श्रीचिदानन्द स्वामी विरचितायां
प्रथम प्रकाश समाप्तम् ॥

द्वितीय प्रकाश।

प्रथम प्रकाश में जो कहा था कि वर्त्तमान काल में कारण कार्य की विपरीत व्यवस्था किस कारण से हुई इसलिये इस द्वितीय प्रकाश में श्री वर्द्धमान स्वामीजी से लेकर वर्त्तमान तक जो व्यवस्था है उसको किंचित् दिखाते हैं सो आत्मार्थी भव्य जीव पक्षपात छोड़कर सत्य असत्य का विचार करें। प्रथम तो इस को हुन्डा सर्पणी काल कहते हैं सो हुन्डा सर्पणी काल को बहुत बुरा बतलाते हैं, दूसरा जोकि पंचम काल जिस में केवलियों का बिलकुल अभाव रहता है और पूर्वधर का भी अभाव कुछ दिन के बाद होजाता है इसलिये इस जिनधर्म में स्याद्वाद रीति से अनेकान्त रीति को जानना कठिन

है। किन्तु जब श्रीमहावीर स्वामी शासनपति विचरते थे उस समयभी कर्म के जोर से उन के भी सामने उन जीवों को हठग्राहीपना दूर न हुआ तो वर्त्तमान काल में जीवों का, बहुत संसार रुलने के सबब में हठग्राहीपना छूटना मुश्किल है। इसलिये इस जगह प्रसंगगत ठाणांग सूत्र में सातवें ठाणे में सात निन्नव कहे हैं सो वहां से स्वरूप जान लेना और वह पुस्तक मेरे पास नहीं है इसलिये उसका पाठ नहीं लिखा। लेकिन श्रीउत्तराध्येनजी के तीसरे अध्येन को जो टीका है उस श्री लक्ष्मीवल्लभी टीका में से किंचित् मात्रार्थ लिखता हूं। श्रीमहावीर स्वामीजी को केवल ज्ञान उत्पन्न होने के १४ वर्ष बाद जमाली नाम निन्नव हुवा तिसका वृत्तांत लिखते हैं॥

श्रीमहावीर स्वामीजी की बहन सुदर्शना उसका पुत्र जमाली और श्रीमहावीर स्वामीजी की जो पुत्री प्रियदर्शना उसका पति, उनने वैराग्य से ५०० क्षत्री और अपनी स्त्री कि जिसके साथ ३००० स्त्रियां थी दीक्षा ली। उस समय श्रीमहावीर स्वामीजी ने जमालीजी को स्थिवर साधुओं को सौंप दिया सो उन जमालीजी को स्थिवरों ने ११ अंग पढ़ादिये तब वे ५०० साधू और १००० साध्वियों को लेकर अलग विचरने लगे। एक दिन सावथ्थी नगरी तिंदुक उद्यान और कोष्टिक चैत के विषय आये और उन के शरीर में निरस आहार करने से वेदना उत्पन्न हुई। उस वेदना से बैठने की शक्ति न होने के कारण से शिष्यों को संतारा अर्थात् आसन बिछाने की आज्ञा दी सो एक शिष्य आसन बिछाने लगा। और जमालीजी वेदना के सबब से बैठने की शक्ति न होने से शिष्य से कहने लगे कि आसन बिछाया? शिष्य बोला कि बिछाया तो नहीं किन्तु बिछाता हूं। इस

भावना हुई। एक दिन असलका नगरी के विषय गया सो एक मित्र श्री श्रावक ने उस को प्रतिबोधने के अर्थ नौता दिया और घर पर लेगया। उस वक्त उस श्रावक ने मोतीचूर के लड्डू का एक खेरा परमाणु रूप उस के पात्र में रखदिया। ऐसेही सेव के लाडूका एक परमाणु रखदिया। ऐसेही जो वस्तु उस के घर में तयार थी सो सब में से एक २ परमाणु रखदिया। फिर हाथ जोड़ कहने लगा कि महाराज मैं आपको संपूर्ण वस्तु वहरायकर कृतार्थ होगया। उस वक्त में वह साधू कहने लगा कि भाई ऐसी तूने क्या चीज बहराय दी जिस ने तू कृतार्थ होगया? उस वक्त में वह श्रावक कहने लगा कि महाराज आप के मत से तो सम्पूर्ण वस्तु वहरायदी क्योंकि आप का मत तो ऐसा है कि अन्त का प्रदेश है सो जीव है नतु सर्व प्रदेश वाला जीव। इसलिये मैंने भी सर्व वस्तुओं का अन्त २ का प्रदेश बहराय कर सर्व वस्तु बहराय दी सो आप के मत से सम्पूर्ण वस्तु दी, नतु श्री वर्द्धमान स्वामीजी मतानुसारेण। इस श्रावक की युक्ति को सुनकर प्रतिबोध को प्राप्त हुआ और गुरु को मिथ्या दुक्कडं देकर शुद्ध होगया। यह दूसरा निन्नव हुआ॥

अब तीसरे निन्नव का वृत्तान्त लिखते हैं कि श्री महावीर प्रभुजी के निर्वाण से २१४ वर्ष पीछे स्वेताम्बिका नगरी पोलाष उद्यान के विषय श्री आषाडाचार्य्यजी ने अपने शिष्यों को आषाढ जोग बहाना शुरू किया परन्तु शूल के रोग से अकस्मात् शरीर को छोड़कर स्वर्ग में देवता हुए उस वक्त देवपने में उपयोग देकर अवधि ज्ञान से देखते हुए कि मैंने मेरे शिष्यों को जोग बहाना शुरू किया था परन्तु उनका जोग पूरा न हुआ और कोई करानेवाला भी उस वक्त उनकी नजर

में न आया तब आपही उन शिष्यों के स्नेह से उसी देह में प्रवेश करके उनको सम्पूर्ण जोग की क्रिया कराई। जब वह जोग की क्रिया सम्पूर्ण होगई तब एक शिष्य को आचार्य्य पद देकर अपना जो सर्व वृत्तान्त था सो सम्पूर्ण कहकर उस शरीर को छोडकर देवलोक चले गये। उस वृत्तान्त को सुनकर उन के शिष्यों को ऐसा विकल्प उत्पन्न हुआ कि अव्यक्त मत है क्योंकि न तो मालूम होवे कि यह देवता है न मालूम होवे कि यह साधू है। जब मालूम नहीं तो वन्दना किस को करें ? जो कदाचित् वन्दना करें और उस शरीर में देवता होय तो अवृत्ति की वन्दना होवे इसलिये किसी को वन्दना न करना। सो उन सर्व शिष्यों ने आपस में वन्दना व्यवहार छोडदिया और विचरते हुए एक दिन राजगिरी नगरी में आये। उस राजगिरी नगरी का राजा सूर्यवंश का धारण करनेवाला बलभद्र नाम करके जिन-मत का परम श्रावक था। उस राजा ने उन साधुओं को बोध करने के अर्थ चोर है ऐसा कहकर पकडकर मारने लगा। उस वक्त ये साधू कहने लगे हे राजन्! तू तो परम श्रावक है और हम साधू हैं। किस वास्ते हम को मारता है ? उस वक्त राजा कहने लगा कि तुम ऐसा मत कहो क्योंकि तुम्हारा मत अव्यक्त है उस के अनुसार तो न मालूम तुम साधू हो अथवा चोर हो और मैं श्रवणोपासक हु या नहीं। इत्यादि युक्ति सुनकर वे साधु प्रतिबोध को प्राप्त हुए॥

अब चतुर्थ निन्हव का वृत्तान्त लिखते हैं कि श्रीमहावीर स्वामीजी से २२० वर्ष पीछे मिथला नगरी लक्ष्मीगृह उद्यान के विषय श्रीमहागिरीजी के शिष्य "कोडिन्न्य" थे उनके शिष्य अश्वमित्र "अन्यदाऽनु प्रवाद पूर्वस्य नैपुणिक नामक वस्तु पठन

इममालापकं पठितवान्" "यथा सव्वे पडुपन्ने रइया वुच्छिज्जिस्सन्ति एवं जाववे माणियन्ति एतदालापकार्थमसौ इत्थं विचारितवान " सो वह शिष्य इस गाथा को पढ़कर विचार करने लगा कि नरक को आदि लेकर जो जीव हैं सो सर्व क्षण विनाशी हैं अर्थात् उस ने क्षणक मत अंगीकार किया और उसही की परूपणा करने लगा। एक दिन राजगिरी नगरी में गया सो उस राजगिरी नगरी में शौक्लिक उस साधू को मारने लगा उस वक्त वह साधू कहने लगा कि तू श्रावक होकर मुझको क्यों मारता है? मैं तो साधू हूं। उस वक्त वह श्रावक कहने लगा कि तुम्हारे मत में तो मेरा जो श्रावकपना था सो उसी क्षण में चला गया और जिस क्षण में मैंने तुम्हारा साधूपना देखा था उसी क्षण में वह साधूपना नष्ट होगया अब तो मैं और आप नवीन उत्पन्न होगये क्योंकि जो मैंने देखा था और तुमने देखा था सो तो दोनों का देखा हुआ तुम्हारे मत के अनुसार नष्ट होगया अब तो कोई नवीन है। ऐसी युक्ति उस श्रावक की सुनकर वह प्रतिबोध को प्राप्त हुआ ॥

अब पांचवें निन्हव का वृत्तान्त लिखते हैं कि भगवान श्री महावीर स्वामीजी से २२८ वर्ष पीछे उल्लुका नदी के किनारे पर एक खेटक वनपुरे उल्लुकात्तीता नाम करके वन था उस जगह श्रीमहा-गिरीजी का शिष्य उसी नदी के तीर पर रहता था और उन का शिष्य गंगाचार्य्य पूर्व तीर पर रहता था। सो वह श्रीगंगाचार्य्य गुरु को वन्दना करने के लिये दूसरे तीर पर जाने लगा। उस वक्त में नदी उतरती दफा माथे पर केश नहीं होने से सूर्य की तपत से माथा बहुत तपने लगा और नीचे से नदी के जल से पगों

को शीतलता प्राप्त हुई। उस वक्त विचारने लगा कि दो क्रिया एक समय में मैं अनुभव करता हूं और श्रीभगवान कहते हैं कि "नत्थी एक समय दो उपयोगा" यह श्रीभगवान का वचन ठीक नहीं। मैं प्रत्यक्ष दोनों क्रियाओंका शीतलता और उष्णता का अनुभव करता हू। ऐसा विचार करता हुआ गुरु के पास पहुंचा और अपना अनुभव कहने लगा। उस वक्त श्रीआचार्य्यजी ने बहुतही युक्ति करके समझाया परन्तु न माना और अपनी परूपना सब जगह करने लगा। एक दिन राजगिरी नगरी के विषय बीरप्रभोद्याने मनी नायक यक्ष के मन्दिर में उतर कर लोगों के सामने व्याख्यान देने लगा कि एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव होता है। उस वक्त यक्ष ने क्रोधित होकर मुगदर उठाय कर डराया और मारने को तैयार हुआ और कहने लगा कि अरे दुष्ट! मैंने श्रीभगवान महाबीर स्वामी से इसी जगह सुना है, कि एक समय में दो क्रिया का अनुभव नहीं होता क्योंकि वह समय अत्यन्त सूक्ष्म है। क्या तुझ को भ्रम होगया है? क्या तू श्रीमहावीर स्वामीजी से अधिक है? ऐसा उस यक्ष ने उसे डराकर प्रतिबोध दिया॥

अब छठे निन्नव का अधिकार कहते हैं, कि भगवान श्रीमहावीर स्वामीजी के ५४४ वर्ष पीछे अन्तरिञ्जिका पुरी में गृहश्चैत्य के विषय श्रीगुप्त नामी आचार्य्य उतरे थे उन का शिष्य रोहगुप्त उनकी वन्दना के अर्थ किसी निकट के गांव से आता हुआ। उस वक्त उस शहर में एक सन्यासी लोहे का पाटा पेट से बांधे हुए और एक जामुन की शाखा हाथ में लिये हुए उस बस्ती में आया और जो कोई उस से पूछता कि लोहे का पाटा क्यों बांधा है तो वह जवाब देता

कि मेरा पेट विद्या से इतना भरा है कि मैं जो पाटा नहीं बांधूं तो मेरा पेट फट जावे और जामुन की शाखा इसलिये हाथ में रक्खी है कि इस जम्बूद्वीप में मेरे से वाद करनेवाला कोई नहीं रहा। इस रीति से कहता हुआ राजसभा में पहुंचा उस वक्त राजा ने उसे देख-कर उस का सन्मान करके बैठाया और अपने शहर में ढोल बज-वाया कि कोई ऐसा शख्स है जो इस संन्यासी से विवाद करे । उस वक्त में रोहगुप्त ने ढोल पर हाथ धरकर विवाद अंगीकार किया और कहा कि श्रीगुरुजी को नमस्कार करके मैं विवाद करने को आता हूं। इतना कहकर गुरुजी के पास पहुंचे और गुरु को वन्दना कर कहने लगे कि श्रीमहाराजजी ! मैं ने उस संन्यासी से वाद करना अंगीकार किया है। गुरु इस बात को सुनकर कहने लगे कि हे आर्य्य ! यह काम अच्छा नहीं किया क्योंकि अपने विवाद करने से क्या प्रयोजन है परन्तु जैसा तुम्हारे को भला हो सो करो। फिर गुरु ने ज्ञान से उपयोग दिया तो क्या देखते हैं कि उस संन्यासी के पास सात विद्या हैं नकुल की विद्या १ सर्प की विद्या २ ऊंदरे की विद्या ३ मृग की विद्या ४ सूअर की विद्या ५ काग की विद्या ६ पंखी की विद्या ७ इन सातों विद्या को घात करनेवाली दूजी ७ विद्या श्रीगुरुजी ने उसे दी मोर विद्या १ नकुल की विद्या २ बिलाड़ी की विद्या ३ बाघ की विद्या ४ सिंह की विद्या ५ गरुड़ की विद्या ६ बाज पंखी की विद्या ७ ये सात विद्या और आठवां अपना ओघा दूसरे काम निवारने के वास्ते दिया। उस वक्त ये सब चीजें अंगीकार करके वह रोहगुप्त गुरु की आज्ञा पाकर राजसभा में आया। उस वक्त उस संन्यासी ने देखकर विचारा कि यह जैनी है सो

सस्कृत भाषा तो बोलना नहीं इसलिये इस के जिनधर्म की बात कहूं सो यह जैन मत की बात को उथापेगा नहीं अर्थात् खण्डन नहीं करेगा इसलिये मुझ को इस के ही मत की बात करना ठीक है। ऐसा विचार कर कहने लगा कि संसार में दो पदार्थ हैं एक पुण्य दूसरा पाप; एक रात्री दूसरा दिवस; एक आकाश दूसरी धरती; एक जीव दूसरा अजीव इस रीति से दो पदार्थ के सिवाय कोई तिसरा पदार्थ नहीं। इस वाक्य को सुनकर उसीवक्त श्रीरोहगुप्तजी बोलतेहुए कि संसार में पदार्थ तीन हैं भूत, भविष्यत, और वर्तमान; स्वर्ग, मृत्यु, पाताल; आदि, मध्य अन्त; जीव, अजीव, नोजीव: इत्यादि जगत में तीन पदार्थ हैं। इस रोहगुप्त के वाक्य को सुनकर वह सन्यासी कहनेलगा कि नोजीव किस रीति से? तब रोहगुप्त कहने लगा कि देखो विसमरा अर्थात् छिपकली की पूछ कटजाय उस वक्त वह पूछ तडपती है अर्थात् हिलती है इसको जीवभी नहीं कह सकें और अजीव कहें तो उसका हिलना नहीं बने और दूसरा उसी वक्त एक डोरे को बल लगाकर सभा में पटका उस वक्त वह डोरा हिलने लगा। तब कहने लगा देखो यह जीव अजीव दोनों में से कोई नहीं इसलिये नोजीव। इस रीति से तीन पदार्थ जगत में हैं। उस वक्त इस वाक्य से बन्द हुआ तब वह सन्यासी विद्या छोडने लगा इधर से यह भी श्रीगुरु की दीहुई विद्या से लडने लगा आखिर को रोहगुप्त जीतकर बडे ठाठ से गुरु के पास आया और अपना वृत्तान्त सब श्रीगुरु को सुनादिया॥

तब गुरु ने कहा कि अच्छा किया परन्तु जिनशासन में सर्वज्ञ देव ने राशि दो प्रतिपादन की हैं इसलिये तू राजसभा में जाय कर तीन राशि स्थापन करनेका मिथ्यादुक्कड दे। उस वचन को सुनकर रोहगुप्त कहने

लगा कि जिस सभा में मैं ने तीन राशि स्थापी हैं उस सभा में मैं अपने वचन को झूठा क्योंकर कहूं ? फिरभी गुरु ने कहा कि इस में कुछ दोष नहीं है क्योंकि तू ने उस का मान उतारने के वास्ते तीन राशि स्थापी थीं सो तुझ को मिथ्या दुक्कडं देने में कुछ लज्जा नहीं परन्तु उसने गुरु का वाक्य न मानकर और दिल से ढिठाई की व गुरु के सामनेही कहने लगा कि जगत में तीन राशि हैं तब गुरु उस को समझाने के वास्ते राजसभा में गये और राजा को साक्षी करके विवाद करने लगे और छः महीना तक वाद हुआ जिस में चार हजार चारसौ (४४००) प्रश्नोत्तर हुए परन्तु उस ने अपना हठ न छोड़ा। तब राजा ने देखा कि इन का तो विवाद मिटना कठिन है तब गुरु से कहने लगा कि महाराज मेरा तो राज का काम बन्द होगया इसलिये इस विवाद को समेटो। तब गुरु महाराज उस रोहगुप्त को लेकर 'कुत्रकाहट्टे' अर्थात् जिस दूकान पर सर्व वस्तु मिले उस की दूकान पर राजसभा के आदमियों के संग पहुंचे और उस दूकानदार से कहा जीवराशि की वस्तु दे उस ने उसी चीज को उठाकरके दिखाया फिर कहा कि अजीव राशि की वस्तु दे तब उस ने घट पटादिक वस्तु को दिखाया फिर श्रीगुरुमहाराज बोले नोजीव राशि दे तब वह दूकानवाला बोला कि महाराज जगत में दो राशि के सिवाय तीसरी राशि हैही नहीं तो मैं कहां से दूं? इस रीति से उस को समझाया परन्तु उस रोहगुप्त ने अपने हठ को न छोड़ा तब गुरु ने उस को छठा निह्नव ठहराकर गच्छ के बाहर किया। उसी रोहगुप्त से वैशेषिक मत चला है और उस ने ६ पदार्थ की परूपना की। यह छठा निह्नव हुआ॥

अब सातवें निह्नव का वृत्तान्त लिखते हैं। श्रीवीर भगवान के

५८४ वर्ष पीछे दसपुर नगर में इच्छुग्रहोद्यान के विषय श्रीआर्य्य रक्षित सूरि आये। उन के तीन शिष्य एकतो (१) गोष्टामाहिल (२) फाल्गुरक्षित (३) दुर्बलिका पुष्प थे। उस वक्त में मथुरा नगरी के विषय अक्रियावादी का जोर बहुत हुआ और उस का प्रतिवाद करने के वास्ते उस जगह कोई नहीं था तब संघ ने मिलकर श्रीआर्य्य रक्षित सूरिजी को खबर दी उस वक्त गोष्टामाहिल को वाद की लब्धि देकर भेजा और उस ने जायकर उन को जीता तब मथुरा के श्रावक विनती करके चार महीने चौमासे के वास्ते रखते हुए। इधर में श्रीआर्य्यरक्षित सूरिजी ने अपना आऊखा निकट जाना जब स्वपाट पर बैठाने के लिये विचारने लगे कि तीनों में से किस को पाट देऊं— बूडोगणहर सद्दोगोअममाईहिं धीरपुरिसेहिं जोतठवेइ अपत्ते जाणतोसोमहापावे॥ इस गाथा को विचार कर सर्व संघ को बुलाय कर उन के सामने आर्य्यरक्षित सूरिजी महाराज कहने लगे कि मैं ने गोष्टामाहिल को तो घी के घडे के समान विद्या पढ़ाई है जैसे घीसे भरा घडा हो और उसे उलटा करें तो घी निकले परन्तु बहुत बिन्दु उस में चिपके रहजांय अर्थात् मैं ने उस को पढ़ाया है परन्तु बहुत विद्या उस को मेरे पास से न मिली। फाल्गुरक्षित को मैं ने तेल के घडे के समान विद्या दी है जैसे तेल के घडे को औंधा करे तो थोडासा तेल रहे इस रीति से मैं ने उसे पढ़ाया है कि थोडीसी विद्या मेरे पास रही बाकी उसे दी है। और दुर्बलिका पुष्प को मैं ने धान के घडेवत् पढ़ाया है कि जैसे धान के घडे को उलटा करे तो उस में किञ्चित दाना भी न रहे। इसलिये मेरी कुल विद्या इस के पास है मैं ने अपने पास कुछ भी न रक्खी। ऐसा जब श्रीआर्य्य रक्षित सूरिजीने कहा तब सर्व

संघ कहने लगा कि हे भगवन् दुर्बलिकापुष्यजी को ही आचार्य्य पद देना चाहिये क्योंकि जैसे आपकी सर्वविद्या के योग्य यह हुए तैसेही आपके पाटकीभी योग्यता इनही को है। ऐसा संघ का वचन सुनकर दुर्बलिका पुष्प जी को सूरि-पद देकर अपने पाट पर बैठाकर गुरु कहने लगे कि हे वत्स ! जैसे मैं ने फाल्गुरक्षित और गोष्टामाहिलादिकों की सार संभार रक्खी है तैसेही तुमभी उन की सार संभार रखना। और फाल्गु रक्षितादिकों से भी कहने लगे कि हे आर्यों ! जैसे तुम मेरी सेवा करते थे उसी रीति से दुर्बलिकापुष्प की सेवा करना क्योंकि मैं तो तुम्हारी सेवा नहीं होती तो भी रोष न करता परन्तु जो तुम इस की आज्ञा न मानोगे तो यह क्षमा न करेगा इसलिये तुम को चाहिये कि मेरे समान इस को समझो। ऐसा दोनों तरफ समझाकर अनसन करते हुए और आयु, सम्पूर्ण करके देवलोक को प्राप्त हुए। उधर गोष्टामाहिल ने भी सुना कि गुरु देवलोक को प्राप्त हुए तब जल्दी से चलकर उस दसपुर नगर में आया और लोगों से पूछने लगा कि आचार्य्यपद किस को मिला ? तब लोगों ने गुरु के दृष्टान्त को सुनाकर कहा कि दुर्बलिका पुष्प को गणधर पद मिला। ऐसा सुनतेही मान के वश होकर गोष्टामाहिल जुदे उपासरे में जायकर उतरा और थोड़ीसी देर ठहरकर वस्त्रादि धरकर दुर्बलिकापुष्प जिस उपासरे में ठहरे थे उस उपासरे में आया। उस वक्त गोष्टामाहिल को देखकर सर्व साधू उठे। उस वक्त आचार्य ने कहा कि तुम जुदे उपासरे में क्यों ठहरे हो ? क्या इस जगह उतरने की तुम्हारी इच्छा नहीं है ? बस इतना सुनतेही गोष्टामाहिल उस उपासरे से निकल कर जहां पाहिले ठहरे थे वहां आगये और जुदे ठहरे हुए लोगों को भ्रम में गेरतेहुए। परन्त

उस के वचन पर किसी ने प्रतीति न धरी। एक दिन दुर्बलिकापुष्पजी आचार्य ने अर्थपौरुषी करने के ताईं सर्व साधुओं को बुलाया परन्तु गोष्टामाहिल उस जगह नहीं आया और न सुनी। तब उन आचार्य के एक शिष्य ने उन से अष्टमें कर्म प्रवाद पूर्व में जो कर्मों की परूपना की थी कि जीव के कर्म किस माफिक बंधता है प्रश्न किया। उस वक्त वे आचार्य कहते हुए कि "बद्ध १ स्पृष्ट २ निकाचित ३" इस भेद करके आत्मा के कर्म का बंध होता है। इस की चर्चा तो चौथे कर्म ग्रंथ में है परन्तु प्रथम जीव के राग द्वेष परिणाम से कर्म बंधता है—सो बद्ध तो उसे कहते हैं कि जैसे सूत के ततु लपेटे हुए। निकाचित उसे कहते हैं कि जैसे तंतु कूट करके आपस में एकसा मिला दिये हों और स्पृष्ट उसे कहते हैं जो उदय में आयकर भोगे। सो निकाचित कर्म तो क्षीर नीर न्याय करके अथवा तप्त लोहे के समान है। इस रीति से आचार्य ने उस को उत्तर दिया तब निकटके उपासरे में रहते हुए गोष्टामाहिल ने भी सुना और उस जगह आयकर कहने लगा कि मैं ने गुरु से ऐसा नहीं सुना है क्योंकि जब कर्म बद्ध स्पृष्ट निकाचित होगा तो मोक्ष न होगी। ऐसा जब उस शिष्य ने गोष्टामाहिल से सुना तब कहने लगा कि कर्म जो जीव से लगा है सो स्पृष्ट निकाचित किस रीति से लगता है सो कहो? तब गोष्टामाहिल कहने लगा कि कचुकी, अर्थात् अंगरखी शरीर से स्पर्श करती है तैसेही कर्म आत्म प्रदेश से स्पर्श करता है नतु क्षीर नीर न्यायेन। तब वह शिष्य गोष्टामाहिल से कहने लगा कि दुर्बलिकापुष्प आचार्य पूर्व कही हुई रीति को कहते हैं। तब गोष्टामाहिल कहने लगा कि वह तुम्हारा आचार्य इस रीति को नहीं जानता है। तब फिर वह शिष्य श्रीसूरि महाराज से जाकर कहने

लगा कि गोष्टामाहिल ऐसा कहते हैं । तब गुरु महाराज कहने लगे कि उस का वचन असत्य है जैसा मैं ने कहा है तैसाही गुरु महाराज कहते थे और उस जगह उस शिष्य के समझाने को दृष्टान्त देकर समझाने लगे कि जैसे लोहे का पिंड अग्नि में धरकर गर्म किया जाय तो लोहे का तमाम पिंड अग्नि रूप होजाय तैसेही जीवभी कर्मों के सम्बन्ध से वैसाही हो जाता है । इत्यादिक युक्ति समझाई परन्तु गोष्टामाहिल ने न माना । फिर एक दिन के समय नवमें पूर्व प्रत्याख्यान के विषय गुरु साधुओं को ऐसा पाठ पढ़ाते हुए कि "साहणं जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं पाणाइवायं पच्चक्खामि" इस रीति से पच्चक्खाण का व्याख्यान आचार्य ने शिष्यों को बताया । इस व्याख्यान के ऊपर गोष्टामाहिल कहने लगा कि "जावज्जीवाए" ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि पचक्खाण का भंग होगा । जाव जीव परलोक में जायगा तब उस का पचक्खाण भंग होजायगा इसलिये पचक्खाण ऐसा करना चाहिये कि जिस से परलोक में भी भंग न होय । उस की रीति यह है कि "सव्वपाणाइवायं पच्चक्खामी अपरिमाणाए तिविहं तिविहेणं एवं" इस रीति से पचक्खाण करने में कोई दूषण नहीं । ऐसा जब गोष्टामाहिल ने कहा तब साधुओं ने श्रीआचार्य महाराज से प्रश्न किया कि गोष्टामाहिल पचक्खाण के वास्ते ऐसा कहता है । उस वक्त आचार्य महाराज कहने लगे कि पचक्खाण का भंग नहीं होता क्योंकि "जावज्जीव" ऐसा कहने से इस भव आश्रय नतु परभव आश्रय । ऐसा जब श्रीदुर्बलिकापुष्प आचार्य ने कहा तब फाल्गुरक्षित को आदि लेकरके जितने स्थिवर साधु थे सर्व ने अंगीकार किया और कहने लगे कि आपने कहा सो ही तीर्थंकरों की आज्ञा है ।

और गोष्टामाहिल जो कहता है सो ठीक नहीं। और स्थिवर साधुओं ने गोष्टामाहिल को समझाया परन्तु उस ने न माना। तब समस्त सघ ने शासन देवी का आराधन किया और शासन देवी आई और कहा कि तुम्हारा क्या काम है ? तब समस्त सघ बोला कि तुम श्रीमन्दिर स्वामीजी के पास जाओ और श्रीभगवान से पूछो कि दुर्वलिकापुष्प आचार्य कहते हैं सो वचन सत्य है या गोष्टामाहिल कहता है सो ठीक है ? तब शासन देवी महाविदेह क्षेत्र में श्रीमन्दिर स्वामीजी के पास गई और भगवान से पूछा तब भगवान कहने लगे कि गोष्टामाहिल कहता है सो असत्य है और श्रीदुर्वलिका आचार्य तो युगप्रधान सत्यवादी है सो तीर्थंकरों के वचन से विरुद्ध कहै नहीं उनका कहना सत्य है। इतना सुनकर शासन देवी ने आयकर सर्व के सामने कहा तिस पर भी गोष्टामाहिल ने न माना और कहने लगा कि इस देवी की अल्प शक्ति है इसलिये उस जगह नहीं जासक्ती है। तब श्रीआचार्यजी ने उस को गच्छ के वाहिर किया और समस्त सघ ने उस को सातवा निन्हव जानकर उसका तिरस्कार किया और किसी ने सग न किया। इस रीति से सात निन्हवों का अधिकार कहा तिस में प्रथम, छठा, सातवा इन तीनों ने तो कदाग्रह को नहीं छोडा और वाकी के चार तो कदाग्रह को छोडकर मिथ्या दुक्कड देकर शामिल हो गये। यहा तक जिस ने सूत्र से विरुद्ध किंचित् भी कहा उसी को निन्हव ठहराय कर समस्त सघ से वाहिर कर दिया और फिर किसी ने भी उस को अगीकार न किया और उन का पक्ष भी न चला। परन्तु श्रीभगवान महावीर स्वामीजी के ६०६ वर्ष पीछे जो कि सहस्रमल शास्त्रों से बहुत विपम वाद करके अलग हुआ

जिसने अपना मत दिगंबर होकर चलाया सो दिगम्बर मत प्रसिद्ध है और शास्त्रों में भी बहुत जगह लिखा है और हमने भी "स्याद्वादानु भवरत्नाकर" में किंचित् स्वरूप लिखा है सो वहीं से समझ लेना। इसलिये इस का वर्णन यहां नाममात्र किया है ॥

अब इस से आगे की व्यवस्था दिखाते हैं कि दिगम्बर ने तो अपने रागी गृहस्थियों की श्रावगी जाति बनायकर मत चलाया और ऐसा जाल फंसाया कि जाति वा कुल का धर्म होने से कोई भी जाल से वाहर न निकल सके और धर्म की भी सत्य असत्य परीक्षा न कर सके। क्योंकि जो जाति कुल धर्म में न फंसाता तो जो आत्मार्थी थे वे सत्य असत्य की परीक्षा करके असत्य को छोड़ते और सत्य को ग्रहण करते तो उसका मत न चलता। इसलिये सहस्त्रमल ने दिगम्बर मत रूपी जाल जाति कुल धर्म को दिखायकर न निकलने दिये। फिर वे लोग फंसे हुए अपना जाति धर्म जानकर जैनी नाम धरायकर कदाग्रह और ममत्व रूपी मिथ्यात्व में उन्मत्त होकर जगत से अनेक द्वेष बुद्धि करते हुए देशों में फैल गये परन्तु आत्मा का अर्थ न देखा और जाल में फंसगये। यद्यपि उनके मत में दिगम्बर मुनि कितनेही काल से अब तक उपदेश देनेवाले नहीं हैं तौभी गृहस्थी लोग अपने जाति धर्म में फंसे हुए आत्म धर्म्म के समान चलाने की कोशिश करते हैं और शास्त्रों का सीखना वा सिखाना सभा करना इत्यादिक अनेक उपाय करते हैं। क्योंकि जो लोग हमारे जाति धर्म में फंसे हुए हैं सो कदाचित् उन लोगों को नहीं चेताते रहेंगे तो इस हमारे जाल से निकल जायंगे इसलिये तेरह पन्थी, गुमान पन्थी और बीस पन्थी आदि भेद हैं और भट्टारिखों में भी गद्दी आदिकों के कई फिरके हैं सो यह बात सर्व्व में

प्रसिद्ध है। और जो कोई श्रावगी इन के धर्म से विपरीत होकर जो किञ्चित् भी और धर्म्म की बात करे तो जाति में से निकालदें और उसका विवाह, भोजन, पान आदिक बन्द करदें। अभी कुछ थोडे से दिन के पहिले नागोर में एक श्रावगी के दो तीन लडके और दो तीन लडकिया थीं सो बाप के मरजाने से नागोर के पास एक गांव में अपने नानेरे में रहते थे सो उस गांव में बालपने से रहते हुए जाति का धर्म यथावत मालूम न हुआ। उस जगह कोई महात्मा की सोहबत पायकरके किंचित् राम २ करने लगे और उन लोगों की सोहबत पायकर के किंचित उस धर्म्म को जानने लगे। तब वे लोग एक दिन नागोर में किसी के विवाह में गये थे उस जगह भट्टारखजी मोजूद थे। उन को जाति-गुरु मानकर मिलने वास्ते गये तो उनको श्रावगियों की रीति तो मालूम न थी सो भट्टारखजी को राम २ किया। उस राम २ के सुनतेही भट्टारखजी ने उन पर बहुत क्रोध किया। तब उन लोगों के जीमें कुछ ईर्षा हुआ और कहने लगे कि महाराज राम २ करने से क्या दोष हुआ?यह भी तो एक धर्म्म है। उसी वक्त भट्टारखजी ने कुल श्रावगियों को इकट्ठा किया और कहा कि इन लोगों ने राम २ किया सो इन को जात से बाहिर निकालदो, क्योंकि जो इन को जात से बाहर न निकालोगे तो इनकी देखा देखी और भी इस धर्म्म को छोडकर अन्य धर्म्म में चले जांयगे तो तुम्हारे बडोंने जो धर्म्म अंगीकार किया है सो तुम्हारे बडों का धर्म्म क्योंकर रहेगा? इसलिये इन को जात से बाहिर करो। इन को बाहिर करने से फिर कोई भी ऐसा न कर सकेगा। तब उन श्रावगियों ने उस भट्टारख की आज्ञानुसार कार्रवाई की और उन [illegible] बाहिर निकाल दिया। तब

जो शख्स निकले थे उन्होंने भी जातवालों की खुशामद न की और दरियादासी रामस्नेही का पन्थ चलाया सो पन्थ मारवाड़ में मोजूद है और नागोर में उनकी निज गद्दी है। इस रीति से इस पंचम काल के लोग जाति कुल धर्म्म के सबब से कदाग्रह ममत्व रूप जाल में फंस रहे हैं और आत्मा के अर्थ की जिनको इच्छा नहीं है। इसलिये बुद्धि-मान अनुमान करते हैं कि इन लोगों का दोष नहीं है किन्तु यह हुन्डा सर्पनी काल में पंचम आरे की महिमा है। अब दूसरी बात सुनो।

हम श्वेताम्बर आमना की व्यवस्था कहते हैं परन्तु जो इस ग्रंथ के बांचनेवाले हैं उन लोगों से हमारा यह कहना है कि जो व्यवस्था इस ग्रंथ में लिखी जाती है उस को बुद्धि पूर्वक गौर करके बांचें और वर्त्तमान काल में जो पक्षपात रागद्वेष ममत्व भाव हो रहा है उस को छोड़-कर जिनाज्ञा में प्रतीति लावें जिस से भव्य जीवों को आत्मा का अर्थ हो और कदाग्रह मिटे, क्यों कि कदाग्रह में धर्म्म की प्राप्ति कदापि न होगी इसलिये रागद्वेष छोड़नाही मुनासिब है। और मैंने यह ग्रन्थ किसी की निन्दा वा खंडन अथवा द्वेष से नहीं लिखा है किन्तु राग द्वेष मिटाने के वास्ते। क्योंकि जिन धर्म्म श्री वीतराग सर्वज्ञ देव का कहा जाता है फिर इस धर्म्म में इतनी पक्षपात अथवा रागद्वेष क्योंकर फैल गया? इसलिये कदाग्रह रूपी कार्य्य को देखकर कारण की व्यवस्था अवश्यमेव कहनी पड़ी नतु यती, सम्वेगी, बाईसटोला, तेरह पन्थी गच्छादि ममत्व के वास्ते। अब देखो कि जिन के पीछे सातवां निन्हव निकला है उस सातवें गोष्टामाहिल निन्हव के गुरु श्री-आर्य्यरक्षितसूरिजी महाराज ने दुर्बलिका पुष्प को ९ पूर्व पढ़ाने के बाद १० वां पूर्व पढ़ाया। परन्तु वे पढ़तो जाते फिर उस को भूल जाते इसालिये श्री

आर्य्यरक्षितसूरिजी ने पडता काल जानकर और जीवों की मन्द बुद्धि समझकर जो कि शास्त्रों में चार अनुयोग शामिल थे, उन की शामिलात को समझना भव्य जीवों के वास्ते कठिन जानकर जुदे २ अनुयोगों की व्याख्या शिष्यों को देने लगे। तब से पृथक् २ अनुयोग हो गये और मैं ने किसी पुस्तक में ऐसा भी देखा है वा सुना भी है कि भाष्य निर्युक्ति उन्ही आचार्यों ने लिखाई है और मूल सूत्र पीछे से लिखे गय हैं। इस में मेरी कुछ दृढ प्रतिज्ञा वा विवाद नहीं है किन्तु जैसा परंपरावाले कहें वैसा ठीक है। अब इन सात निन्हवों तक तो व्यवस्था ठीक रही क्योंकि जिस किसी ने शास्त्र से वा आचार्य स्थिवर साधुओं से एक वचन भी विरुद्ध कहा उसी को निन्हव ठहराय कर जिन धर्म्म से बाहिर किया, और किसी जैनी ने उन को अंगीकार न किया, परन्तु सहस्रमल ने बहुत बातों का शास्त्र से विषमवाद करके बोटक मत अर्थात् दिगंबर मत चलाय राग-द्वेष फैलाया। और उन्ही वक्तों में श्री पार्श्वनाथ स्वामी के सनतानिया श्रीरत्नप्रभुसूरि ने ओसानगरी में लोगों को प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति स्थापन की, और उन को जिन-धर्म का उपदेश देकर जैनी बनाया सो इन का वृत्तान्त मैंने जैसा सुना है तैसा लिखता हूं॥

विक्रम के सम्वत् २२२ की साल मेंश्रीरत्नप्रभु सूरिजी विचरतेहुए ओसा नगरी में गये उस जगह जिन धर्म का प्रचार न देखने अथवा आहार पानी का साधुओं को जोग न मिलने से एक शिष्य को अपने पास रखकर बाकी साधुओं को अन्यत्र विहार करादिया और उन से कह दिया कि मैं चौमासा इसी जगह करूगा क्योंकि सब जने रहें तो इस जगह आहार पानी का जोग मुश्किल है और दो जने की गुजर

तोजैसे बनेगी तैसे हो जायगी इसलिये आहार पानी के अभाव से उन साधुओं को विहार करा दिया और आप अपने सिज्झाय ध्यान में रहने लगे। कुछ दिन के बाद उस नगर का जो राजा था जिस के एकही पुत्र था उस को रात्री के समय सर्प ने काटखाया तब राजा ने अनेक तरह के उपाय किये पर वह पुत्र सचेत् अर्थात जिन्दा न हुआ तब उस नगर में हाहाकार मचगया। प्रातःकाल को उस पुत्र को मसाणों में लेजाने लगे उस वक्त गुरु ने अपने शिष्य से कहा कि तू जाकर किसी राजवाले से कह दे कि इस लड़के को हमारे गुरु के पास लेजाओ तो वे जिन्दा करदेंगे। उस साधू ने जाकर किसी राज के कामवाले से कहा कि जो राजा का पुत्र मरगया है उस को तुम हमारे गुरु के पास लेजाओ तो जिन्दा हो जायगा। और श्रीगुरु महाराजजी फलानी जगह रहते हैं। इतना उस राज के कामदार से कहा तब उस कामदार ने राजा से उसी वक्त जाकर अर्ज की। तब राजा अपने पुत्र को लेकर सब आदमियों के साथ श्रीगुरुमहाराज के पास पहुंचा और श्रीरत्नप्रभु सूरिजी के चरणों में लौटकर कहने लगा कि मेरे यही एक पुत्र है इस के सिवाय दूसरा कोई पुत्र नहीं। मैं ने आप की शरण ली है इस को आप अच्छा करो तो मेरा वन्श रहे नहीं तो मेरा वन्श उच्छेद होजायगा। हे भगवान्! आप सत पुरुष महात्मा हो आप के वचन से मेरा भला होगा। इसलिये आप मेरा उपकार करो। उस वक्त श्रीगुरु महाराजजी बोले कि थोड़ासा जल मंगाओ तब राजा ने उसी वक्त लोटा अमनिया जल का भराकर मंगाया और श्रीगुरु महाराज को देने लगा। तब गुरु महाराज कहने लगे यह तो कच्चा जल है हम तो इस को छूतेभी नहीं, गर्म पानी हो तो काम

चले । तब वहां गर्म जल का मिलना मुश्किल होगया । फिर गुरु महाराज ने कोई और उपाय करके उस राजा के लडके को सचेत अर्थात् जिलादिया । तब राजा बडे चमत्कार को प्राप्त हुआ और उस ने अपने पुत्र का बहुत उत्सव किया और गुरु महाराज की भेंट में भी लाखों रुपये का द्रव्य लायकर रक्खा । तब श्रीगुरु महाराज कहने लगे कि भाई हम तो साधू हैं, हम धन रखना तो अलग रहा परन्तु हाथ से भी नहीं छूते । उस वक्त राजा कहने लगा कि हे महाराज! आप ने मेरा वन्श चलाया इस उपकार पर इतनीभी आपकी सेवा न करू तो और मुझ से क्या बन सकेगा सिवाय देने लेने के? नहीं तो आप कुछ और आज्ञा फरमाइये । जो आप की आज्ञा हो सो मैं करु । तब गुरु महाराज कहने लगे कि हे राजन् ! जो तेरी ऐसीही इच्छा है तो तू श्री वीतराग सर्वज्ञ देव का धर्म अगीकार कर जिस से तेरा दोनों भव का कल्याण हो । इस हमारी आज्ञा को अगीकार कर । राजा कहने लगा कि हे महाराज ! वह धर्म कैसा है उस का आप हम को उपदेश दीजिये तो हम अगीकार करें । उस वक्त श्रीगुरु महाराज ने वीतराग के धर्म का स्वरूप बताया तब राजा को आदि लेकरके सब लोग उस धर्म को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और राजा हाथ जोडकर अर्ज करने लगा कि हे महाराज ! आप ने जो धर्म्म का उपदेश दिया सो तो जीव दया रूपी बहुत उत्तम और निर्मल है परन्तु मैं अभागा इस नगर का राजा हू सो मुझ से यह दयारुपी धर्म्म पलना कठिन है क्योंकि इस नगर की जो देवी है सो साल की साल मनुष्य का बलि लेती है और भैंसा बकरों की तो गिन्तीही नहीं । इसलिये हे प्रभु ! मेरे से यह दया रूपी धर्म्म क्योंकर

पले ? अलबत्ता जो यह देवी इस बलिदान को न लेय तो मैं आप के धर्म्म को अंगीकार करूं। तब श्रीगुरु महाराज कहने लगे कि हे राजन्! तू धर्म्म अंगीकार कर इस का बंदोबस्त हम करदेंगे जब तेरे बलिदान के दो चार दिन बाकी रहें तब तू हम को औसर जना देना। इतना सुनकर राजा ने और राजा के कामवाले और वहां के सेठ साहूकार अर्थात् कुल बस्तीभर ने जिन-धर्म्म अंगीकार किया। इस के पीछे जब वह बलिदान का वक्त आया तब राजा ने गुरु महाराज को औसर जताया कि आज से ८वें दिन बलिदान होगा अब आप उपाय बतावें सो करें। उस वक्त गुरु महाराज ने रात्री के समय उस देवी को आकर्षण करके बुलाया और उस देवी को उपदेश दिया तब देवी कहने लगी कि मेरी पूजन होनी चाहिये। तब गुरु महाराज कहने लगे तेरी पूजन कोई बन्द नहीं करता तेरे बलबाकल भेंट दिये जांयगे। इतना सुन देवी नमस्कार कर अपने स्थान को चलीगई। और सवेरे के वक्त राजा को आदि लेकर सर्व को कहदिया कि शीरा, लापसी, पूरी, पांपड़ी, खाजा, मेवा, मिठाई इत्यादिक अनेक चीजें चढ़ाओ परन्तु बलिदान मत दो, तुम को कोई उपद्रव नहीं होगा। तब राजा को आदि लेकर सर्व लोगों ने उसी रीति से पूजन किया परन्तु देवी ने उस पूजन को अंगीकार न किया और कुपित होने लगी, और कहने लगी कि मेरा बलिदान लाओ। तब गुरु महाराज ने फिर उस को आकर्षण करके समझाया और कहा कि जो तुम देवता होकरके ही वचन से उलटते हो तो मनुष्य क्योंकर सत्य पर रहेगा ? तब देवी कहने लगी कि मेरा बलिदान मुझे मिलना चाहिये। तब गुरु महाराज कहने लगे कि लापसी, शीरा, पूड़ी, पापड़ी, खाजा इस

के सिवाय तो और कुछ बलिदान नहीं होता। हमारे यहां तो यही बलिदान है। तब देवी कहने लगी कि मैं तुम्हारे वचन में आई हुई लाचार हू परन्तु जो तीन दिन के भीतर इस बस्ती से बाहिर निकल जायगा सो तो सर्व तरह फले फूलेगा और खुशी रहेगा नहीं तो जो मेरे कहने के उपरान्त रहेगा उस को सिवाय दुःख के और मरने के कुछ नहीं होगा। इस वचन को सुनकर सब लोग वहा से निकलकर जिधर जिस की इच्छा आई उधरही जा बसे। इस कहने से ऐसा अनुमान सिद्ध होता है कि वह नगरी की नगरी ओसवाल जाति को प्राप्त हुई और कोई की जबानी ऐसा भी सुना है कि राजा का कामदार था उसी के पुत्र को जिलाया था सो वह कामदार और उस के सगा सम्बन्धियों ने जिन-धर्म्म को अंगीकार किया। इसलिये ओसवालों में 'तातेड' जाति के प्रथम हुए हैं सो ऐसा भी सुनने में आया है। और जो भेट के रुपये गुरु महाराज के सामने रक्खे थे उसी द्रव्य से मन्दिर उस जगह बना और उस मन्दिर में श्रीमहावीर स्वामी शासनपतिजी की मूर्त्ति, श्रीरत्नप्रभुसूरिजी के हाथ की प्रतिष्ठा की हुई मोजूद है। और ऊपर लिखी बातें मैंने सुनी हुई लिखी हैं इस लिखने में मेरा किसी से वाद विवाद नहीं है किंतु यहा मेरा यह वार्ता लिखाने का प्रयोजन यही है कि पेश्तर जिनमत में जिस को धर्म की रुचि थी सोही धर्म्म अंगीकार करता, परन्तु यहां से श्रीरत्नप्रभुसूरिजी ओसवाल जाति स्थापन कर जिन धर्म का उपदेश देकर शुद्ध मार्ग में लाये। परन्तु इस जगह से दृष्टिराग और जाति-धर्म के होने से किंचित् पक्षपात का बीज शुरू हुआ और शिथिलाचार की भी किंचित् नींव लगी है लेकिन इस नगर के बनने व बसने में अभी कुछ विलम्ब

होगा क्योंकि श्रीमहावीर स्वामी का वचन है कि मेरे निर्वाण के पीछे एक हज़ार वर्ष तक अखंड शासन चलेगा फिर आहिस्ते २ इस हुन्डा सर्पनी दूषण काल के प्रभाव से दुःख-गार्भित, मोह-गार्भित वैराग्यवाले धर्म को चलनी के समान कर डालेंगे और कुमति, कदाग्रह, रागद्वेष, पक्षपात से धर्म की प्राप्ति भव्य जीवों को प्रायः करके मुश्किल होजायगी। इसलिये इस ममत्व रूपी नगर का बनना व बसना आहिस्ते २ प्रबल होता चला जायगा सो मैं भी किंचित् हाल लिखता हूं सो बुद्धि से बिचार करके बांचेगा व सुनेगा तो हाल सब खुल जायगा। इस वास्ते आगे का हाल कहता हूं कि "श्रेयांसि बहु विघ्नानि भवंति महतामपि" अर्थात् अच्छे काम में अनेक तरह के विघ्न होते हैं सो देखो कि एकतो बहुत द्वेष का बढ़ानेवाला अनेक बातों को जैनमत से विरुद्ध कहता हुआ दिगम्बर मत निकल कर अनेक तरह के प्रपंच करके शुद्ध मार्ग को आपत्ति देता हुआ; और दूसरा बीच २ में कई दफा बारह बरसिया काल भी पड़ा उस से भी साधू मुनिराजों को आहारादिक की अनेक तरह की आपत्ति पड़ी; तीसरा काल के दूषण से बुद्धि हीन अर्थात् मन्द होने लगी कि जिस से शास्त्र का पूरा पठन पाठन न होसके। परन्तु तिसपर भी कितनेही काल तक मुखस्थ (मुखाग्र) ही विद्या का पठन पाठन चला आया। फिर जब आचार्य ने देखा कि अब न चलेगा तब भगवान श्री महाबीर स्वामी के निर्बाण से ९८० वर्ष पीछे श्री देवर्द्धि गणि क्षमाश्रवण आचार्य ने सर्व साधुओं को इकट्ठे करके शास्त्र का लिखना शुरू किया और स्थिवरों को जैसे २ अलावे याद थे वैसे के वैसे अलावे पुस्तकों में आरूढ़ किये परन्तु ऐसाभी श्रवण करने में आता है;

कि पेश्तर-भी किसी आचार्य ने पुस्तकों में स्थिवरों की जबानी से शास्त्र लिखाये थे परन्तु उन दोनों को आपस में मिलाकर शुद्ध न कर सके इसलिये कितनेही शास्त्रों में आपस में विषमवाद है। परन्तु हमारे तो यहा इतनाही प्रयोजन है कि-भगवान श्रीमहावीर स्वामी के ६८० वर्ष पीछे पुस्तकों में शास्त्र लिखे गये पेश्तर कठाग्र थे सो गुरु आदिक जैसा शिष्य को पढाते वैसाही अर्थ वह याद रखता और उसी पर आरूढ़ होकर चलता। कदाचित् कोई अपनी बुद्धि के अनुसार अर्थ में फेरफार करता तो उस का फेरफार न चलता क्यों कि जो बडे २ स्थिवर साधु थे उनही के वाक्यों को सत्य मानतेथे और उनही लोगो का प्रमाण देते थे इसलिये जो गुरु ने अर्थ बताया था सिवाय उसके दूसरा अर्थ न चला क्योंकि उस जगह कोई पुस्तक के लेख का प्रमाण नहीं था केवल आचार्य व स्थिवर गीतार्थियों के वचनही का प्रमाण दिया जाता था। सो इन आचार्य महत् पुरुषों ने उपकार बुद्धि से कागज व ताडपत्रों पर सूत्र, भाष्य, टीका, निर्युक्ति, चरणी आदिक लिखे क्योंकि जो मन्दबुद्धि है उनको मुखस्थ याद न होगा तो इस पुस्तक से याद करके अपनी आत्मा का अर्थ करेंगे। इसलिये भव्य जीवों को पुस्तक का अवलम्बन दिया। परन्तु एक तो यह पुस्तक का अवलम्बन दूसरा सूत्रों का आपस में मिलाप न होने से जो बीच में कई सूत्रों में विषम वाद रहा सो ये दोनो कारण उस ममत्व रूपी नगर के बसानेवाले दुःख और मोह गर्भित वैराग्यवालों के वास्ते सहायकारी हुए ॥

अब इस जगह कोई ऐसी शंका करता है कि जो तुम्हारे जैन-मत के सर्वज्ञ हुए थे उन्हों ने खगोल भूगोल व ज्योतिष आदि उस सर्वज्ञता में देखे नहीं या उन को आधी सर्वज्ञता हुई ? अथवा उन्हों

ने सम्पूर्ण सर्वज्ञता से देखकर ज्योतिष, खगोल, भूगोल आदि कहा है सो तुम्हारे आचार्यों ने पुस्तकों में क्यों नहीं लिखी ? इस खगोल, भूगोल व ज्योतिष का विधान मिलने से ऐसा मालूम होता है कि तुम्हारे कोई सर्वज्ञ नहीं हुआ और तुम्हारे आचार्यों ने नया मत चलाया है ॥

समाधानः— भो देवानुप्रिय ! इस खगोल, भूगोल व ज्योतिष की विधि न मिलने से तुझको जो शंका उठी इस का समाधान तो हम नीचे दृष्टान्त देकर प्रयोजन सहित समझाते हैं । जैसे किसी साहूकार के घर में अग्नि लगे और मकान जलने लगे उस वक्त वह साहूकार उस जलते हुए मकान में से अपनी वस्तु निकालना शुरू करे तो पहले जो अच्छी अच्छी वस्तु है उस को निकाले नतु खाट, खटोली, चक्की, हांडी, कूंडा, झाड़ू, बुहारी इत्यादिकों को । इस से समझो कि जैसे वह साहूकार अपनी अच्छी अच्छी वस्तुओं को निकालता है उसी रीति से जिस वक्त में इस हुन्डा सर्पनी दूषण काल के होने से अथवा दिगम्बर आदि विषमवादी के उपद्रव से अथवा बारह वर्ष काल आदि कई बार पड़ने से और जीवों की मन्द बुद्धि को देखकर इस रीती की चारों ओर की अग्नि से जलता हुआ देखकर उस वक्त पूज्यपाद श्रीदेवर्द्धि क्षमाश्रवण आचार्यजी ने उपकार बुद्धि से फैंट बांधकर जो सम्यक् २ मोक्ष मार्ग साधने की चीजें अर्थात् द्रव्यानुयोग और चरणकरणानुयोग और गणितानुयोग में कर्म बंधन के हेतु इत्यादि सम्यक् २ वस्तु को पुस्तकों में जल्दी से लिखाया और आयु कर्म थोड़ा होने से जोकि अचार्यों ने पहिले किञ्चित् पुस्तकें लिखाई थीं उनका भी आपस में मिलान न कर सके । इसलिये जगह २ किञ्चित शास्त्रों में विषमवाद भी रहगया । इसीलिये हे

भोले भाइयो! खगोल, भूगोल, व ज्योतिष आदि शास्त्रों को लिखने की कोशिश न की, केवल मोक्ष मार्ग साधने के वास्ते द्रव्य का निर्णय और चारित्र का प्रतिपादन अच्छी तरह से किया और उन्हीं को लिखा है। इसलिये तुम्हारी शका निष्प्रयोजन होगई और सर्वज्ञ का अभाव न हुआ। और जो तुमने नवीन मत कहा सो भी तुम्हारा कहना ठीक नहीं, क्योंकि देखो पेश्तरभी बड़े २ आचार्यों ने इस जिन धर्म को अनादि सिद्ध किया है और यह श्रीजिनधर्म अनादि सिद्ध है और हमने भी 'स्याद्वादानुभवरत्नाकर' के दूसरे प्रश्न के उत्तर में न्याय वेदान्त, आर्य्य, मुसलमान और ईसाइयों के मत का निर्णय करके अन्त में श्रीजिनधर्म को युक्ति और अनुभव से अनादि सिद्ध किया है सो उस को देखने से तुम्हारा सन्देह दूर होजायगा इसलिये इस जगह ग्रन्थ बढ़जाने के भय से नही कहते हैं। क्योंकि हम को तो इस ग्रन्थ में श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव की आज्ञा कथन करने के सिवाय किसी मत मतान्तर का खण्डन मण्डन करने की इच्छा नहीं, केवल जिन धर्म की व्यवस्था कहनी है। इस जगह प्रसग से हमने शका समाधान लिखा है, परन्तु अब सुनो कि श्रीदेवर्द्धि क्षमाश्रमण आचार्य महाराज से पुस्तकों पर पठन पाठन चला है और श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराज भी इसी वक्त में हुए थे सो उन्होंने भी आवश्यक की निर्युक्ति के ऊपर बाईस हजारी बडी टीका रची और श्रीदशवैकालक की टीका भी बनाई। ऐसाभी सुनने में आता है कि १४४४ प्रकरण इन के बनाये हुए हैं। सो कितनेही प्रकरण देखने में आते हैं परन्तु इन के प्रकरण टीका आदि देखने से ऐसा मालूम होता है कि पासत्था, शिथिलाचारवाले किंचित् प्रवृत्त

होगये थे क्योंकि इन के ग्रंथों में पासत्थे आदिकों का वहुत निषेध किया है और शुद्ध मार्ग को पुष्ट किया है क्योंकि ऐसा न्याय है कि " विधि होगी तो निषेध होगा, विधि नहीं तो निषेध किस का ? " और ऐसा भी अनुमान से सिद्ध होता है कि उन पासत्थे आदि शिथिलाचारियों ने लिखी हुई पुस्तकों में गाथा आदिभी विशेष मतलब की जानकर प्रवेश की कि जिस से अपना मतलव सिद्ध हो । क्योंकि जहां आचार्यों ने सूत्र की व्याख्या की है तिस जगह युक्ति और प्रमाणों से सिद्ध किया है कदाचित् कहीं अपनी युक्ति नहीं चली तो इतना कहके छोड़दिया कि " ज्ञानीगम्य" अर्थात् ज्ञानी जाने ऐसा कहके छोड़दिया परन्तु अपनी बुद्धि से कुछ न मिलाया और जिस जगह उन को गाथा का प्रक्षेप मालूम हुआ उस जगह उन्हों ने गाथा का अर्थ तो किया पग्न्तु उस शिथिलाचार की गाथा को अपनी युक्ति से पुष्ट न किया, और केवली को भी न भुलाया । जो कोई ऐसा कहे कि तुमने ऐसा अनुमान क्योंकर किया और ऐसी व्याख्या किस जगह देखी जो तुम ऐसा लिखते हो ? ॥

तो हम कहते हैं कि हे भोले भाई ! वर्त्तमान काल में तो लोगों ने अलावें के अलावे सूत्रों के उठा दिये, सो तो जब हम वर्त्तमान काल का हाल लिखेंगे अथवा जिस जगह जियादा कुमति कदाग्रह रूप घूघू उत्पन्न हुए हैं उस जगह लिखेंगे । परन्तु किंचित् अनुमान हम अपना दिखाते हैं कि श्रीहरिभद्र सूरिजी की की हुई टीका जो श्रीदशवैकालक की निर्युक्ति के ऊपर है उस में श्रीआचार्य महाराज ने जो कि द्रव्य रखने की गाथा साधु के वास्ते उस निर्युक्ति में कही है उस गाथा का अर्थ श्रीहरिभद्र सूरिजी महाराज ने किया है सो उस

अर्थ में ऐसा है कि साधू कार्य के वास्ते सोना लावे और अपने पास रक्खे और कार्य हुए के बाद परटदे ऐसा कहकर न तो कुछ अपनी युक्ति दिखाई और न केवली को भुलाया परन्तु इतना तो उस जगह लिखा है कि "मध्यस्थै.पुरुषैःस्वधीयाविचारणीया" इतना लिखकर फिर आगे के सूत्रों की व्याख्या करने लगे । इस ऊपर लिखे मध्यस्थ वाक्य के देखने मे मालूम होता है कि जो यह गाथा क्षेपक न होती तो वे अपनी युक्ति देकर अच्छी तरह से पुष्ट करते अथवा केवली को भुलाते अर्थात् ज्ञानी को भुलाते सो इन दोनों बातों में से एकभी न की । इस-लिये हमारा अनुभव सिद्ध हुआ, और इस का विस्तार आगे लिखेंगे । सो इस ममत्वरूपी नगर में मकान आदि तो बनने लगे परन्तु रहने वाले अभी तैयार न हुए। और इस अर्से में कई आचार्यों ने क्षत्री आदिकों को प्रतिबोध कर ओसवालभी बनाया होगा सो श्री उद्योतन सूरिजी तक तो इसी रीति से बराबर शासन चलता रहा परन्तु श्रीउ-द्योतन सूरिजी महाराज के पाटधारी तो श्री वर्द्धमान सूरिजी हुए लेकि-न श्रीउद्योतन सूरिजी के पढ़ाये हुए ८३ साधू थे सो घडी पल देख-कर उन ८३ साधुओं को वासक्षेप देकर आचार्य पद दिया सो इस जगह ८४ गच्छ की स्थापना हुई । इन ८४ गच्छों की स्थापना होने मेंही उस ममत्व रूपी नगर बसने का अंकुर उत्पन्न हुआ परन्तु हाल का हाल ममत्व रूपी नगर न बसा और ८४ गच्छ वालों में परस्पर मम-त्वभाव-प्रीति बढती रही और रागद्वेष न उठा और सर्व जने मिलकर जिनधर्म की उन्नति करने लगे अर्थात् हजारों लाखों आदमियों को प्रतिबोध देकर ओसवाल जाति में मिलाते गये । सो जो वर्त्तमान काल में गच्छ आदि मोजूद हैं उनकी पाटावली में लिखा है कि हमारे

फलाने आचार्य ऐसे प्रबल प्रभाविक हुए कि जिन्होंने इतने घर प्रतिबोध कर नवीन जैनी बनाये सो जिस किसी को देखना हो सो उनकी पाटावली से देख लेना। मुझ को तो यहां यही मतलब कहना था कि श्रीरत्नप्रभु सूरिजी ने ओसवाल किये थे उनके पीछे भी बहुत आचार्यों ने क्षत्री, ब्राह्मण, अगरवाले और महेश्वरियों को प्रतिबोध देकर जैनी बनाये और वे उनको ओसवालों में मिलाते चले गये। सब से पीछे एक मणोत जैनी होकर ओसवालों में मिले। इन के बाद कोई ऐसा प्रबल आचार्य न हुआ कि जिस ने और जाति को जैनी बनायकर ओसवालों में मिला दिये हों। हां प्रतिबोध तो औरों को किसी २ आचार्य ने दिया होगा परन्तु जिस जाति में थे उसी जाति में रहे और जैन धर्म को पालते रहे परन्तु मणोत के बाद जैनी होकर ओसवालों में कोई न मिले। यह बात मेरे श्रवण करने में आई है, मेरे इस बात पर वाद विवाद नहीं है। मैं ने तो सुना था जैसा कहा ॥

अब देखो कि १२१३ के सम्वत् तक तो जिन धर्म के आचार्यों में प्रीति और ममत्वभाव बना रहा और श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाण के १००० वर्ष पीछे से ही शिथिलाचारी और चैत्यवासी अथवा कुछ २ परिग्रह के धारण करनेवाले प्रवृत्त होगये थे। परन्तु जो उत्कृष्टे आचार्य धर्म में चलनेवाले आत्मार्थी जिनमार्ग को दिपानेवाले आचार्य और उन की आज्ञा में चलनेवाले साधू थे वे सब आपस में ममत्वभाव प्रीति में रहते थे और गच्छ आदिक का कोई कदाग्रह भी न था। और जो पासत्था आदिक थे सो भी अपनी क्रिया में शिथिल थे और परिग्रह आदि भी रखते थे परन्तु विरुद्ध परूपना वा समाचारी गच्छ

आदिक का ममत्वभाव ऊपर से नहीं जताते थे। हा अलबत्ता पासत्थापने को पुष्ट करते थे। इस रीति से १२१३ के सम्वत् तक तो कदाग्रह रूप घुघू न जागे लेकिन १२१३ के सम्वत् से ही कदाग्रह चला सो लिखते हैं। परन्तु इसके पहिलेभी पासत्था आदिक परिग्रहधारियों का जोर हो गया था सो गुजरात में पासत्थे चैत्यवासी होकर बैठगये थे और शुद्ध साधुओं की प्रवृत्ति उस जगह कम रही थी उस वक्त का हाल लिखता हू। खरतर गच्छवाले कहते हैं कि १०७६ की साल में श्रीवर्द्धमान सूरिजी ने अपने शिष्य श्रीजिनेश्वरसूरिजी महाराज को आचार्य पद देकर पाटन की तरफ विहार कराया। जब वे विचरते हुए पाटन की तरफ दुर्लभ राजा अपर नाम भीमराज के नगर में पहुचे तो किसी मुसद्दी का निर्वद्ध मकान देखकर उसकी आज्ञा से उस जगह ठहरते हुए और अपना शुद्ध साधूमार्ग पालते हुए शुद्ध मार्ग का उपदेश भी देते थे। उस जगह चैत्यवासी पासत्थो का जोर बहुत था सो उन्हों ने राजा से जाकर कहा कि तुम्हारे नगर में चोर आये हैं और फलाने की सहायता से फलानी जगह ठहरे हैं और ये पक्के बानेत चोर हैं सो इन का बदोबस्त करना चाहिये। राजा ने इस बात को सुनकर रात के समय अपने सिपाहियों को भेजा कि जिस जगह वे चोर ठहरे हैं उनकी निगाह करो कि वे रात को कहां २ जाते हैं और क्या २ करते हैं? जो वे किसी के घर में घुसें तो उन्हें पकड़ो। जब वे सिपाही लोग शाम पडे उस मकान के ऐरगैर (इधर उधर) जालगे और निगाह दाश्ती करने लगे। सो उन साधू लोगों के तो रात में जाना आना फिरना बनताही नहीं परन्तु अलबत्ता मात्रादिक (लघुनीत=पेशाब) परटने को

जाते तो उस वक्त में अपने ओघा से जमीन को पूजते (जीव जन्तु को अलग करते) हुए आहिस्ते २ जायकर मात्रा को परटकर फिर लौटकर आसन को पूजकर फिर बैठजाते थे। सो ६ घड़ी रात तक तो उन्हों ने सिज्झाय ध्यान किया फिर उघाड़ पोरसी करके आधी रात तक ध्यान किया। आधी रात के बाद आसन बिछाकर सोने की इच्छा से उस आसन पर लेटगये सो भी इस रीति से कि पग और हाथ सब सिकोरे हुए सब डांवी करवट सो गये। कदाचित् किसी साधु को करवट लेनी होती तो ओघा अर्थात् रजोहरण से जिस अंग की तरफ सोना होता उस अंग की तरफ उस को पूजता फिर आसन को पूजकर (पोंछकर) (झाड़कर) अपना पसवाड़ा फेरता। इस रीति से पहरभर की नींद लेकर पहरभर रात से सोते से उठे और अपना धर्म्म कृत्य करने लगे। इसी रीति से उन को दिन उगगया और प्रतिक्रमण करने के बाद अपने वस्त्रों की विधि पूर्वक पड़लेगा करने लगे। ऐसा उनका हाल देखकर वे सिपाही लोग आपस में कहने लगे कि हे भाइयो ! ऐसे चोर तो हमने आज तक देखे नहीं परन्तु न मालूम किस दुष्ट ने उस राजा के कान भरदिये ! ऐसे करुणानिधि, जीव की दया पालनेवाले कि जो बिना ज़मीन को पूजे उस पर पांव भी न धरें ऐसे महात्माओं को चोरी का कलंक लगाना बहुत बुरा है परन्तु हम को क्या, हम तो राज के नौकर हैं, जैसा राजा ने हुक्म दिया तैसा किया। अब जैसा हमने इन का चाल चलन देखा है वैसा राजा से अर्ज करदेंगे। तब वे सिपाही लोग वहां से चले और राजा के पास पहुंचे और जो रात्रीभर का वृत्तान्त देखा सो सब राजा से बयान किया। तब राजा ने सुनकर जिस के

मकान में ठहरे थे उस को बुलाया और उस से कहा कि तुम ने अपने मकान पर चोर ठहराये हैं। तब वह कहने लगा कि हे राजन् ! मेरे यहा तो चोर नहीं हैं किन्तु साहूकार हैं। इतना सुनकर राजा चुप हुआ और उस को तो विदा किया और जिन्हों ने चोर बतलाये थे उन को बुलाकर कहा कि तुम तो चोर बतलाते थे परन्तु वे तो चोर नहीं हैं। तब वे पासत्थे आदिक कहने लगे कि हे राजन् ! वे धर्म्म के चोर हैं नतु गृहस्थ के धनादिक के चोर। इधर से जिस के मकान पर ठहरे थे वह राजा के यहा से जाकर गुरु महाराज को कहने लगा कि महाराज साहब ! राजा ने मुझे ऐसा कहा। तब गुरु महाराज कहने लगे कि हे देवानुप्रिय ! तू राजा से जाकर कह कि "जिन शख्सों ने उन को चोर बतलाया है, वे चोर हैं। इसलिये हे राजन् ! आप को चोर और साहूकार की निश्चय करनी चाहिये। क्योंकि जो आप राजा हो निश्चय न करोगे तो दूसरा कौन करेगा ? इस वास्ते आप इस काम को जरूर करो। क्योंकि जिस से पूरी २ खबर पडजाय। इस बात को सुनकर राजा ने उन पासत्था आदिकों को बुलाया और उन से कहा कि तुम उन को धर्म्म का चोर बतलाते हो इस का क्या प्रमाण देते हो ? तब वे चैत्यवासी पासत्थादिक कहने लगे कि सूत्रों के प्रमाण से वे चोर हैं। इतना वचन सुनकर राजा उस श्रावक से कहने लगा कि वे जब चोर नहीं हैं तो उन को इस सभा में लाओ। तब वह जाकर गुरु महाराज को उसी वक्त राजा की सभा में लेकर आया। उस वक्त गुरु महाराज को देखते ही राजा उठकर खडा हुआ और उन का सनमान कर बिठाया। तब उन दोनों के शास्त्रार्थ में दशवैकालिक सूत्र का प्रमाण-

रखकर दिखाते हैं उस से बुद्धिमान समझ लेंगे और मेरे लिखे हुए का विचार आत्मार्थियों के यथावत् बैठ जायगा नतु हठग्राही, कदाग्रही, संसारी, निविड़ मिथ्याती के। देखो जब दो शख्स ईर्षा, मान, बड़ाई तृष्णा के जोर से आपस में गालीगिलोच, मारपीट करने लगते हैं उस वक्त में एक ने किसी के थप्पड़ मारा तो वह थप्पड़ खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के घोंसा मारने को दौड़ता है। घोंसा खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के लात मारने को दौड़ता है और लात खानेवाला अपने प्रतिपक्षी के जूती मारने को दोड़ता है इसीरीति से लाठी, दण्डा, पाषाणादिको जानलेना। और जब दस बीस आपस में लड़ते हैं तब उस जगहभी अपने २ प्रतिपक्षी को मारने के सिवाय और कुछ उपाय नहीं सूझता है। सो देखो उन लड़नेवाले शख्सों को पगिया, दुपट्टा, कड़ा, कंठी, रुपया, पैसा इत्यादिक चीजों का खयाल नहीं कि उन चीजों को कोई शख्स उठाकर ले जावेगा। परन्तु चीज़ जाने का तो कुछ सोच है नहीं, केवल इतनाही सोच है कि इसने मेरे मारी है मैं इस के मारूं जबही मेरी बात रहे। ऐसा खयाल करके मारपीट में लगा हुआ अपनी अनेक वस्तुओं को गमाता है। इसी रीति से इस जैनमत में साधू लोगों ने गच्छ ममत्वरूप भिन्न २ समाचारि करके गृहस्थियों को दृष्टिराग में फंसायकर, मान, बड़ाई, ईर्षारूप तृष्णा में लगे हुए कदाग्रह रूप स्थाप उत्थाप, पक्षपात, लड़ाई करते हुए जिनाज्ञा, विनय, यत्न, क्षमा, सन्तोष इत्यादिक वस्तुओं को गमाते हुए, केवल अपनी पक्ष की वृद्धि के वास्ते जिनाज्ञा आदिक वस्तुओं का कुछ भी खयाल न किया। इस दृष्टान्त से आत्मार्थी भव्य जीवों को विचारना चाहिये कि कदाग्रह रूपी झगड़े में वीतराग-आज्ञा रूप धर्म्म चिन्ता-

मणि रत्न क्योंकर पास रह सकेगा ? अब देखो इस कदाग्रह होने का कारण यही है कि पड़ता काल होने से आचार्यों ने जाति कुल जिन धर्म्म के विषय स्थापी । उस ज्ञाति (जाति) के स्थापने से दुःखगर्भित, मोहगर्भित वैराग्यवालों के वास्ते यजमान पुरोहिताई के बतौर होगया । इसलिये जिन धर्म्म अक्सर ओसवाल पोडवालों में कुल धर्म्म होजाने से मान, बड़ाई, ईर्षा, परिग्रहधारी, इन्द्रियों के विषय भोगने वाले, जिनाज्ञा विराधकों ने गृहस्थियों के गले में दृष्टिराग, ममत्वरूप पीतल की हाडी डालदी कि सिवाय सिर पटकने और क्लेश करने और कर्मबन्ध हेतु के गले से हाडी निकलना मुश्किल होगया केवल कदाग्रहही बढ़गया । क्योंकि जो वे लोग ऐसा न करते तो उन का ऊपर लिखे मूजिब व्यवहार न चलता । इस जगह दो दृष्टांत हैं । प्रथम तो जैसे किसी वस्ती में कुल नगर की गाडर इकट्ठी होकर नगर से बाहर चरने को जाती हैं सो उन गाडरों का स्वरूप तो सब का एकसाही होता है इसलिये जोकि गाडरों के मालिक थे उन्हों ने अपनी गाडरों की पहचान के वास्ते अपनी २ गाडरों के थोक में अपनी इच्छा के मूजिब चिन्ह बनाये कि जिस से अपनी गाडर दूसरों की गाडर में मिल न जाय । सो वे चिन्ह इस रीति के किये—किसी ने तो लाल रंग सिन्दूर का, किसी ने केसर का, किसी ने काला, किसी ने पीला, किसी ने श्वेत, इस रीति से चिन्ह करके निधड़क होगये । जैसे उन गाडरवालों ने गाडरों पर चिन्ह किये इसी रीति से जो कि ओसवाल पोडवाल कुल के जैनी हैं सो सब इकसार जाति में थे, इसलिये मान, बड़ाई, ईर्षा, इन्द्रियों के विषय भोगनेवालों ने अपनी अपनी इच्छानुसार समाचारी बांधकर अपनी २ पहिचान के

वास्ते बतौर जिजमान पुरोहिताई के अपने जुदे२ श्रावक छांट लिये। यह प्रथम दृष्टान्त हुआ। अब दूसरा दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे कोई शख्स था उस के यहां थोड़ासा दूध होता था सो उसे हांडी में गरम किया करता था और उस हांडी का मुंह छोटा था। परन्तु उस दूध के लालच से बिल्ली आयकर उस में मुंह गेरती तब उस का मुख उस हांडी में चला जाता और दूध को पीजाती। फिर दूध पीकर वह सिर निकालती तो उस का सिर न निकलता तब वह बिल्ली ज़मीन या पत्थर पर सिर मारती तो वह मिट्टी की हांड़ी फूट जाती और वह बिल्ली मस्त होकर खुलासा फिरती और दूध के मज़े से रोज़ीना यही किया करती थी। तब वह शख्स बिल्ली का उपाय रखता परन्तु न चलता। वह शख्स बिल्ली के फंसाने में न था परन्तु उस शख्स के भाई बेटों ने देखा कि यह बिल्ली नुकसान कर जाती अर्थात् हांड़ी भी फोड़ जाती है और दूध भी पी जाती है और दिल चाहे जहां भगकर चली जाती है इसलिये इसका कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिस से हांड़ी न फोड़े और हमारा दूध भी न पीवे ऐसा समझकर उन्हों ने एक पीतल की हांड़ी उस मिट्टी की हांड़ी के मुंह और आकार के माफिक बनाई और उस में दूध गरम किया और वह बिल्ली हिली हुई उस हांड़ी में भी मुंह गेरकर दूध पीगई। फिर वह अपने गले से हांड़ी निकालने के वास्ते ज़मीन पर सिर पटकने लगी परन्तु वह हांड़ी न फूटी। बहुतसा उस ने सिर पटका उलटी सिर में चोटें खाईं और गले में से वह पीतल की हांड़ी न निकली जन्म भर उस हांड़ी को गले में डाले पश्चात्ताप करती २ भूख प्यास से मरण को प्राप्त हुई। प्रयोजन यह है कि जिम महात्माओं ने उपकार बुद्धि से [illegible] वाल वा पोरवाल जाति बनायकर शुद्ध जिनमार्ग

का उपदेश दिया था उन को तो लोभ वा ममत्वभाव किसी तरह का नहीं था परन्तु पीछे जो उन के शिष्य कि जिन को मान बडाई ईर्षा परिग्रह आदि सग्रह करने वा इन्द्रियों के विषय भोगने की इच्छा थी उन्हों ने दृष्टि राग बाधकर गच्छ ममत्वरूप हाडी गले में गेरदी। वह गच्छ ममत्वरूप हाडी गले में से निकलनी मुश्किल होगई और उस हाडी में फसजाने से पक्षपात कदाग्रह अथवा रागद्वेष बढ़कर उस आत्मा के कल्याण की सूरत न रही ॥

शंका— भला जो तुम ने यह व्यवस्था लिखी है सो क्या भगवान महावीर स्वामी के हज़ार या ग्यारह सौ वर्ष के बाद सबही इस रीति से रागद्वेष और कदाग्रह करने लगे ? क्या कोईभी आत्मार्थी उन में जिनाज्ञा का आराधक न रहा ? तो फिर भगवान श्रीमहावीर स्वामी का शासन २१००० वर्ष तक अर्थात् पचमें आरे के छेडे तक चतुर्विध सघ रहेगा यह वाक्य क्योंकर मिलेगा ? ॥

समाधान— भो देवानुप्रिय ! हमारा सर्व के वास्ते यह एकान्त कहना नहीं है । हमने तो जो व्यवस्था भगवान महावीर स्वामी के हज़ार ग्यारह सौ वर्ष पीछे होती आई है सो लिखी है परन्तु इस व्यवस्था के बीच में अनेक आचार्य, उपाध्याय, साधु, आत्मार्थी, रागद्वेष के कम करनेवाले, परिग्रह रहित, इन्द्रियों के विषय से बिमुख, जिनाज्ञा-पालक, शुद्ध उपदेश के देनेवाले, अनेक महात्मा होगये हैं और जिन्हों की एक दो पीढ़ी पेश्तर शिथिलाचारी वा किञ्चित् परिग्रहधारी होगये थे तो फिर वे महात्मा अपनी आत्मा का अर्थ जानकर अपने गुरु वा दादागुरु के शिथिलाचार और परिग्रह आदि को छोडकर क्रिया उद्धार कर शुद्ध मार्ग में विचरने लगे और धर्म्म को दिपाया । और कई जगह

राजा वा बादशाह आदिकों को अपने तप आदिक क्रिया का चमत्कार दिखाय कर जगह २ हिंसा को बन्द कराया, और दया से पशु पंछी आदिकों के जीवों को बचाया, और अच्छी तरह से भव्य जीवों को शुद्ध मार्ग बताया। और उनके रचे हुए ग्रंथभी कहीं२ अभी मिलते हैं उन ग्रंथों को देखकर अभी भी भव्य जीव अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं और आगे भी करेंगे। इसलिये सर्व जिन-मार्ग के साधू एकसे होगये सो नहीं किन्तु पासत्थे कदाग्रही बढ़गये। विक्रम के अनुमान सम्वत् ८०० वा १००० के पीछे महात्मा लोग आत्मार्थी थोड़े हुए इसी से यथावत् मार्ग आत्मार्थियों को मिलता है और आगे भी मिलेगा। १५०० वा १५५० के सम्वत् तक तो यह व्यवस्था रही थी परन्तु इससे भी बढ़कर इस जैन धर्म्म में प्रबल उपद्रव करनेवाला भोले जीवों को बहकायकर और जैनी नाम धरायकर दुर्गति को जानेवाला लोका नाम करके लैया अर्थात् लेखक पुस्तकों के लिखनेवाला किसी जती से लड़कर द्वेष-बुद्धि से जिस में जिन-पूजा का अधिकार होय उस अधिकार को लोप करके पुस्तकों की जुदी प्रति बनाता हुआ। सो जब उन पुस्तकों के बनाने की खबर जती लोगों को पड़ी तो उन्हों ने उस को मारपीट कर वहां से निकाल दिया और पुस्तकों का लिखाना बन्द कर दिया। तब तो वह लोका प्रबल द्वेष से मन्दिरों से द्वेष करने लगा और कहने लगा कि मन्दिर बनाने वा पूजने में हिंसा होती है। भगवान ने तो दया में धर्म्म कहा है। ऐसी परूपना लोगों के सामने करने लगा परन्तु उस के वचन को सुनकर कोई उसके वचन पर आस्था नहीं रखता था। एक दिन कोई संघ सिद्धाचलजी की यात्रा करने को जाता था सो

चौमासे में मेहपानी प्रबल होने से उस जगह ठहरा था सो उस सङ्ग में से कई एक भोले लोग उसके जाल में फंसकर दो तथा चार आदमी सिर मुंडाय कर भेष लेकर जिन-मूर्त्ति की निन्दा अर्थात् जिन-मन्दिर की पूजा न करने का उपदेश देते हुए कि मन्दिर वा पूजन करने में हिंसा होती है और हिंसा में धर्म्म नहीं है। इसरीति से अपने पन्थ को बढ़ाते हुए वाह्य क्रिया को दिखाने से जो भोले जीव विवेक करके रहित थे वे वाह्य क्रिया को देख कर उन के जाल में फंस गये और मन्दिर वा मन्दिर की पूजन छोड़ बैठे। सो लोंके के उपदेशकभी १०० तथा १२५ वर्ष तक वाह्य क्रिया कपट छल से लोगों को फंसाते हुए होले २ परिग्रह आदिक धारण करने लगे। तब तो इन लोगों के भी आपस में फूट पड़ी और गुजराती, पंजाबी, नागोरी इत्यादिक भेद होने लगे। कोई तो जिन-मन्दिर की विशेष निन्दा करने लगा, कोई थोड़ी और कोई नहीं। जब इन में भी परिग्रहधारी होगये तब इन में से एक दोजनों ने झगड़ा किया और कहा कि तुम साधू नहीं हो इसलिये हम तुम को गुरु नहीं मानें और तुम हमारे गुरु नहीं। हम भगवत का मार्ग चलावेंगे। ऐसा कहकर उन से जुदे होगये और मुंह पर अष्ट पहर मुंहपत्ती बांधे रहना और गज सवा गज का लम्बा ओघा इत्यादि जिनधर्म्म से विपरीत चिन्ह करके कपटाई से वाह्यक्रिया निर्लोभिता दिखायकर भोले जीवों को अपने जाल में फंसाते हुए और देश २ में फिरकर दया २ धर्म्म २ करके मन्दिर वा जिन मन्दिरों की पूजन को मना करते हुए। केवल गृहस्थियों को मुंहपत्ती बंधायकर अपने पास इकट्ठे करने लगे और जिन मंदिरों में लोगों का जाना बिलकुल बन्द करादिया अर्थात् कितनीही जगह जिनमन्दिरों के किवा-

ड़ बन्ध करायदिये कि पूजन तो एक तरफ़ रहा परन्तु झाड़ूभी निक-लना बन्ध होगया। और यती लोगों की निन्दा करते हुए कि ये लोग तो धन आदि परिग्रह रखते हैं, और चमर छत्र दुलाते हैं, और झालरें शंख बजवाते हैं, आगे नकीब आदिक बुलवाते हैं, और पीनस पालकी तामजाम गाड़ी घोड़े आदिक पर चढ़ते हैं, और पग पांवड़ा करायकर बस्ती में घुसते हैं, व गृहस्थियों के यहां इसी रीति से जाते हैं और पह-रावणी आदिक लेते हैं और गृहस्थियों के यहां कराय २ कर आहार पानी खाते हैं, कच्चा पानी पीते हैं, खूब स्नान करते हैं, तेल फुलेल इतरादि लगाते हैं, कपड़े धोबियों से धुपाते हैं, मंत्र जंत्र ज्योतिष वैद्य-कादि चूरण गोली, झाड़ा झपाड़ा देते हैं और अपने २ गच्छ के श्राव-कों को मरने के बाद तीसरे दिन उठावणा लेकर अपने उपासरे में बुलाते हैं, और शान्ति आदिक सुनाते हैं, और अपने उपासरे के साम-ने या हद्द में परगच्छवाले श्रीपूज की शंख झालर बजती हुई देखकर मारपीट करते हैं और उस को अपने उपासरे के नीचे होके नहीं निक-लने देते हैं। इसलिये इन लोगों में तो आचार्य उपाध्याय साधूपना है नहीं केवल ये लोग आजीविका करते हैं। और हिंसा में धर्म्म बताय कर तुम लोगों को डुबोते हैं। इसीलिये इन लोगों का संग न करना। ऐसी २ अनेक तरह की निन्दा करके ये लोग भोले जीवों को बहकाय कर मिथ्यात्व रूप अन्धकार से जिनधर्म्म में जो शुद्ध आम्ना मन्दिर की है उस को छिपाने लगे। तब कितनेंही सत्पुरुष तो क्रिया उद्धार कर जो रीति पेश्तर थी उसी रीति से मन्दिरमार्ग की असातना टलने [illegible] स्ते श्रीजिनराज के बिम्ब का पूजन वा जीर्णोद्धार व नवीन बनानें के [illegible] देनें लगे, और कितनेही सत्पुरुष पीले कपड़ा करणा एक दिन कोई सध [illegible]

न संज्जी न करके इन ठगों से भव्य जीवों के कल्याण के वास्ते और यती जो सफेद कपडे वाले थे उन से पृथकत्व अर्थात् अलग दिखाने के वास्ते, और जो जिनप्रतिमा के द्वेषी थे उन को हटाने के वास्ते गुजरात मारवाड आदि देशों में विचरनेलगे। और इन ढूंढियों में भी बाईस टोला में जुदी जुदी आम्ना और अपनी अपनी आम्ना में गृहस्थियों को भिन्न २ फंसायकर अपनी २ समकित देने लगे। फिर कुछ दिन के बाद इन ढूढियों में से बहुत शिथिलाचारी होगये तब इन में से भी एक भीखम ढूढिया ने तेरह पंथ चलाया और कपट क्रिया करके बहुत लोगों को बहकाया और उस की ऐसी भी परूपना है कि बिल्ली चूहे को पकड़ले तो उस बिल्ली से चूहे को न छुडाना, क्योंकि बिल्ली के खाने की अन्तराय पड़ेगी, सो अन्तराय कर्म्म बंधेगा, सो बिल्ली से चूहा न छुडाना। ऐसी २ जिन-धर्म्म से विरुद्ध परूपना कर २ इन लोगों ने जिन-धर्म्म को चलनी के समान करदिया। और गृहस्थियों में रागद्वेष फैलाय कर इतना कदाग्रह बढ़ादिया कि जिस से धर्म्म का लाभ होना तो अलग रहा परन्तु और दान अन्तराय होने लगा क्योंकि गृहस्थियों का घर खुला है और अभंग दरवाजा चाजता है और गृहस्थी अपनी शक्ति के अनुसार सब को दान देता है। परन्तु जो जानकार गृहस्थी है वह तो अपने दिल में ऐसा विचारता है कि सुपात्र को दान देना तो एकान्त निर्ज्जरा का हेतु है और पात्र को दान देना पुन्यानुबन्धी पुन्य का हेतु है और कुपात्र को भी देने में किंचित् पुन्य का हेतु है और करुणा से और जैसे को तैसा जानकर देना उस में तो उस को लाभ का ही कारण है। परन्तु वर्त्तमान में जो जैनी बाजते हैं उन में प्रायःकरके अन्य मत के

स्वामी संन्यासियों की सेवा टहल में लग भी जाते हैं, वास्ते लोभादि चमत्कार के। और जो जिनधर्म्म में यती, समेगी, बाईस टोला, तेरह पन्थी हैं उन के जाल में जो दृष्टिराग में फंसे हुए हैं वे श्रावक प्रायःकरके अपने रागी के सिवाय दूसरे प्रतिपक्षी को आहार पानी नहीं देते। कदाचित् देते भी हैं तो उस का अपमान अथवा अपने देने में अभाव जनाते हैं। बल्कि मेरे श्रवण करने में ऐसा भी आया है कि गृहस्थी लोग रोटी दिये के बाद अपना प्रतिपक्षी जानकर उस से पीछी रोटी छीन लेते हैं और जती लोगों से तो गृहस्थी हर एक जगह हर एक शहर में कह देते हैं कि आप अपने गच्छ के श्रावक के पास जाओ। हम तो आप के गच्छ के नहीं हैं इसलिये नहीं देते इत्यादिक व्यवस्था होगई है। परन्तु जो २ हाल समेगी साधू साध्वी अथवा क्रिया उद्धार करके श्वेत कपड़ोंवालों से अथवा बाईस टोले के साधुओं से मैं ने सुना है और सुनता हूं और कई जगह मैं ने भी किसी २ बस्ती में किसी २ गृहस्थी के ऐसी पक्षपात देखी और उन के बचन सुनकर मालूम हुआ कि जिन धर्म्म इन्ही से चलता है। कदाचित् इन का घर न होता तो जिन धर्म्म न चलता। इत्यादि बातें उन पक्षपातियों की देखी और सुनी सो यथावत् लिखने में आवे तो एक ग्रन्थ बनजाय परन्तु मैं ने तो एक इशारे के मानिन्द दिखा दिया है सो बुद्धिमान समझ लेंगे और इन बातों के लिखने में मुझे खेद भी उत्पन्न होता है क्योंकि अति उत्तम अद्वितीय श्री वीतराग सर्वज्ञ के धर्म्म में इतना रागद्वेष कहां से प्रवेश होगया! लेकिन गृहस्थीपने में जो मैं ओसवालों की ढूंढिया साधूओं की जबानी सुनता था कि ओसवाल जाति वगैरः के लोग जिन धर्म्म में बहुत दृढ

हैं और उन लोगों का हुक्म हासल राज तेज धनादिक की भी वृद्धि है अर्थात् वे लक्ष्मीवान हैं और देव गुरु की बड़ी विनय भक्ति के करनेवाले हैं जब इन को धर्म्म की प्राप्ति अच्छी तरह से होती है और यह सब वैभव धर्म्म के ही प्रभाव से पैदा होता है। परन्तु धर्म वही है जिस जगह रागद्वेष नहीं है सो रागद्वेष रहित करके तो श्रीवीतराग का धर्मही अति उत्तम है परन्तु धर्म का प्रत्यक्ष में तो कोई प्रमाण है नहीं किन्तु अनुमान से सिद्ध करते हैं। सो इस जगह एक दृष्टान्त दिखायकर उत्तम धर्म का अनुमान दिखाते हैं सो अनुमान का दृष्टान्त यह है कि कोई पुरुष खेत में बीज गेरने गया और उस खेत में जो बीज पडा था सो वह बीज बरसात पवन आदि की सामग्री पाकर खूब घनघोरता से उपजा श्यामता आदि लक्षणों को प्राप्त हुआ कि जिस से प्रतीति होवे कि इस खेत में अनाज बहुत होगा। इस रीति से किसी ने दूसरी जगह बीज गेरा उस खेत में भी पवन मेह आदिक की किंचित् सामग्री मिली जिस से छीदा २ उपजा और पीला २ पड़गया। उस पीले पडजाने से अनुमान हुआ कि इस में अनाज थोडा होगा। अब इस जगह बुद्धिमानों ने एक खेत की तो घनघोरता और श्यामता देखकर बहुत अनाज का अनुमान किया और दूसरे खेत का छीदापन और पीलापन देखकर थोडे अनाज का अनुमान किया। परन्तु इन दोनो जगहों में उस खाखले अर्थात् घास, फूस, भूसा के देखने से अनाज का अनुमान किया कि अनाज बहुत होगा या थोड़ा होगा। लेकिन अनाज तो अभी पैदा हुआ नहीं, वह तो अपनी ऋतु पर होगा। ऐसेही मनुष्य रूपी जमीन में धर्म रूपी बीज गेरा जाता है उस जगह

शुद्ध देव गुरु के यथावत् उपदेश अथवा संजोग से मनुष्य रूपी ज़मीन में धर्म रूपी जो बीज उस का घनघोर उपजना अर्थात् संसारी वैभव रूप घास अर्थात् खाखला की प्रबलता देखने ही से बुद्धिमान अनुमान करते हैं कि परभवादि मोक्ष रूपी धान इस में अच्छा होगा। और जिस मनुष्य रूपी खेत में धर्म रूपी बीज पड़ा उसको यथावत् देव, गुरु का उपदेश अथव संजोग न मिलने से वह छीदे खेत के समान वा पीला अर्थात् वैभव आदिक खाखला नहीं होने से बुद्धिमान विचारते हैं कि यह शख्स इतना धर्म करता है लेकिन उस के वैभव आदि खाखला न होने से पर भव का भी अनुमान होता है कि इस के पर भवादि सुख रूपी अन्न यथावत् न होगा। इस दृष्टान्त से बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि जो उत्तम धर्म है उस के ग्रहण करनेवाले लोगों को इस भव और पर भव दोनों में ही उत्तमता प्राप्त होगी। इसलिये श्रीबीतराग का धर्म अति उत्तम है॥

शंका—आपने जो ओसवालों की इतनी तारीफ और उत्तमता इस धर्म के प्रभाव से लिखी सो १००—५० वर्ष पेश्तर तो होगी परन्तु वर्त्तमान काल में दिन पर दिन जो जिन धर्म में ओसवाल आदि हैं उन के हुक्म हासल तप तेज आदि वैभव में हानि के सिवाय वृद्धि तो नहीं दीखती है और अन्य धर्मियों में अनेक तरह की वृद्धि होरही है तो तुम्हारे श्रीवीतराग का धर्मही अति उत्तम है यह बात क्योंकर बन सकेगी?॥

समाधान— वर्त्तमान काल की व्यवस्था देखकर जो सन्देह किया सो सन्देह करना तुम्हारा ठीक है परन्तु हमने श्रीबीतराग के धर्म की अपेक्षा से दृष्टान्त दिया था नतु जिन धर्म के पक्षपात से।

और मैं ने जो ओसवाल वगैर. जिन धर्म की शोभा की थी सो कुछ पक्षपात से नहीं की थी किन्तु इन लोगों के पहिले के वैभव और कर्त्तव्य देखने में आते हैं परन्तु वर्त्तमान काल में अब कर्त्तव्य रूपी हींग न रही केवल खुशबू रूप वासना रह गई है। क्यों कि मैं ने भी ३३ की साल में अपना घर छोडकर भीख मागकर खाना कबल, किया था सो दो वर्ष तक तो पावापुरी आदि देशों में रहा सो बहुत सग न हुआ। परन्तु ३५ की साल से तो इन लोगों का सग बहुत हुआ और मारवाड़ ढूंढाड मालवा ग्वालियर आदि, देशों में फिरकर भी देखा तो वर्त्तमान काल के जैनियों में देव और गुरु की शास्त्र अनुसार विनय वा भक्ति न रही। उलटी देव की तो असातना करना और गुरु का अपमान करना और गुणी और निर्गुणी की परीक्षा न होना, केवल राग द्वेष पक्षपात दृष्टि राग से कलह करना फैल गया। जब तक देव और गुरु की विनय भक्ति न होगी तब तक यथावत् जिन धर्म की प्राप्ति होना भी कठिन है क्योंकि देखो शास्त्रों में ऐसा कहा है "विनय पन्नतो धम्मो मूलो"। ऐसा दशवैकालक में लिखा है कि विनय करने से धर्म की प्राप्ति होती है इसलिये विनय ही धर्म का मूल है। दूसरे श्रीभगवतीजी में भी श्रीगौतम स्वामी ने पूछा है कि हे भगवन्! साधू की शुश्रूषा करने से क्या फल होता है? तब श्रीमहावीर स्वामी ने कहा हे गौतम! साध की शुश्रूषा करने से दो तरह का फल हे सो यह पाठ श्रीभगवतीजी में है परन्तु इस का मतबल लिखता हू पाठ ऐसा है "दिट्ठफले आदिट्ठ फले" इत्यादि-एक तो प्रत्यक्ष फल दूसरा परोक्ष फल सो परोक्ष देवलोक आदि है-और प्रत्यक्ष फल को कहते हैं कि जब साधू की विनय आदि शुश्रुषा करेगा तब साधू उस को उपदेशादि देंगे उस उप-

देश के सुनने से उस पुरुष को ज्ञान होगा । उस ज्ञान से सत्य असत्य वस्तु का विचार करेगा । उस सत्याऽसत्य वस्तु के विचार से असत्य वस्तु का हेय नाम त्याग और सत्य वस्तु का उपादेय नाम ग्रहण करेगा । जब उस ने त्याग किया तब वह शख्स व्रत में हुआ तो जो पुरुष व्रत में है उस के निर्ज्जरा अवश्य मेव होगी । जिस के निर्ज्जरा होगी उस के कर्म का बन्ध छूटकर मोक्ष की प्राप्ति अच्छी तरह होगी । यह प्रत्यक्ष फल विनय भक्ति शुश्रूषा का है । अब जैन के अलावे पर मत में भी ऐसा कहते हैं कि "गुरुशुश्रूषायां विद्या" । इस रीति से हरएक जगह हरएक मत में विनय आदि शुश्रूषा से धर्म की प्राप्ति होती है। सो वर्त्तमान काल में विनय आदि न रही किन्तु दृष्टि राग से गुरु तो मानना परन्तु उन गुरुओं को अपने हुक्म में चलाना और अपना सन्मानादि शिष्टाचारी कराना । यद्यपि किसी गुरु आदिक से थोड़ा बहुत जिन धर्म का रस्ताभी मालूम हुआ हो और वह शख्स जो उन के सन्मानादि शिष्टाचारी न करे अथवा उन के कहे को दुलख दे अथवा उस श्रावक की बेमर्ज़ी होय वा श्रावक के कहने की बरदाश्त न कर सके, तो वे श्रावक लोग दूसरे के दृष्टिराग में फंसकर उस पहले के पास जो कुछ सीखे पढ़े थे उस गुण को भूलकर उलटा उस से बैरभाव करलें और उस की अनेक तरह की निन्दादिकरके अनेक तरह से दुःख देने को मुस्तैद हो जायं इत्यादिक अनेक बातें वर्त्तमान काल में होरही हैं। यदि सर्व हाल यथावत् पतेवार लिखूं तो एक बड़ा भारी ग्रंथ इसी बात का बन जाय इस भय से नहीं लिख सक्ता परन्तु दो कवित्त मेरे बनाये हुए हैं उन को लिखता हूं । इन पर से बुद्धिमान कुल मतलब बिचार लेंगे क्योंकि चूल्हे पर चढ़ी हुई हांड़ी का एक चांवल देखने से कुल

चावलों का हाल मालूम होजाता है—सीजे हैं वा नहीं। इसलिये दोनों कवित्त इस जगह लिखता हू ॥

कवित्त—चौबे चले छबे होन छबे की बडाई सुन, निश्चय में दुबे बसें दुबेही बनावें हैं। पक्षपात रहित धर्म भाष्यो सर्वज्ञ आप, सो तो पक्षपात करि सबही धर्म को डुबावें हैं। पचम काल दोष देत इन्द्रिय का भोग करें, भीतर ना रुचि क्रिया बाहर दिखलावें हैं। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच, समझें नहिं जैन नाम जैन को धरावें हैं ॥ १ ॥

पांच सात वर्ष क्रिया करिके उत्कृष्टी आप, बनिये को बहकाय फिर मायाचारी करत हैं। मंत्र जन्त्र हानि लाभ कहे ताको मान करें, झूठ सुने आये तो आगे लेन जात हैं। शुद्ध प्रणति साधु रजन ना कर सके लोगन को, मतलब बिन पास कबहू उन के न आवत हैं। चिदानन्द पक्षपात देखी इस मुल्क बीच, समझे नहिं जैन नाम जैन का धरावें हैं ॥ २ ॥

इन का अर्थ तो खुलासा है इस लिये न लिखा सो भो देवानुप्रिय! ऊपर लिखे हालों से इस जिन धर्म की ओसवाल पोडवालों की जाति कुल धर्म होने से इन लोगों की धर्म के ऊपर श्रद्धा कम हो जाने से और रागद्वेष, पक्षपात, कदाग्रह देव की असातना और गुरु आदिकों का अविनय तिरस्कारादि होने से वर्त्तमान काल में वृद्धि बिना हानि का प्रसग दीखता है सो इन श्रावक लोगों की ऐसी विपरीत बुद्धि हो जाने का कारण दिखाते हैं क्योंकि बिना कारण कार्य की उत्पत्ति नहीं होती इस लिये अब हम कारण को दिखाते हैं सो कान देकर सुनो और आख मींचकर बुद्धि से विचार करोगे तो तुम्हारे को शुद्ध

जिन धर्म की प्राप्ति होना सुगम होगा। कदाचित पक्षपात जो तुम्हारे चित्त में होगी तो जैसा तुम्हारा भविष्य होगा तैसा होगा। तुम्हारी शंका का समाधान तो पेश्तर ही इस कारण के विना दिखाये भी हो चुका परन्तु अब तो हम अपनी ओर से कारण कार्य को दिखाते हैं। भगवान महावीर स्वामी के निर्वाण के १००० वर्ष पीछे से कुछ २ ममत्व भाव दृष्टिराग पासत्था आदिक करने लगे थे परन्तु विशेषता न हुई थी और विक्रम सम्वत २२० वर्ष पीछे ओसवाल जाति भी जिन धर्म में स्थापी गई तो भी जाति कुल धर्म का सा दृष्टिराग ममत्व नहीं फैला था। परन्तु ज्यों २ काल पड़ता गया त्यों २ दृष्टिराग और ममत्व अथवा रागद्वेष पक्षपात फैलता गया. गच्छादिकों की भिन्न २ समाचारी और कदाग्रह न फैला तब तक तो जाति कुल धर्म और दृष्टिराग न प्रगट हुआ परन्तु जब से भिन्न २ समाचारी का कदाग्रह चलना शुरू हुआ तब से ही ओसवाल, पोड़वार वगैरः जो जिन धर्म में थे उन को वे भिन्न २ समाचारी करनेवाले लोग अपने २ बाड़े अर्थात् गच्छ में भरने लगे कि यह हमारे गच्छ का ओसवाल फलानी जाति, फलाने कुल का हमारा श्रावक है। इस रीति से कह २ कर दृष्टिराग में लोगों को फंसाय कर कदाग्रह कराने लगे। सो जब तक प्रतिमा के निषेध करनेवाले बाईस टोला या तेरह पन्थी लम्बा ओघा और मुंह पर मोपत्ती बांधनेवाले और इन के निषेध करनेवाले और श्री जिन मूर्त्ति को स्थापनेवाले समेगी पीले कपड़ेवाले न निकले थे तब तक केवल जती लोग प्रसिद्ध थे और उन्हीं लोगों में आचार्य उपाध्याय साधू बाजते थे। सो वे लोग यद्यपि गच्छ कदाग्रह भिन्न समाचारी कलह आदि करते थे परन्तु शिष्य वे करते तो उसकी जाति कुल वर्ण आदि

देखकर अपनी परीक्षा मूजिब चेला बनाते थे । तो जो शख्स जाति कुल वर्णादिक का अच्छा होगा सो अपनी जाति कुल का खयाल कर के व्यवहार विरुद्ध न करेगा क्योंकि उस को अपनी जाति कुल का खयाल है । कदाचित् उस पुरुष के अशुभ कर्म का उदय होगा तो कदाग्रह आदि में पड जायगा, परन्तु व्यवहार से अपने गुरु आदिक की व धर्म की हसी न करावेगा, और कदाचित उस पुरुष के अशुभ कर्म का उदय नहीं है और शुभ कर्म का उदय है तो वह पुरुष अपनी जाति कुल की उत्तमता से जो कि उन के गुरु आदिक एक २ पीढी में शिथिलाचार वाले थे वा गच्छादिक में शिथिलाचार देखकर फिर आप क्रिया उद्धार करके शुद्ध आचरण में चलेगा और अपनी समुदाय को चलावेगा। सो यह उत्तमता जाति कुल वर्णादिकों से होती थी, कदाचित जो ऐसा न होता तो शुद्ध मार्ग बिलकुल गुप्त हो जाता परन्तु बीच २ में आत्मार्थी अनेक पुरुष हो गये और उन्हों ने शुद्ध जिन मार्ग का उपदेश भव्य जीवों को दिया और ग्रंथ भी उन लोगों के रचे हुए हैं जिनसे अब भी आत्मार्थी उन ग्रंथों को देख कर अपनी आत्मा का अर्थ करते हैं । सो दस पाच शख्सों के मुझे नाम याद हैं सो लिखता हू कि श्री अभयदेव सूरिजी, श्री हेमाचार्यजी, श्रीजिनवल्लभ सूरिजी, श्रीजिनदत्त सूरिजी, श्रीमणियालाजी, श्रीजिनचन्द्र सूरिजी, श्रीजगतचन्द्र सूरिजी, श्रीदेवेन्द्र सूरिजी, श्रीजिन कुशल सूरिजी, श्रीहरिविजय सूरिजी, श्रीसेन सूरिजी, श्रीसमय सुन्दरजी उपाध्याय, श्रीयशविजयजी उपाध्याय, श्रीदेवचन्द्रजी उपाध्याय, श्रीसत्य विजयजी उपाध्याय, श्रीआनन्दघनजी, श्रीचिदानन्दजी अर्थात् कपूर चन्दजी, श्रीक्षमाकल्याणजी उपाध्याय, श्रीपद्मविजयजी गणि आदिक

अनेक महत् पुरुष हो गये हैं जिन के संस्कृत वा गुजराती भाषा में अनेक ग्रंथ रचे हुए हैं। और वे लोग स्तवन सिज्जाय आदिक में जिन मार्ग को खुलासा वर्णन करते हैं। परन्तु वर्त्तमान काल में राग द्वेष पक्षपात से अशुद्ध मार्ग की परूपना वा अशुद्ध मार्ग में ही प्रवृत्त होने को तैयार होते हैं सो यह बात जब से ढूंढिया सम्वेगी तेरह पन्थी और चोथे यती इन चारो का भिन्न भिन्न चिन्ह होने से अशुद्ध प्रवृति होने लगी। तिसका कारण कहते हैं कि यती लोग जो अपने शिष्यादिक करते हैं सो उन लोगों ने तो जाति कुल वर्णादिक की अपेक्षा न रक्खी अर्थात् छोड़दी क्योंकि एक तो पड़ता काल दूसरा अंग्रेजों का राज होजाने से प्रत्यक्ष तो मोल ले नहीं सकते इसलिये छुबकाचोरी में जाति कुल वर्ण आदिक को नहीं देख सकते हैं, केवल चेला करने की इच्छा से कोई जाति खाती, कुंभार, जाट, माली, नाई, कायस्थ, चाकरादि कोई जाति हो, न उनके बाप का ठिकाना है न उन की माका ठिकाना है, न ज्ञाति का है न कुल का है, केवल चेला करने का प्रयोजन है। और वह चेलाभी कैसा करते हैं कि दो वर्ष तीन वर्ष के बालक को लेकर पालते हैं और लाड़ में उस को कुछ विद्या तो पढ़ाते नहीं हैं केवल मंगलीक वा प्रतिक्रमण या कल्पसूत्रादि मुश्किल से सिखायकर अथवा मंत्र यंत्र, झाड़ा झपाड़ा अथवा ज्योतिष वैद्यक पढ़ायकर खाली आजीविका की सूरत बताते हैं नतु धर्म के कामों में लगाते हैं। इसलिये वे शिष्य आदिक कुल ज्ञाति का तो लिहाज शरम कुछ रखते नहीं, थोड़ा बहुत गुण वा झाड़े झपाड़े से ऊटपटांग होकर व्यवहार को बिगाड़ देते हैं और जिन धर्म की हेलना कराते हैं परन्तु तिस पर भी ये ओसवाल पोरवाड़ लोग जिन धर्म्म में ज्ञाति कुल

का धर्म्म जानकर इन लोगों को आहारादिक देते हैं क्योंकि वे ऐसा समझते हैं कि ये हमारे लारे लगे हैं। इसलिये इन को कुलगुरु मानकर व्याख्यानादि किंचित् सुनते हैं सोभी वडे आदर सत्कार से वा दस पांच बुलाने जाने से आते हैं नतु धर्म जानकर॥

अब बाईस टोला की व्यवस्था कहते हैं कि यह बाईस टोले-वाले भी ज्ञाति पाति कुल आदिक तो देखते नहीं हैं और हरएक गांवों में छोटे २ बालकों को जोकि ८ तथा ६ वर्ष के हैं उन लडकों को खाने पीने का लालच देकर बहकाय लाते हैं और उनको दीक्षा देकर अपना चेला बनाते हैं। अथवा स्त्रियों को चेली बनाय कर उनके पुत्रादिकों को चेला बना लेते हैं। अथवा कोई जाट, गूजर, कुंभा-रादिक भूखन मरता है वा उसको कर्जा देना हैं ऐसे लोग जो उनके पास आवे उनको भी खाने का लालच देना अथवा अपने दृष्टिरागी श्रा-वकों से उनको रुपया दिलवा देना। फिर उनको पुत्रों समेत दीक्षा दिगे-देना। अथवा कोई अन्य जाति के जो महा दुःखी जिन को पूरा अन्न और वस्त्र भी न मिले अथवा कर्जा आदिक जिन को देना हो कि लोग उन का पल्ला पकडते हैं और उन के पास नहीं है ऐसे दुःखित लोग है उन को श्रावकों से रुपया आदिक दिलवाय कर फिर उनको दीक्षा देते हैं। प्राय करके ऐसेही ऐसे वैराग्यवाले इन टोलों में दीक्षा लेते हैं और कई टोलो में तो उजागर मोल लेते हैं और श्रावकों से रुपया उन के बाप और मा को दिलाते हैं। इस रीति से तो इन में साधू होते हैं। फिर वे गुरु आदिक संस्कृत अथवा व्याकरण आदिक तो पढ़ावें नहीं क्योंकि जब वह व्याकरण आदिक पढ़ेगा तो उस को शब्द का यथा-वत् बोध होने से उन के काबू में न रहेगा इसलिये उस को एक दो मूल

सूत्र पढ़ाय कर थोड़ी बहुत बोलचाल थोकड़ों की सिखाय कर केवल ढाल, चोपाई, राग, रागणी में अच्छी तरह से प्रवीण करते हैं, किस वास्ते कि बाल जीव सूत्र सिद्धान्त में तो समझें नहीं और ढाल चौपाई में कुतूहल की बातें सुनकर लोग उन के बाड़े में बने रहें क्योंकि किसी ने दोहा कहा है "सूत्र बांचो टीका बांचो चाहे बांचो भगवती । सभा पगतली राखे चाहो, तो राग काढ़ो रसवती" ॥ इस हेतु से इन लोगों में ढाल चौपाई का सीखना सिखाना बहुत है । प्रायः करके इन लोगों में जो व्यवस्था होरही है सो ज्ञानी जानता है वा ये लोग या इनके दृष्टिरागी श्रावक अथवा जिन देशों में इन का रहना है उन देशों के रहनेवाले लोग भी बहुत जानते हैं । लेकिन सब हाल यथावत् लिखूं तो द्वेष मालूम होगा सो मेरे तो कुछ द्वेष से काम है नहीं, मैंने तो प्रसंगागत किंचित्मात्र लिखा है । हां इन में कोई २ आत्मार्थी भी होगा तो ज्ञानी जाने, मैं एकान्त करके सब को एकसां नहीं कहता हूं । प्रायः करके कदाग्रह बहुत दीखता है नतु एकान्तता से ॥

अब किंचित् पीले कपड़ेवालों का भी हाल लिखते हैं कि समेगी लोगों में कितने ही येही लोग क्रिया उद्धार करके पीले कपड़े करते हैं, कितनेही बाईस टोला तेरह पन्थियों में से निकल करके समेगी होते हैं, कितनेही दुःख से भी वैराग्य लेकर समेगी होते हैं और कितनेही मोल लेकर अपना चेला करते हैं । कितनेही गृहस्थियों के बालकों को बहकाय कर चेला करते हैं । इस रीति से समेगियों में भी चेला करने की अनेक व्यवस्था होरही हैं और कोई २ भाव से भी चारित्र लेते हैं परन्तु दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवाले प्रायः करके दीखते हैं क्योंकि आत्मार्थी तो कदाग्रह करें नहीं और कदाग्रह प्रत्यक्ष देखने में आता

है। इसी रीति से तेरह पन्थियों में भी व्यवस्था जानलेना। यह तो इन चारों की भेष बढ़ने की और साधू होने की व्यवस्था कही ॥

शंका—आपने जो दुःखगर्भित अर्थात् भूखन मरनेवाले का वैराग्य निषेध किया सो यह तुम्हारा निषेध करना ठीक नहीं। क्योंकि आगे साम्प्रति राजा के जीव ने पहिले भव में खाने के वास्ते ही दीक्षा लीनी थी तो भूखन मरनेवाले का चारित्र क्यों निषेध करते हो ?॥

समाधान—भो देवानुप्रिय! अभी तुझ को जिनधर्म की खबर नहीं है, जो तुझ को जिनधर्म की खबर होती तो तेरा मिथ्यात्व रूप विकल्प कदापि न होता। क्योंकि देखो श्रीयशविजयजी उपाध्यायजी ने अध्यात्मसार के छठे अधिकार में तीन प्रकार का वैराग्य कहा है। जिस में दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्य को निषेध करके केवल ज्ञानवैराग्य की प्रशंसा की है। और दूसरा जिनधर्म में अपवाद मार्ग की पुष्टता नहीं किन्तु ग्रहण तो है, परन्तु पुष्टता उत्सर्ग ही की है। इसलिये कोई दुःखगर्भित वैराग्यवाला होय तो उस को ज्ञानवैराग्यवालों का संग होने से दुःखगर्भित वैराग्यवाले को ही ज्ञानवैराग्य होजायगा; इसलिये दुःखगर्भित वैराग्य की पुष्टता जिनमार्ग में नहीं, और जो कदाचित दुःखगर्भित वैराग्य की पुष्टता मानोगे तो वर्त्तमान काल में प्रायः करके दुःखगर्भित वैराग्यवाले दीखते हैं तो धर्म में रागद्वेष पक्षपात कलह कदाग्रह न होना चाहिये, इसलिये दुःखगर्भित वैराग्य का जिनधर्म में निषेध है। और जो तू ने साम्प्रती राजा के जीव का खाने के वास्ते वैराग्य लेना कहा, सो भी तेरा कहना ठीक नहीं हुवा। क्योंकि देखो साम्प्रती राजा के जीव ने पहिले मनुष्य भव में भूख के कारण से गुरु के पास में दीक्षा ली और उसी दिन ज्यादा आहार करने से रात्रि को पेट की वेदना उत्पन्न हुई। उसे

वक्त उस वेदनावाले जीव की साधुओं ने वियावच्च करी तब उस का परिणाम जिनधर्म पर आस्था रूप कैसा शुद्ध होगया ! उस आस्थारूप परिणाम से देह को छोड़कर राजकुल में उत्पन्न हुआ और कुछ दिन के बाद वह साम्प्रती राजा अपने राज पर बैठा। फिर एक दिन गोखड़ा पर बैठा हुआ गुरु को देखकर जाति-स्मरण ज्ञान से गुरु के पास आया और नमस्कार किया और जिनधर्म को अंगीकार किया। इसलिये हे भोले भाई ! उस साम्प्रती राजा के जीव की तो तू साक्षी देने लगा परन्तु और सैकड़ों दुःखगर्भित वैराग्यवाले वर्षों तक चारित्र पालकर तुम्हारे मूजिब मरगये उन की गति तो हम को बतलाओ कि वे किस जगह के राजा हुए और जिनधर्म की उन्नति करके देदिप्यमान अर्थात् प्रकाशमान किया सो कहो ? इसलिये साम्प्रती राजा का दृष्टान्त तेरे भूखे मरते वैराग्यवाले का साधक न हुआ किन्तु बाधक होगया ॥

अब तुम वर्त्तमान काल के भेषधारियों के उपदेश की व्यवस्था सुनो। प्रथम तेरह पन्थियों की बात कहते हैं कि जो भीकम ढूंढिया तेरह पन्थ का चलानेवाला था उस के जो साधू साध्वी हैं उन साधू साध्वियों का गृहस्थियों को ऐसा उपदेश है कि हमारे सिवाय जो दूसरे बाईस टोला वा समेगी अथवा जती हैं सो जिनाज्ञा के बाहिर हैं और इन को आहार पानी देने से तुम्हारी समकित चली जायगी और मिथ्यात्व आजायगा, इन को देने में एकान्त पाप है, निर्ज्जरा किंचित् भी नहीं है। इसलिये इन को आहार पानी न देना और वन्दना व्यौहार भी न करना। कदाचित् तुम करोगे तो जिनधर्म से विमुख होकर काली धार डूब जावोगे। ऐसे गृहस्थियों को बहकायकर मंत्र यंत्र आदिक के चमत्कार से जाल में फंसायकर केवल कदाग्रह

कराते हैं ॥

अब बाईस टोले वालों का उपदेश कहते हैं कि जितनी बाईस टोला में अलग २ समुदाय हैं वे लोग अपनी २ समुदाय में गृहस्थियों को ऐसा फंसाते हैं कि दृष्टिराग से वे गृहस्थी दूसरी समुदायवाले ढूंढियों के पास नहीं जाते हैं बल्कि कोई २ गृहस्थी तो ऐसे दृष्टिराग में फंसजाते हैं कि दूसरे ढूंढिया साधू को वन्दना भी नहीं करते और घर में आये को आगत स्वागत से आहार पानी नहीं देते । किन्तु लौकिक लज्जा से विना मन के कोई निरस आहारादि बहराय देते हैं, परन्तु जो उन की दृष्टिरागी समुदायवाला आवे तो उस को बडे आगत स्वागत शिष्टाचारी से सरस २ अच्छे आहार पकवानादि बडे भाव से बहराते हैं, बल्कि स्त्रियों को इतना भी राग होता है कि अपने बालक आदिक को नहीं खाने देती हैं और अपने दृष्टिरागी साधुओं को बहराती है । इस रीति से इन लोगों ने अपनी २ समुदाय में गृहस्थियों को फसाय रक्खे हैं और गृहस्थियों के जो कि १० तथा १२ वर्ष के बालक होते हैं उन लडका लडकियों को बोध तो कुछ होता नहीं है बल्कि लडका लडकियों से "नौकार" भी पूरा उच्चारण नहीं होता है तिस पर भी उस को कहते हैं कि तू हमारी समकित लेले अथवा उन के बाप मा को कहकर उन को जबर्दस्ती में समकित दिलाते हैं । अब बुद्धिमान विचार करते हैं कि जब ये लोग हरएक मे कहते हैं कि तू हमारी समकित लेले तो क्या इन लोगों के पास में समकित के कोठार भरेहुए हैं अथवा ये लोग जब अपनी समकित दूसरे को देते हैं तब इन के पास क्या रहेगा ? इस से बुद्धिमान यह अनुमान बांधते हैं कि ये

लोग समकित तो किसी को देते नहीं क्योंकि समकित किसी की दी हुई नहीं आती है। समकित तो आत्मगुण है सो किसी का दियाहुआ नहीं आता। इसलिये ये लोग समकित का नाम लेकर अपना शिष्य अर्थात् श्रावक बनायकर दृष्टिराग में फंसाते हैं कि जैसे रामस्नेही, कबीरपन्थी, दादूपन्थी, निरंजनी आदिक लोग गृहस्थियों के गले में कंठी बांधते हैं तिसी रीति से ये लोग भी समकित का नाम लेकर दृष्टिराग रूपी कंठी गृहस्थियों के गले में बांधते हैं और हरएक गृहस्थी को मंगलीक सुनाते हैं। और गृहस्थियों को कहते हैं कि जो व्याख्यान सुनने की तुम्हारे स्थिरता न होय तो पूज्यजी महाराज वा साधुओं के दर्शन तो कर जाया करो, और मंगलीक सुन जाया करो; अथवा मंगलीक की भी स्थिरता न हो तो साधुओं का दर्शन तो जरूर कर जाना ऐसी सौगन्द लो। इस रीति से गृहस्थियों को जगह २ गली २ कूंचा बाजार आदिक में जहां मिले तहां ही टोकते हैं। हम को इतने दिन हुए कि तुम आयेही नहीं इतनी बात सुनाकर गृहस्थियों की शिष्टाचारी करते हैं। कदाचित् उस गृहस्थी को खड़े होने की स्थिरता न होय तौभी उस को कहते है कि "भाया मंगलीक तो सुनलें"। कदाचित् उन का रागी श्रावक उन के यहां न आवे अथवा किसी रस्ता आदिक में न मिले तो उस के घर चलायके जायं। तब वह गृहस्थी घर आये का आगत् स्वागत् करे और आहारपानी की मनवार करे उस वक्त में ये लोग इस चतुराई से भाषण करें कि गृहस्थी को अत्यन्त दृष्टिराग बंधजाय। वे कैसी चतुराई का वचन बोलें कि "हे भाया! हमतो आज तेरा घर फरसने को नहीं आये, हमतो केवल तेरे को दरशन दिरावानें आया हां सो तेरे को दरशन दिरादिया, मंगलीक और सुनले"। इस

रीति से ये लोग घर २ दर्शन दिराते और मगलीक सुनाते फिरते हैं ॥ हाय ! इति खेदे ॥ जिनधर्म चिन्तामणि रत्न समान जिस के धारण करनेवाले साधू नाम धराय कर गृहस्थियों के लारें धर्म उपदेश देते फिरते हैं । क्योंकर इन गृहस्थियों को विश्वास हो ? हा अलबत्ता इन मे एक बात तो अच्छी है कि इन के जो दृष्टिरागी भाया हैं सो वे लोग अपने आपस में एक टोलावाले दूसरे टोलेवाले की निन्दा स्तुति करें परन्तु बाईसटोला के न माननेवालो के सामने तो ढूंढिया कैसाही विपरीत चलन चले तौ भी सिवाय शोभा के उस की निन्दा न करेंगे ॥

अब समेगी पीले कपडेवालों के उपदेश का वर्णन करते हैं । समेगी साधूभी श्रावकों को वासक्षेप देकर अपने दृष्टिराग में ऐसा फसाते हैं कि उन के राग में फसा हुआ सिवाय उन के और दूसरे को वन्दना व्यौहार भी नहीं करता है और तमाम समेगियों की निन्दा करता है । वह निन्दा भी कैसी कि अनहुई बात के दूषण लगायकर दूसरे को बदनाम करना और अपने दृष्टिरागी समेगी की शोभा करना बल्कि एक समुदाय अथवा एक गुरु के शिष्य भी हैं तिसपर भी वे श्रावक लोग जिस के राग में फसे हुए हैं उसी साधू के आगत् स्वागत् वा लेने पहुचाने को जाते हैं परन्तु दृष्टिराग विना उस एक समुदायवाले साधू के भी आगत् स्वागत् लेने वा पहुचाने को नहीं जाते हैं । और साधू लोग गृहस्थियों का इतना भाव आदर और शिष्टाचारी करके आपस में लडाते हैं कि दूसरे लोग उन की बातें सुनकर हंसते हैं और कहते हैं कि देखो ये समेगियों के साधू श्रावक आपस में कैसे लडते हैं । और कितनेही समेगी तो गृहस्थियों की शिष्टाचारी वा सेठजी आदिक कहकर कीर्त्ति आदि में

चढ़ाय कर पंडितों के अथवा मन्दिर वा धर्मशाला वा पुस्तकों के नाम से रुपया इकट्ठा करके फिर उसी रुपये को गृहस्थियों के यहा जमा करके ब्याज लेते हैं और कितने ही निकेवल गृहस्थियों की शिष्टाचारी कर २ के सैकड़ों हजारों रुपये की पुस्तकें इकट्ठी कर लेते हैं और जगह २ सन्दूक भर २ कर गृहस्थियों के यहां रखते हैं बल्कि उन समेगियों को उतना बोधभी नहीं है ऐसी २ पुस्तकें उन्हों ने गृहस्थियों का धन खरचाकर इकठ्ठी की हैं। उन पुस्तकों को जन्मभर में न बांच सकेंगे और न उनका यथावत् बोध होगा, केवल मूर्च्छा रूप ममत्व से अथवा रागद्वेष से इकठ्ठी की हैं। और समेगियों में इतनाभी इन दिनों में विशेष है कि खूब गाजे बाजे आडम्बर से बस्ती में घुसना और अपने दृष्टिरागी श्रावकों से प्रेरणा करायकर खूब आडम्बर कराते हैं। हां अलबत्ता कोई २ समेगी तो न्याय व्याकरण आदि थोड़ा बहुत करके टीका आदि बांचते हैं। परन्तु लोगों को रिझाने के वास्ते ऐसी चीजें बांचते हैं कि जिस से सभा के लोग सब राजी रहें। और कितनेही समेगी लोग चौमासे में कल्पसूत्रादि के बांचने के समय रुपया बुलवाते हैं और श्रावक लोगों को ऐसा उपदेश देते हैं कि जिस में श्रावक लोग राजी रहें। सो इस उपदेश का वर्णन तो जहां हम विधि का वर्णन करेंगे उस प्रकाश में लिखेंगे, यहां तो एक नाम मात्र लिखा है। इस रीति से समेगी लोगभी आपस में गृहस्थियों को अपना रागी बनाकर अथवा गच्छ समाचारी के राग में फंसाय कर रागद्वेष पक्षपात इस कदर करते हैं कि अपना वचन सिद्ध करने के वास्ते और दूसरे का वचन खण्डन करने के वास्ते पत्र वा पुस्तक रचकर जाहिर करते हैं परन्तु अपने वचन की सिद्धि के वास्ते परभव से न डरते हुए

उस ग्रथ की छपायकर जाहिर करते हैं सो मैं नाम तो किसका लिखू परन्तु वे पुस्तकें सब जगह प्रसिद्ध और मोजूद हैं। और उन पुस्तकों को बाच २ कर गृहस्थी लोग आपस में लडते है। और कितनेही क्रिया उद्धार किये हुए जो संवेगी हैं वे ढूढियों की तरह अपनी समकित उचरवाते हैं अर्थात् अपने बाडे में फसाते हैं। बल्कि इन संवेगियों मेंभी आपस में इतना रागद्वेष है कि अपने २ श्रावकों को ऐसा सिखलाय देते हैं कि वे श्रावक लोग नित्य का व्याख्यान सुनना तो एक तरफ रहा बल्कि चौमासे में जो कल्पसूत्र आदि बचें तो अपने गुरु के डेपवाले से न सुनें। बल्कि आठ रोज तक वे श्रावक दस पाच मिलकर कल्पसूत्र को खुदही बाचते हैं। और जो साधू का कृत्य है सो अपने आपही कर लेते है। उन मे से एक जना तो बतौर साधू के बैठकर गृहस्थी के कपडे पहने हुए आसन बिछाकर कल्पसूत्र बाचता है और जो दस पाच उन के ममत्व रागवाले हैं सो सुनते हैं। यद्यपि जैन शास्त्र में गृहस्थियो को सूत्र बाचना मना है तिस परभी वे श्रावक लोग रागद्वेष में फसे हुए पर भव से नहीं डरते हैं। इस रीति से जो उतकृष्ट साधू बाजते हैं और कहते हैं कि हम जिनमार्ग को चलानेवाले हैं, जब इन्हीं लोगों का इस कदर रागद्वेप पक्षपात होरहा है तो यती विचारों की तो व्यवस्थाही क्या लिखे, ? हा अलबत्ता यती भी कोई २ अच्छे है वे ज्योतिष वैद्यक आदि से अपना काम चलाते है, परन्तु यती लोगों के केवल चौमासे में ८ दिन पजूसन मे व्याख्यान बाचने की रीति जबर्दस्ती से चलती है क्योंकि वे लोग दस २ दफा सेवकों को भेजकर उन अपने गच्छवाले श्रावको को बडी मुश्किल से बुलाय कर ८ दिन की समाचारी करते हैं क्योंकि उन का जो कृत्य था सो

इस काल के उत्कृष्ट साधू नाम धरानेवालों ने गृहस्थियों की खुशामद करकरके छीन लिया क्योंकि गृहस्थियों को जगह २ टोकने वा बुलाने से उन की श्रद्धा हीन होगई। और पेश्तर तो भव्य जीव आत्मार्थी धर्म के अभिलाषी मुनिराजों को धर्म के वास्ते खोजते फिरते थे ताकि मिथ्यात्व रूपी अग्नि जब बुझे तब धर्मरूपी अमृत पान करावें। सो अभी के काल में जाति कुल धर्म होने से अभिलाषाही नहीं रही किन्तु उलटे साधू लोग भिन्न भिन्न गच्छ समाचारी ममत्व रूप से श्रावकों को खोजते अथवा बुलाते हुए फिरते हैं। क्योंकि देखो जिस पुरुष को पानी की प्यास लगी है वह पुरुष कुए पर जाय रुचि सहित जल को पान करे परन्तु जो उस पुरुष को प्यास नहीं हो तो उस के वास्ते शीतल जल अमृत रूपभी होय तौभी वह उस को पान न करे। इस दृष्टान्त को बुद्धिमान विचार लें कि इस जैनमत के साधू साध्वी गृहस्थियों को जबर्दस्ती बुलाय २ कर शिष्टाचारी से उन का मान बढ़ाते हैं। अब मैं इस व्यवस्था को लिखने से दिक् हो चुका इस लिये इस के समाप्त करने के वास्ते किंचित् लिखकर उपाध्याय श्रीयशविजयजी के किये हुए सवासौ गाथा के स्तवन की एक गाथा लिखकर समाप्ति करता हूं। देखो जो मैंने जाति कुल ममत्व रूप नगर का वर्णन किया था सो उस नगर में गच्छादि समाचारी भेद अथवा संवेगी ढूंढिया तेरह पन्थी इन के जुदे जुदे भेद वा जुदी २ परूपना होने से और गृहस्थियों की शिष्टाचारी करने से इस अमूल्य चिन्तामणि रूप श्री बीतराग के धर्म की आस्था न रही और ओसवाल पोडवाल वगैरः में जाति कुल धर्म होगया। इस जाति कुल धर्म के होजाने से अथवा जुदी २ परूपना होने से धर्म के ऊपरसे आस्था उठगई।

इसीलिये श्रीयशविजयजी महाराज की कही हुई गाथा अर्थ समेत लिखते हैं। "बहु मुखे बोल एम साभली नवि धरे लोक विश्वासरे। ढूंढता धर्मने ते थया, भमर जेम कमलनी वासरे" ॥ १ ॥ व्याख्या—एम बहु मुखे के॰घणाने मोंढे बोल जुदा जुदा साभलीने लोको विसवासने धरे नहीं जेम भमरा कमलनी वासनानी इच्छाये भमता फिरे पण केरडोय ते न पामे, तेम ते लोको धर्मने ढूंढता थया जे कोण साधु पामे धर्म होशे ? एवा सभ्रमे फरे ॥

जो इस गाथा का अर्थ श्रीपद्मविजयजी ने किया था सो तो लिखा परन्तु मेरी बुद्धि अनुसार किञ्चित् मैं भी लिखता हू—बहु मुखे बोल के॰ बहुत जनों के मुख मे नाना प्रकार के जो वचन सो दिखाते हैं कि कोई तो चौथ की छमछरी, कोई पचमी की छमछरी करते हैं, कोई चौदस की पक्खी, कोई अमावस्या पूर्णमासी की कराते है। कोई चवदस घट जाने से तेरस में चवदस कराते हैं और कोई पूर्णमासी अमावस्या में करते हैं। कोई तिथि बढ़जाने से पहिली तिथि मानते हैं और कोई दो अष्टमी होने से सप्तमी दो करते है, अष्टमी एकही मानते हैं। कोई पूर्णमासी टूट जाय तो तेरस को टूटी तिथि मानें अर्थात् तेरस को घटाय दें परन्तु पूनम अमावस्या को न घटावें। चौमासे में दो श्रावण अथवा दो भादवा होने से कोई तो दूसरे श्रावण और पहले भादवा में पजूसन करता है और कोई पहले भादवा या पिछले भादवा में करता है। कोई पहले इरियावही पीछे करेमिभते करता है, और कोई पहिले करेमिभते और पीछे इरियावही करता है। कोई तीन करेमिभते और कोई एकही करता है। कोई एकासने आदिक के पचक्खाण में आगोमलेवा पाणेसलेवा आगार श्रावक को कराते

हैं और कोई श्रावकों को पच्चक्खाण में आगोसलेवा पागोसलेवा नहीं कराते हैं। कोई तीन थुई कराते हैं कोई चार थुई कराते हैं। कोई आमल में दो द्रव्यही खाना कहते हैं, कोई अनेक द्रव्य खाना कहते हैं। कोई प्रतिक्रमण में शान्ति रोज कहना कहते हैं, कोई नहीं कहते हैं। इत्यादिक आपस में अनेक बातों के भिन्न २ समाचारी बोलते हैं। जो इन सबों के कुल भेद वा जैसी २ ये लोग शास्त्रों की साक्षी देकर पक्षपात आपस में करते हैं उन सब बातों को इन की रीति से लिखूं तो एक प्रबल ग्रंथ लाख सवालाख बन जाय परन्तु मैं ने तो एक दिग्मात्र दिखाया. परन्तु सब संवेगी, यती, ढूंढिया, तेरहपन्थियों की पक्ष छोड़कर केवल एक तपगच्छ की एक समुदाय अर्थात् एक तपे गच्छ ही कीजो भिन्न २ गद्दी हैं उन में अथवा मुख्य गद्दी के जो संवेगी आम्नावाले हैं उन की ही जो भिन्न २ परूपना है उस को ही दिखाते हैं। कोई तो कहता है कि कान में मुंहपत्ती घालकर व्याख्यान देना, कोई कहता है कि कान में नहीं घालना, हाथ में रखकर व्याख्यान देना। कोई कहता है कि सिद्धाचलजी सोरठादि देश अनार्य था, कोई कहता है कि सिद्धाचलजी अनादि तीर्थ आर्यक्षेत्र में ही है, कदापि अनार्य न हुआ न होय न होगा। कोई तो रात को उपासरे में दीवा जोते हैं और कोई इसे निषेध करते हैं। कोई तो ओसवाल पोडवाल कीही कच्ची रोटी आदिक लेते हैं और गुजरात में जो छींपा आदिक जैनी हैं उन की कच्ची रसोई तो नहीं लेते और पकवानादि लेते हैं। अथवा जो कोई छींपों में से साधु हो तो उस के साथ मांडले में बैठकर आहार पानी नहीं करते हैं. और कितने छींपा आदिकों की कच्ची रसोई लेते हैं और

कोई शिष्य आदि हो तो माडले मे भी बिठलाते है । और कितनेही साधु उन गृहस्थियों को जो ऊना पानी पीते हैं नौकारसी के पच-क्खाण में भी आणेसलेवादिक ६ आगार बोलते हैं, कोई नहीं बोलते हैं । और कोई तो दीक्षा लेकर चार छः आठ दस वर्ष तक योग वहायकर छेदोपस्थापणी बडी दीक्षा न करें और इतने वर्षों के बाद उसको बडी दीक्षा दें तौभी उस छोटी दीक्षा से ही दीक्षित (साधु) गिनें और कितनेही छोटी दीक्षा दिये के पीछे ६ महीने में योग वहायकर बडी दीक्षा दें तब तो उस को साधु मानें । अथवा किसी कारण से योग बहाने वा बडी दीक्षा में दो चार वर्ष देर होजाय तो फिर जब तक उस को बडी दीक्षा न होय तब तक छोटी पर्याय में गिनें जब उस की बडी दीक्षा होय तब से उस को साधु मानें । कोई तो पडिक्कमण में शान्ति करा रोज कहते हैं और कोई सप्तमी तथा तेरस दोही दिन शान्ति करा कहते हैं और चवदस के दिन ही में क-हते हैं । और चवदस के दिन शाति करा कहनेवाले ऐसा भी कहते हैं कि जो चवदस के दिन शान्ति करा न कहे तो उस दिन पडिक्क-मण करनाही वृथा है । और कोई बिलकुल कहते ही नहीं हैं । और कोई तपगच्छ वाले सामायक पालती दफा इरियावही करते हैं और कोई नहीं करते हैं । और कोई तपगच्छ वाले इरियावही पीछे और करेमिभते पहले करते हैं इत्यादिक एक तपगच्छ वा इन की एक समुदाय में भिन्न २ परूपना हो रही है, तो सब गच्छ और ढूंढिया तेरह पन्थी सब को मिलाकर भिन्न २ वचन लिखें तो कहा तक लिखें परन्तु यहां तो उस गाथा के सम्बन्ध मिलाने के वास्ते भिन्न भिन्न वचन दिखाये हैं । "इम साभली न धरे लोक विसवास " इस के०

जिस रीति से हम ऊपर लिखेहुए भिन्न २ परूपना के वचनों को लिख आये हैं उस रीति के बचन सुनकर लोक विश्वास न धरें क्योंकि देखो ऊपर लिखे हुए भिन्न २ वचनों में से किस वचन पर विश्वास धरें ? किस के वचन को सत्य जानकर अंगीकार करें ? और किस के बचन को असत्य जानकर छोड़ें ? इसलिये लोगों को किसी के ऊपर विश्वास नहीं होता किन्तु जाति कुल दृष्टिराग से जिन की पक्ष में बंधे हुए हैं उस ही की रीति करते हैं नतु धर्म जानकर। इसलिये इस जिन मत में जो जाति कुल की स्थापना हुई है वे विचारे ढूंढते हैं क्योंकि "ढूंढता धर्मने ते थया भमर जेम कमलनी वासरे" इस जैनमत में जो जाति स्थापी गई है उन में कितने ही भव्य जीव आत्मार्थी संवेगी, यती, ढूंढिया, तेरह पन्थियों के पास धर्म को पूछते फिरते हैं जैसे भमरा कमल २ के ऊपर वासना लेता है परन्तु यथावत् वासना न मिलने से वह कमल २ के ऊपर बैठता फिरता है। तैसेही भव्य जीव आत्मार्थी भी श्रीवीतराग का धर्म यथावत् न मिलने से जगह २ भटकते हैं और उन को सिवाय क्लेश के शान्ति होने का मार्ग नहीं मिलता है। इसी कारण से गृहस्थी लोग भी धर्म की आस्था से हीन हो कर रागद्वेष पक्षपात रूप भंग के नशे में जाति कुल अभिमान में भरेहुए जैन धर्म के साधु साध्वियों पर हुक्म चला पच्चक्खाण आदि करने को घर स्प बुलाते हैं तथा पढ़ाने के वास्ते भी घर पर बुलाते हैं। सो कितने ही साधु साध्वी उन गृहस्थियों के कहने मूजिब ही हुक्म उठाते हैं और इसीलिये धर्म के अविश्वास से कितने ही गृहस्थी लोग देव द्रव्य गुरु द्रव्य भक्षण करने में भी किसी तरह की शंका नहीं करते अर्थात् भक्षण ही करते हैं। और कितने ही श्रा-

चक लोग आडम्बरी साधू के पक्ष में बध कर अपनी आजीविका के वास्ते अन्य गृहस्थियों को जो कि भोले लोग हैं उन को उन आडम्बरियों के जाल में फंसाय कर बतौर सिद्ध साधक के परभावना स्वामी वत्सल्ल अट्ठाई महोत्सव आदिक अपनी आजीविका के वास्ते खूब ऊधम मचाते हैं। इन वातों को किसी २ जगह प्रसग आने से जहा हम विधि कहेंगे उस जगह युक्ति और शास्त्रों के प्रमाणों से लिखेंगे। इस जगह तो हम को प्रयोजन इतना ही था कि इस जिन धर्म में जाति कुल अर्थात् जिजमान पुरोहिताई के बतौर होने से जिन धर्म की व्यवस्था अन्य की अन्य हो गई। क्योंकि देखो ओसवाले पोडवाल आदि लोगों ने तो ऐसा समझ लिया कि जिन धर्म हमारी जाति व कुल का है, ये साधु साध्वी भी हमारे जाति कुल के गुरु हैं। इस लिये जिन धर्म में जो कहा था कि श्रावक नाम किसका है कि श्रवणोपासकाः अर्थात् श्रवण जो कहिये साधु उस की जिस को है उपासना उस को श्रावक कहते हैं। सो इन लोगों ने भी यही जान लिया कि हमारे सिवाय दूसरी जगह तो मागने को जा नहीं सकते इस लिये हर एक गृहस्थी योग्य हो या अयोग्य गरीब हो या तालेवर सबही इन साधु साध्वियों पर इतना जोर शोर रखते हैं कि जैसे सेवकों पर हुक्म चलाते हैं। गृहस्थी तो चार वातें साधु साध्वियों को सुनाय दें और धमकाय दें और अपनी मर्जी के माफिक करावें। कदाचित् कोई साधू सत्य बात कहे और उन गृहस्थियों की मर्जी माफिक न हो तो उसी वक्त उस साधु को धमकावें और वन्दना व्यौहार तथा जाना आनाही बिलकुल छोडदें और हरेक जगह उस की निन्दा करते फिरें अथवा अनहुआ दूषण भी उस को लगाय कर

जगत में प्रसिद्ध करते हैं। परन्तु इतना नहीं समझते हैं कि ऐसे २ झूठे दूषण लगायकर अपना कर्म क्यों बांधते हैं और जिन धर्म की हेलना क्यों कराते हैं। क्योंकि देखो जो साधु साध्वी वर्त्तमान काल में हैं उनकी जाति कुल देश आदि बाप दादे को कोई नहीं जानता, केवल लोग यही जानते हैं कि ये जिनधर्म के साधू और ओस-वालों के गुरु हैं। इसलिये उन साधु साध्वियों की तो कुछ हंसी नहीं होती किन्तु जिनधर्म वा ओसवालों की लोग हंसी करते हैं कि यह जिनधर्म के साधु ओसवालों के गुरु हैं। सो ऐसा तो उन गृह-स्थियों को खयाल नहीं है परन्तु भेषधारी का भेषधारियों के अन्तेवाशी अर्थात् दृष्टिरागी अपनी जिव्हा की लोलुपता से माल खाने के वास्ते गच्छादि ममत्व में भोले जीवों को फंसाय कर कदाग्रह करते हैं। इस व्यवस्था को बुद्धिमान बिचार कर समझें कि जिनधर्म का मुख्य पदार्थ का निर्णय जिस में आत्मा का अर्थ अर्थात् धर्म की प्राप्ति सो तो कदाग्रह से छिपगया और धूम धमाधम चल गई। इसलिये कारण को कार्य और कार्य को कारण मान लोगों ने अपनी २ मन कल्पना से अनेक व्यवस्था करदी सो बुद्धिमान अपनी बुद्धि से विचार कर इस लेख को वांचकर समझ लेंगें। इत्यलम् विस्तरेण ॥

॥ इतिश्रीजैनाचार्य मुनि श्रीचिदानन्द स्वामी विरचितायां द्वितीय प्रकाश समाप्तम् ॥

तृतीय प्रकाश।

अब तृतीय प्रकाश और द्वितीय प्रकाश का सम्बन्ध कहते हैं कि द्वितीय प्रकाश में क्या बात कही थी कि जिस के सम्बन्ध से

तृतीय प्रकाश का वर्णन होता है । द्वितीय प्रकाश में कारण कार्य विपरीत होने की व्यवस्था कही है तो अब इस तृतीय प्रकाश में कारण कार्य को यथावत कहनेवाले कौन होते हैं इसलिये इस जगह कारण कार्य के पेश्तर कहनेवाले की आवश्यकता हुई । इस वास्ते इस जगह शुद्ध और भगवत् की आज्ञा के अनुसार कारण और कार्य यथावत् कहनेवाले गुरु का वर्णन करते हैं । गुरु अर्थात् साधु में क्या लक्षण होता है उस लक्षण का वर्णन करते हैं । प्रथम तो साधु पञ्च महा व्रतधारी हो सो पच महा व्रत का नाम कहते हैं कि प्रथम प्रणातिपात विरमण अर्थात् किसी जीव को न मारे, दूसरा मृषावाद विरमण अर्थात् झूठ न बोले, तीसरा अदत्तादान विरमण अर्थात् किसी प्रकार की चोरी न करे, चौथा मैथुन विरमण अर्थात् किसी रीति से स्त्री का संग न करे; पाचवा परिग्रह विरमण अर्थात् नव विध परिग्रह में से कोई तरह का परिग्रह न रक्खे । इन पाचों महा व्रत का वर्णन "श्री-आचारंगजी" व श्री "दशवैकालक" में साधु के आचार विचार के वास्ते आचार्यों ने लिखा है । फिर वह साधु कैसा हो कि दोनों वक्त पडिलेहणा करे और ४२ दूषण टालकर आहार लेवे और दिन रात में चार दफे सिज्जाय करे और ७ वार चैत्यवंदन करे । इस शास्त्रोक्त सर्व रीति से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा से अपने साधुपने को पाले रागद्वेष रहित करके । विस्तार करके वर्णन तो हमने "स्याद्वादानुभव-रत्नाकर" में गुरु के प्रकरण में लिखा है और २ ग्रंथों में भी साधु का वर्णन किया है इस लिये यहा नाममात्र कहा है ॥

शंका—कदाचित साधु शास्त्रोक्त पञ्च महाव्रतधारी अर्थात् शास्त्रोक्त चारित्र से शिथिल होय तो परुपना करने में क्या चारित्र अटकता

है ? इसलिये चारित्र करके कुछ हीन भी होय तो परूपना करने में कुछ हर्ज नहीं ॥

समाधान—जो कोई शुद्ध चारित्र पालनेवाला है वही शुद्ध परूपना करेगा। जिस का शुद्ध चारित्र नहीं है उस से शुद्ध परूपना कदापि न होगी क्यों कि देखो कोई पुरुष हजारपति है वह किसी को कहे कि मैं तुझको लक्षपति बनादूं तो उस का कहना यथावत् नहीं है क्योंकि उस के पास तो लक्ष रुपये हैं ही नहीं तो वह क्योंकर लक्षपति बना सक्ता है ? हां अलबत्ता क्रोड़पति कहै कि मैं लक्षपति बना दूं तो लक्षपति बना सकता है । इसी रीति से जो शुद्ध चारित्रवान आप त्यागी होगा वही शुद्ध परूपना करेगा और दूसरे को त्याग करावेगा। इसलिये यह तुम्हारी शंका ठीक नहीं। और शास्त्रों में भी कहा है कि कनक कामिनी का जो पूरा२ त्यागी होगा वही शुद्ध परूपना करेगा। इस के ऊपर शास्त्रों में एक कथा लिखी है सो यहां लिखते हैं। कोई कर्म के उदय से एक रत्न किसी मुनि के हाथ लगा। उस रत्न को वह मुनि अपने पास में यत्न से रखता था कि कोई उस को न देख सके। सो वह मुनि जिस जगह जाता उस जगह देशना देता तब चार महाव्रत की तो भिन्न २ अच्छी तरह से परूपना करता परन्तु जब परिग्रह का विषय आता तब यथावत् परूपना न करता। इस रीति से देश में गांव २ नगर २ फिरता हुआ किसी शहर में पहुंचा। उस जगह चार महा व्रत की परूपना तो यथावत् की और पांचवें व्रत की परूपना कम करता हुआ। उस परूपना को सुनकर एक विचक्षण श्रावक अपने दिल में विचारने लगा कि महाराज ने जैसी चार व्रत की परूपना की तैसी पांचवें व्रत की परूपना न की इस का कारण

क्या है ? ऐसा विचार कर उस वक्त तो न बोला, परन्तु जब वह साधु बाहिर भूमि अर्थात् दिसा की बाधा मिटाने को गया उस वक्त में वह श्रावक उस साधु के मकान पर आयकर साधु के कपडे लत्ते पात्रादिक सभालने लगा, तब उन में जो साधु के पास रत्न था सो पाया। तब उस रत्न को तो उस श्रावक ने लेलिया, और वैसेही सर्व चीज वस्तु रखकर वह श्रावक अपने घर चला आया। कुछ देर के बाद वह साधु बाहिर भूमि फिरके आया, तब पडिलेहणा आदिक अपनी क्रिया करने लगा उस वक्त में वह रत्न साधु को न मिला। उस रत्न के न मिलने से एक दफा तो वह सोच करने लगा कि हाय ! मेरा रत्न कहां गया ! फिर कुछ थोडीसी देर के बाद परिणाम की धारा फिरी और विचारने लगा कि हे जीव ! तू ने साधुपना लिया है, तुझ को इस रत्न से क्या प्रयोजन था ? तू अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूपी रत्न को सभाल जिस से तेरा जन्म मरण मिटे। अरे ! यह रत्न तो ससार बढ़ानेवाला था। इसलिये लेजानेवाले का भला हो कि उस को लेगया; मेरे तो परिग्रह में इस रत्न की वृथा मूर्च्छा बनी हुई थी सो आज मेरे शुभ कर्म का उदय हुआ, जिस से आज मेरी मूर्च्छा दूर होगई ऐसा विचारता हुआ अपने धर्म ध्यान में मग्न होगया। फिर दूसरे दिन देशना देने के वक्त सभा इकट्ठी हुई तब उस सभा के बीच में परिग्रह का त्याग रूप व्याख्यान ऐसा दिया कि कितनेही भव्य जीवों का परिग्रह से दिल हटगया और मर्यादा करली और कुल सभा बहुत राजी हुई क्योंकि परिग्रह में ग्लानि हुई, और मूर्च्छा हटने लगी। इस रीति से परिग्रह का त्याग रूप व्याख्यान समाप्त किया, तब सर्व सभा के लोग जाते हुए महाराज के व्याख्यान की

बहुत शोभा करते २ अपने २ घर को चले गये परन्तु वह रत्न लेने वाला श्रावक बैठा रहा और अकेले में मुनि से कहने लगा कि हे भगवन् ! आज तो आपने परिग्रह त्याग रूप व्याख्यान बहुत अच्छा दिया । उस वक्त साधुजी समझकर कहने लगे कि भो देवानुप्रिय ! मैं तेरा बड़ा उपकार मानता हूं कि तू ने मुझ को परिग्रह रूपी जाल में से निकाला । जब वह श्रावक भी बहुत प्रसन्न होके वन्दना आदि करके अपने घर चला गया । इस कथा के लिखने का प्रयोजन यह है कि जब तक वह रत्न उस साधु के पास रहा तब तक परिग्रह के त्याग में यथावत् परूपना न कर सका, जब उस साधु के पास से वह रत्न जाता रहा, तब परिग्रह के त्याग का व्याख्यान अच्छी तरह से देने लगा । इस लिये जो आप त्यागी होगा वही दूसरों को त्याग करावेगा। कदाचित् अपने में कुछ भी शिथिलाचार होगा तो वह यथावत् आचार की परूपना कदापि न कर सकेगा । इस लिये जो शुद्ध आचारवाला है वही शुद्ध परूपना करेगा नतु अशुद्ध आचारवाला ॥

शंका—अजी तुमने यह कथा कही सो तो ठीक है परन्तु शास्त्रों में कहा है कि जिस का दर्शन अर्थात् श्रद्धा शुद्ध होगी वह पुरुष परूपना भी शुद्ध करेगा क्योंकि उस के चारित्र का क्षय उपशम नहीं है परन्तु दर्शन ज्ञान तो है । यथोक्तं “ दंसणभट्टो भट्ठादंसण भट्टस्स नत्थी निव्वाणं सिज्झंति चरणरहिया न सिज्झंति दंसण र-हिया ” ॥

समाधान—भो देवानुप्रिय ! जो तुमने कहा कि जिस का दर्शन शुद्ध है वह परूपना भी शुद्ध करेगा क्योंकि उस के चारित्र का अभी क्षय उपशम नहीं है तो हम तुम को यह बात पूछते हैं कि

सर्व्वव्रती चारित्र का क्षय उपशम नहीं है या देशव्रती चारित्र का क्षय उपशम नहीं है या दोनो का नहीं है ? जहा पहिले दोनों का क्षय उपशम नहीं है उस को तो केवल श्रद्धा मात्र है, क्योंकि वह तो सम-कित दृष्टि की गिन्ती में है। यद्यपि उस का दर्शन शुद्ध है परन्तु उस को देशना देने का अधिकार नहीं है। और जो तुम कहो कि सर्वव्रती के चारित्र का क्षय उपशम नहीं है तो वह देशव्रती श्रावक हुआ। तो देशव्रती श्रावक को भी सभा को भेली करके देशना देने का अधिकार नहीं है क्योंकि देशव्रती श्रावक अर्थात् गृहस्थी को सूत्र वचानेवाले साधु को "निशीथ सूत्र" में प्रायश्चित कहा है। नि-शीथ सूत्र के उगणीसवें (१६) उद्देसा में कहा है सो पाठ यह है— "सेभिलवुवाणिउत्थिय वा गारत्थिय वा वएइवायत वा साइज्जइ तस्सगा चाउम्मासिय"। इस से श्रावक जो देशव्रती है उस को सूत्र बाचने का अधिकार नहीं, तब सभा को भेली करके देशना देना कैसे बनेगा ? इस लिये चारित्र के लिये बिना देशना देना नहीं बनता। दूसरी और सुनो। जब तुम कहते हो कि हमारा दर्शन शुद्ध है तो देशना देने में क्या अटकता है ? इस तुम्हारे कहने ही से मालूम होता है कि तुम्हारा दर्शन अशुद्ध है क्योंकि जो तुम्हारी श्रद्धा शुद्ध होती तो चारित्र अर्थात् साधुपना पालने का निषेध करके अपनी देशना देना स्थापन न करते, क्योंकि जिस को श्रीवीतराग के वचन के ऊपर श्रद्धा अर्थात् विश्वास है वह सत्पुरुष तो एक बात को कदापि न स्थापेगा। इस लिये श्रद्धा शुद्ध बतायकर भोले जीवो को रिझायकर अपनी आजीवि-का चलाने का काम है नतु धर्मदेशना। तीसरा और भी सुनो। शास्त्रो में ऐसा कहा है कि "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गाणि" ऐसा

श्रीतत्वार्थ सूत्रजी में कहा है। सो इस वचन से तो मालूम होता है कि तीनों चीज़ अर्थात् सम्यक् दर्शन, ज्ञान, और चारित्र एक जगह होने सेही मोक्ष होगी नतु एक दर्शन, ज्ञान वा चारित्र से ही; क्योंकि जो एक दर्शन ज्ञान वा चारित्र सेही मोक्ष माननेवाले हैं उन कोही शास्त्र में मिथ्यात्वी कहा है। इस लिये यह तुम्हारी शंका केवल भोले जीवों को बहकायकर जाल में फंसाना है नतु धर्मदेशना॥

शंका– अजी यह तो तुमने एकान्त दर्शन शुद्धि को ठहरायकर समाधान किया परन्तु श्रीभगवतीजी में पच्चीसवां शतक छठे उद्देसे में ऐसा कहा है कि "वकुश और कुशील इन दो निर्ग्रंथों से श्रीमहावीर स्वामी का शासन छेडले आरे तक चलेगा" इस लिये देशना देने में पासत्था कोभी कुछ हर्ज नहीं, क्योंकि देशना देना तो ज्ञान से होता है। इस लिये जो ज्ञान करके संयुक्त बहुश्रुत हैं और चारित्र करके हीन हैं तोभी ज्ञानसंयुक्त देशना देना ठीक है॥

समाधान—भो देवानुप्रिय! तेरे इस वचन के कहने से हम को मालूम हुआ कि बंचकों में तुम भी बञ्चक पूरे हो, क्योंकि देखो इस अपनी स्वार्थ-सिद्धि अर्थात् चारित्र में शिथिल होकर इस पासत्थे-पने को पुष्ट करने के वास्ते तो तुमने श्रीभगवतीजी सूत्र के जिस शतक उद्देसा से अपना मतलब निकले उस को तो अंगीकार किया परन्तु जिन २ सूत्रों में पासत्थों का निषेध किया है उन सूत्रों में तुम्हारी दृष्टि न पहुंची सो अब देखो हम तुम्हारे वास्ते उनही सूत्रों का पाठ दि-खाते हैं। सो तुम उनको भी अंगीकार करो कि जिस से तुम्हारा कल्याण हो और जिनराज की शुद्ध आज्ञा पले और जिनधर्म की उन्नति होय। अब सूत्रों का पाठ लिखते हैं– "पासत्थो उसन्नो होई कुशीलोतहेवसं-

सत्तो अहछन्दो अवदणिज्जा जिणमयम्मि।" "पासत्थाइवद माणस्स, नेव किंचि ननिज्जरा होइ जायइ काय किलेसोबधो कमणस्स आणाई।" "ज्जहलो असिला अप्पपिबोलएतहविलगा पुरिमिपिइय सारभो अगुरु परमप्पाण चवोलेई।" "कियकम्मंच पसंसामु असील जणम्मि कम्मबधो- यजेजे पमाय ठाणा तेते उव२वुहियाहुति।" इन चारों गाथाओं का किंचित् अर्थ लिखते हैं। पासत्था के० पास में जो वस्तु हो और उस में, प्रवृत्त न हो उसी का नाम पासत्था है। उस के तीन भेद हैं १ ज्ञान पासत्था २ दर्शन पासत्था ३ चारित्र पासत्था। ज्ञानपासत्था उस को कहते हैं कि पुस्तक पन्ना तो गृहस्थियों से लेकर बहुत इकट्ठे करे और उन पुस्तक पन्ना को न बाँचे न विचारे अथवा उन पुस्तकों को बांचने के लायक बोध न हो और केवल पुस्तकेंही इकट्ठी करे; क्योंकि पुस्तकें बहुत होंगी तो चेला उन के बहुत होंगे अथवा उन के लोभ में वे चेला टहल चाकरी करते रहेंगे। अब दर्शन कुशीलिया को कहते हैं कि लोक में दिखाने को तो जिनाज्ञा बहुत कहै परन्तु अन्तरग में उस के जिन वचन पर विश्वास नहीं क्योंकि केवल बोलचाल ढाल चौपाई गृहस्थियों को रिझाने के वास्ते सीखे और लोगों में कहे कि जिन–मार्ग बहुत उत्तम मोक्ष का देनेवाला है परन्तु अपने अन्तरग में उस धर्म की रुचि नहीं है इसलिये दर्शन पासत्था है। अब चारित्र पासत्था कहते हैं कि जो चारित्र लेकर अनेक तरह के विषय आदि को सेवे अर्थात् जिव्हा की लोलुपता से इन्द्रियों के विषय भोग करे और लोगों में साधु बनने कारण कई अपवाद मार्ग की स्थापना करे सो चारित्र पासत्था है। अब उसन्ना के भेद कहते हैं कि उसन्ना भी दश प्रकार की है जो शास्त्रों में समाचारी है उसे यथावत न करे,

वे कारण हाथ पग धोवे, आवश्यक आदि में आलस्य करे इत्यादि अनेक रीति से उसन्ना के शास्त्रों में वर्णन किये हैं। ऐसेही कुशीलिया के० विनय आदिक से भेद लेकर अनेक तरह से ज्ञान दर्शन चारित्र का विराधक हो। संसत्था उसे कहते हैं कि जो उत्कृष्टा साधु मिले तो उसके संग में उत्कृष्टा साधु वनजाय और पासत्था देखे तो उन में शिथिलाचारी बन जाय। क्यों कि एक मसल है "जहां देखे थाली परात, वहां गावें सारी रात" अर्थात् जैसे में तैसा होजाय। खरतर की सामग्री जियादा देखे तो खरतर होजाय और तपों की सामग्री जियादा देखे तो तपा हो जाय अर्थात् कीर्त्ति पूजा अथवा बहुत लोग मनाने के वास्ते व माल खाने वा चेला चेली बहुत करने के वास्ते जो इधर के उधर जाते फिरें वे संसत्था हैं। अब स्वच्छन्दा का लक्षण कहते हैं कि जो गुरु आदि की आज्ञा अथवा जिनाज्ञा को लोप कर अपनी इच्छाचारी से मन की कल्पना से थाप उथाप करे और अपनी इच्छा मूजिब चले उसे स्वछन्दा कहते हैं। इन पांचों के वास्ते जिनागमों में अर्थात् शास्त्रों में वन्दना अर्थात् नमस्कार करने की मनाई की है। जब इन को वन्दना करने ही को मना किया है तो देशना क्योंकर बने? और दसरी गाथा में वंदना के लिये ग्रंथकार लिखते हैं सो कहते हैं "पासत्थाई वंदमाणस्स नव कित्ति न निज्जरा होई" के० पांच प्रकार के जो पासत्थे कहे हैं उन को वन्दना अर्थात् नमस्कार करने से कीर्त्ति न होवे, क्योंकि देखो जब आचार हीन क्रियाहीन को जो लोग वंदना नमस्कार करेंगे तो अन्य मतवाले लोग देखकर हसेंगे और कहैंगे कि कैसे भ्रष्टाचारी इन के गुरु हैं! इस रीति से लोग कीर्त्ति की जगह अपकीर्त्ति करेंगे। और जो आचारवान्

शुद्ध क्रिया के करने वाले हैं उन को वन्दना करने में लोग प्रशसा करेंगे कि इन के गुरु कैसे आचारवान, क्रियापात्र, शुद्ध, उत्तम पुरुष हैं और जो लोग इन को मानते हैं उन की वडी अच्छी बुद्धि और मर्मज्ञ हैं क्योंकि वे सत् पुरुषों के ही माननेवाले हैं। दूसरा और भी देखो कि उन पासत्था आदि को वन्दना करने या मानने से बाल जीवादिक उन के फन्दे मे फस जाते हैं और उन बालजीवों को धर्म की प्राप्ति तो होती नहीं किन्तु दृष्टिराग में फस कर वे कलह में पड जाते हैं। जब उन की वन्दना में कीर्त्ति नहीं है तो निर्ज्जरा कैसे होगी ? इस लिये न कीर्त्ति है और न निर्ज्जरा, केवल काया को क्लेश देना है; क्योंकि उठना बैठना माथा नीचे नवाना इस के सिवाय और तो कुछ फल है नहीं किन्तु उलटा कर्म बन्ध हेतु दीखता है। क्योंकि भगवान की आज्ञा में धर्म है; और इन पांचों को वांदने की भगवान की आज्ञा नहीं है। जब भगवान की आज्ञा नहीं है तो इसी में कर्मबन्ध हेतु है। फिर तीसरी गाथा में इन का संग करने का फलभी दिखाया है। जो कोई इन का संग करेगा वह संसार रूपी समुद्र में डूबेगा। क्योंकि देखो जैसे लोहे की शिला पर कोई पुरुष बैठकर तिरा चाहे तो कदापि नहीं तिरेगा किंतु डूबेहीगा। क्योंकि " गुरु लोभी चेला लालची दोनों खेलें दाव। दोनों बापड डूबिया बैठि पथर की नाव "॥ अब चौथी गाथा का अर्थ कहते हैं कि जो इन की प्रशंसा आदिक करना है सो संसार में कर्म बंध हेतु है क्योंकि देखो जो पांच प्रकार के पासत्थे आदि हैं उन की वन्दना स्तुति आदि करने से वे औरभी सुखशील अर्थात् शिथिलाचारी हो जायगे, क्योंकि जो २ प्रमाद का स्थानक है उस को सेवन

से प्रमादही प्राप्त होता है। और दूसरा यहभी है कि जब पासत्था आदिक की बहुत प्रशंसा होती है तो उनका शिथिलाचार देखकर जो अच्छे साधु भी हैं वेभी शिथिल हो जाते हैं क्योंकि अभी के वक्त में कोई केवली पूर्वधर तो हैं नहीं जो उन भव्य जीवों को चारित्र में दृढ़ रक्खें। इसलिये पासत्थों की कीर्त्ति अर्थात् पूजा प्रतिष्ठा देखकर किंचित् बोधवाले उन की तरहही शिथिल होजाते हैं। इस रीति से शास्त्रों में भगवत का मार्ग अनेकान्त है। और जो अपने स्वार्थ के वास्ते एकान्त करके एक बात कोही स्थापते हैं वे जिनाज्ञा के विराधक हैं। इस एकान्त स्थापनेही पर श्रीयशविजयजी उपाध्यायजी ने साढ़े तीनसौ गाथा के स्तवन में प्रथम और दूसरी ढाल में इन एकान्त स्थापनेवालोंही का निषेध किया है। उस स्तवन का अर्थ समवेग मार्ग में प्रधान श्रीसत्यविजयजी की परम्परावाले श्रीपद्मविजयजी उपाध्यायजी ने किया है। दूसरी ढाल की ११ वीं गाथा में तो शिष्य ने प्रश्न करके वकुश और कुशीलिया श्रीभगवतीजी के प्रमाण से स्थापन किये हैं। तिस के उत्तर में जो बारहवीं गाथा कही है उस को लिख कर दिखाते हैं (" ते मिथ्यानिःकारण सेवा, चरणघातीनी भाषीरे ॥ मुनीने तेहने संभवमात्रें, सत्तमठाणुं साखीरे ॥ १२ ॥ अर्थ—हवे गुरु कहे छे कि एम भगवती सूत्रनी साख आपीने जेम तेम प्रतिकूल सेवावालाने जे चारित्र ठेरावे छे ते मिथ्या के० खोटुं कहेछे केमके निःकारण सेवा के० कारण बिना जे प्रतिकूलपणे सेवा अपवाद रूप तेहने मुख्य करीने जे प्रतिसेवा करे ते प्रतिसेवा तो चरण घातीनी भाषी के० चारित्रने घातकरनारी कही छे ॥ " यतःसंघरणंमिअसुद्धं। दोएहविगिएहं तदिंत्तगाएहियं ॥ आउरादिठ्ठंतेणं तंचेवहियंअसं-

धरणे" इतिवृहत्कल्पभाष्ये ते प्रतिसेवा मुनीने तेहने के० ते मुनीने
सभवमात्रे के० लागवारूप संभव पण उपयोग पूर्वक प्रतिसेवा करे नहीं
कदाचित् उपयोग पूर्वक करे तो ते अपवादें करे पण उत्सर्गे नहीं करे
एं पण संभवज कहींये । तिहा सत्तम ठाणु साखी के० ठाणा नामा
प्रकरणमां सातमें ठाणे कह्युछे ते ठाणा प्रकरण मारा हाथ मा प्राप्त थयुं
नथी पण मारा गुरुने वचने जाणुंछु के ठाणा प्रकरण छे अन्यथा
इहाँ कोइक ठाणाँग सूत्र कहे छे पण ते ठाणाग मध्ये ए पाठ जडतो
नथी ते माटे गुरुवचन सत्य इति ज्ञेयं ॥ १२ ॥)" इस रीति से श्रीयश-
विजयजी उपाध्यायजी ने तुम्हारी श्रीभगवतीजी की शंकारूप झाड के
वास्ते कुल्हाडा रूप साढे तीनसौ गाथा के स्तवन की दो ढाल में
अच्छी तरह से शंका निर्मूल की है । जो हम उस का कुल मतलब लिखें
तो ग्रंथ बढ़जाय इस भय से नहीं लिखते हैं । दूसरा और भी देखो
कि एक श्रीभगवतीजी के पच्चीसवें शतक छठे उदेसा में जो वकुश
और कुशीलिया का वर्णन किया है उस को तो तुम अपनी स्वार्थ-सिद्धि
अर्थात् अपने उत्तर गुण मूल गुण में दूषण लगाते हुए और भोले
जीवों में साधुपन ठहराते हुए भगवतीजी अथवा अन्य छेद ग्रंथों को
लेकर अपनें औगुण दबाने के वास्ते दिखाते हो
साख देते हो परन्तु श्री साधु आचार विचार का वर्णन किया है और
शिथिलाचारी आदिकों को पापश्रवण आदि कहकर निषेध किया है
उन सूत्रों को तो तुम आगे लेके नही बोलते । जो इन सूत्रों की
साख लेकर अपने चारित्र वा आचार में चलो तो जिनाज्ञा के आरा-
धक हो नहीं तो अपने ऐब छिपाने के वास्ते अपवाद मार्ग की बातें

भोले जीवों को दिखाय कर जो अपने में साधुपना ठहराते हो सो जिनाज्ञा विरुद्ध करते हो। इस जगह मुझ को एक कवित्त याद आया है सो लिखता हूं ॥

कवित्त । पञ्चम काल दोष देत जैना उन्मत्त भये, स्थापत अपवाद करें मोंड़े की कहानी है। द्विविध धर्म कह्यो निश्चय व्यवहार लयो, कारण अपवाद ऐसी आप ही बखानी है॥ प्रायश्चित करे गुरु संग चित्त चारित्र धरे, श्रद्धा और ज्ञान यही स्याद्वाद की निशानी है। चिदानन्द सार जिन आगम को रहस्य यही, आज्ञा विपरीत वही नर्क की निशानी है ॥ १ ॥

इसलिये भो देवानुप्रिय! अपनी बुद्धि विचक्षण को छोड़कर अपनी आत्मा के कल्याण करने की इच्छा होय तो श्री वीतराग सर्वज्ञ देव के अनेकांत वचन को एकान्त वचन करके मत स्थापो। क्योंकि देखो जिस पुरुष के वीतराग के वचन पर शुद्ध श्रद्धा है वह पुरुष कारण पड़े अपवाद मार्ग से चारित्र में दूषण लगावे परन्तु अपने दूषण छिपाने के वास्ते जो कि छेद ग्रंथों में जो वचन कहे हैं उन को आगे रखकर अपने में [illegible] अर्थात् शुद्ध चारित्र न ठहरावेगा किन्तु कोई पूछे तो यही है मैं ने लाचार हो[illegible] लगा है परन्तु साधु का मार्ग यह नहीं [illegible] से इस काम को न करूंगा। कदाचित् मेरी [illegible] है सो कारण मिटने [illegible] लालुपता [illegible] करे तो मैं भगवत्-आज्ञा-विराधक होऊँगा। इसलिये जो पुरुष ऐसा कहते हैं वेही पुरुष आत्मार्थी हैं। इस लिये श्रीआनन्दघनजी महाराज चौदवें श्रीअनन्तनाथजी के स्तवन में ऐसा कहते हैं "पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिसो। धर्म्म नहीं कोई जग सूत्र सरिषो" ॥ यह तुक छठी

गाथा में है। इसलिये आत्मार्थी पुरुषों को विचारना चाहिये कि एकान्त मार्ग को न स्थापें, एकान्त स्थापने से ससार की वृद्धि के सिवाय और कुछ नहीं है। इसलिये आत्मार्थी को यही उचित है कि कारण पडे तो अपवाद मार्ग को अंगीकार करे परन्तु अपवाद मार्ग को स्थाप कर प्रवृत्ति मार्ग में न दृढ करे न करावे, और न दृढ करनेवाले को भला जाने क्योंकि अपवाद मार्ग है सो तो उत्सर्ग को सहाय देनेवाला है नतु अपवाद प्रवृत्ति में चलनेवाला। कदाचित् अपवाद मार्ग से ही प्रवृत्ति मार्ग चलना श्रेय होता तो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव उत्सर्ग मार्ग प्रवृत्ति में कदापि न चलाते और इस उत्सर्ग मार्ग की ग्रथों में रचना भी न होती। इसलिये बुद्धिमानों को अपनी बुद्धि से विचार करके श्री वीतराग की आज्ञा अंगीकार करना चाहिये। अब इस जगह हम इन्हीं बातों के प्रश्नोत्तर वा चर्चा लिखें तो ग्रंथ बहुत लम्बा होजाय, इस भय से नहीं लिखते। परन्तु आत्मार्थियों के वास्ते इतनाही लिखना काफी है नतु दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालों के अथवा आजीविकावालों के वास्ते। अब यहाँ कितनेही शख्स ऐसा कहते हैं कि हम शुद्ध चारित्र पालते हैं इसीलिये हमारी देशना से भव्य जीवों का उपकार होगा। ऐसा कहनेवालेभी दंभी, धूर्त्त, महा ठग मालूम होते हैं क्योंकि उन लोगों के मुख से अक्षर तो शुद्ध उच्चारण होताही नहीं है और उन को अपनी आत्मा काही बोध नहीं है तो व देशना देकर क्योंकर भव्य जीवों को तारेंगे ? केवल कपटाई अर्थात् माया से बाह्य क्रिया करके लोगों को भ्रमजाल में फसाते हैं नतु शुद्ध चारित्र में प्रवर्त्तना है जिन की ॥

शंका— अजी तुम ऐसा कहते हो कि वे बाह्य क्रिया करते हैं और उन में आत्मबोध नहीं है सो तुम्हारा कहना ठीक नहीं है; क्योंकि

देखो उन लोगों में थोकड़ा आदिक बोलचाल भांगे वगैरे: की चर्चा तो बहुत है। और सूत्र भी बाँचते हैं सोभी मूल पैंही अर्थ करते हैं इस-लिये उन की क्रिया और देशनाभी ठीक है ॥

समाधान—अरे भोले भाई! नेत्र मींचकर कुछ बुद्धि से विचार कर। वाह्यक्रिया करने से कुछ जिनधर्म्म के चारित्र की प्राप्ति नहीं होती। जो वाह्य रूप लोगों के दिखाने के वास्ते, क्रिया करने सेही चारित्र प्राप्त हो तो ३६३ पाषण्डी जो क्रियावादी अक्रियावादी हैं उन में भी चारित्र होना चाहिये, सोतो नहीं। इस लिये जो ज्ञान सहित्त क्रिया शास्त्रानु-सार श्रीभगवतकी आज्ञा से करनेवाले हैं उनहीमें साधुपना गिना जा-यगा। जो आत्मसत्ता ओलखे विदून क्रिया अर्थात् तप सँयम कष्ट आदि करते हैं और जीव अजीव पदार्थ की सत्ता जानी नहीं, उनको श्रीभगवती सूत्र में अव्रती, अपचक्खाणी कहा है। जो अकेली वाह्य क-रनी करके लोगों में अपना साधुपन ठहराते हैं सो मृषावादी हैं ऐसा श्रीउत्तराध्ययनजी सूत्र में कहा है कि "नमुणीरन्नवासेणं" इति वचनात्। इसलिये जंगल में भी रहे और एकली वाह्य क्रिया करे सो ठग है। कि-न्तु शास्त्रों का ऐसा वचन है कि ज्ञानी है सोही मुनि है तथाच उत्तरा-ध्ययनजी में "नाणेणय मुनिहोइ" कहाहै। औरजो तुमने कहा कि बोल चाल अथवा यती श्रावकों के आचार जाने इसलिये वे ज्ञानी हैं यह कहना भी तुम्हारा ठीक नहीं। क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि जो द्रव्याणु जोग अर्थात् द्रव्य गुण पर्याय जाने सो ही ज्ञानी है श्रीउत्तराध्ययन मोक्षमार्ग में कहा है गाथा " एयं पंचविदणानां दव्वाणय गुणाणय पज्जवाणय स-व्वेसिं नाणँ नाणीहिदंसियं "। इसलिये वस्तु सत्ता जाने बिना ज्ञानी न कहिये। क्योंकि जब तक नव तत्व न जाने अर्थात ज्ञेय हेय उपादेय के

विना जाने जो कहै कि हम चारित्रवन्त हैं सो भी मृषावादी हैं क्यों कि देखो श्रीउत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि "जे नाण दंसण नाणं नाणेण विना नाहुति चरण गुणा" इसलिये ज्ञान विना चारित्र होता ही नहीं। इसलिये भव्यजीवों को क्रिया का आडम्बर देखकर उन ठगों का संग न करना चाहिये क्योंकि यह बाह्य करणी रूप अभव्य जीवको आवे इसलिये बाह्य करणीं ही को देखकर राजी नहीं होना। क्योंकि आत्मस्वरूप जाने विना सामायक प्रतिक्रमण पोसा आदिक सर्व पुण्यरूप आश्रव हैं सम्वर नहीं ऐसा श्री भगवतीजी सूत्र में कहा है कि "आयाखलु सामाइयं" इस अलावे से जान लेना। क्योंकि जीवस्वरूप जाने विना तप सयम पुण्य प्रकृति देवता होने का कारण है। यथोक्तं "पुव्वतवेण पुव्वसयमेणं देवलोए उववज्जति ने चेवणं आयत्ता भाववत्तव्वयाए" यह अलावा श्री भगवतीजी में कहा है। इसलिये हे भोले भाई! श्रद्धा पूर्वक ज्ञान संयुक्त जो क्रिया करनेवाले हैं वेही शुद्ध चारित्र श्रीवीतराग की आज्ञा के शुद्ध परूपक हैं इसलिये केवल क्रिया का आडम्बर होने से गुरुपना कदापि न होगा। और भी सुनो कि जो क्रिया आदिक को बिलकुल उठाय कर न्याय व्याकरण कोष काव्य आदि पढ़ करके जो कहते हैं कि हम शुद्ध परूपना करते हैं क्योंकि हमारे को अक्षर का ज्ञान है, अथवा जो आचार और ज्ञानहीन हैं इन सब के वास्ते श्रीदेवचन्द्रजी कृत आगमसार में लिखा है उसी में से किंचित लिखता हूं। "मात्रगच्छ लज्जा करके सिद्धान्त भणे वाचे है व्रत पचखाण करें है वे भी द्रव्य निक्षेपामा छे" ऐसा श्री अनुयोगद्वार में कहा है कि "इमे समण गुण मुक्त योगी छकाय निरणुकपा। हया इव उद्दामा। गया इव निरंकुशा। घट्ठा मट्ठा मट्ठातुप्पोट्ठा। पडुरया उग्गा जिणाण ५ आणाये मछन्दा। विहरिऊण उभओ

काल आवस्स गस्स उवहंतितं। लोगुत्तरियं दव्वा वस्सयं"। अर्थ--आगम सार ग्रंथ में गुजराती भाषा में अर्थ लिखा है सो यहां मैं हिन्दी भाषा लिखता हूं। जिन पुरुषों को छै काय के जीवों की दया नहीं है वे घोड़ों की तरह उन्मत्त हैं; जैसे हाथी निरंकुशपणे रहे उसी तरह वे अपने शरीर को मसल२ कर धोते हैं, और उजले कपड़े पहनते हैं, अतर फुलेल आदि से शृंगार आदि करते हैं, गच्छ के ममत्व भावसे बंधे हुए स्वेच्छाचारी हो श्रीवीतराग की आज्ञा भंग करते हैं। उन का जो तप क्रिया करना है सो द्रव्य निक्षेपा में है। अथवा ज्योतिष वैद्यक करके अपने ताईं आचार्य उपाध्याय वा साधु बनाकर लोगों में महिमा कराते हैं वे पत्रविंध खोटा रुपया समान हैं, संसार में रुलनेवाले हैं; अवन्दणीक अर्थात् नमस्कार करने के योग्य नहीं हैं। ऐसा श्री उत्तराध्ययनजी में श्री अनाथी मुनि के अध्ययन से जान लेना। इसलिये इस जगह ऐसी२ बहुत शंका समाधान हैं परन्तु मैंने तो किञ्चित नाम मात्र लिखकर भव्यजीवों को दिखाया है। क्योंकि मैंने तो किसी से रागद्वेष व पक्षपात लेकर किसी का खण्डन मण्डन नहीं लिखा किन्तु जैसा २ शास्त्रों में अथवा यशविजयजी, देवचन्द्रजी आनन्दघनजी आदि सत् पुरुषों के किये हुए प्रकरणों को देखकर व्यवस्था लिखी नतु रागद्वेष पक्षपात से। इस जैनमत में तरह२ की व्यवस्था होने से सुमति न रही। सुमति न होनेसेही सम्पत्तिकी हान हुई। इस जगह एक पहेली कहकर दृष्टान्त दिखातेहैं—पहेली—"जहां सुमत तहां सम्पति नाना, जहां कुमति तहां विपति निधाना" इसपर दृष्टान्त देखो कि एक शहरमें एक साहूकारथा उसके ४ पुत्रथे उन चारों पुत्रोंका व्याह आदि हो गया था और उन लोगोंका कार व्यौहार अच्छी तरह से चलता था और उस साहूकारकी स्त्री भी अपने पतिके हुक्ममें रहती थी और पुत्र आदि इ-

तने उस पिताके कहनेमें थे कि बिना पिताकी आज्ञा कोई काम नहींकरते थे इसरीति से वह साहूकार उस नगरमें अपनी प्रतिष्ठा पूर्वक अपनी ऋद्धि भोगता था परन्तु अशुभ कर्म के उदय से उसका द्रव्य सब नष्ट होगया। उस द्रव्यके नष्ट होजाने पर महा दुःख पाने लगा तब उसने विचारा कि इस जगह तो मुझसे छोटा काम होगा नहीं इसलिये इसनगर को छोड पर देश में जाऊ और कुछ छोटा मोटा रोजगार करू जिस से आजिविका चले ऐसा विचारकर अपनी स्त्री से सलाह करनेलगा कि हे प्रिये ! इस नगर में तो अपनी गुजर होती नहीं इसलिये देशान्तर में चलें तब वह स्त्री कहने लगी कि बहुत अच्छी बात है जैसी आपकी इच्छा हो वैसाही करें। इतना सुन उसने उसी वक्त अपने पुत्रादिकों को बुलाया और उन पुत्रों से कहा कि मेरा ऐसा २ विचार है सो तुम लोग अपनी २ स्त्रियों को उन के पीहर पहुचाय आवो। इस वचन को सुनकर वे लोग अपनी२ स्त्रीके पास पहुँचे और सर्व वृत्तान्त कहा तब वे स्त्रिया सुनकर हाथ जोडकर अपने अपने पति से अर्ज करने लगीं कि हे स्वामिन ! हम लोग आपकी या आप के पिता की आज्ञा तो लोंपें (उलघे) नहीं किन्तु मजूर हे परन्तु हमारी इतनी विनती है कि जो सुसराजी अङ्गीकार करें तो ठीक है कि जब सुख हो तो हम आप के साथ रहें और दुःख में अलग हो जाय सो सुख में तो हरेक कोई शामिल रहता है परन्तु दुःख में तो जो अपना होय वही पास में रहे और दुःख पडने से ही अपना और पराया मालूम होता है इस लिये हमारे अन्त करण में तो पीहर जाने की है नहीं परन्तु आपकी आज्ञाभङ्ग के डरसे पीहर चली जावेंगी परन्तु हमारे हृदय में आप लोगों के दुःख का सूल बना रहेगा इसलिये हमारी अर्ज सुसराजी कबूल करके संग लेचलें

तो ठीक। ऐसी उनकी बातें सुनकर वे लोग अपने पिता के पास आयकर अपनी स्त्रियों की तरफ से हाथ जोड़कर अर्ज करने लगे और सर्व वृत्तान्त सुना दिया। तब वह साहूकार सुनकर उसीवक्त अपनी स्त्री को और उन चारों पुत्रों और उनकी स्त्रियों को लेकर परदेश को चलदिया और चलते२ एक नगर के पास जंगल में पहुंचे। उस जंगल में झाड़ी अथवा मूंज आदिक बहुत थी उसको देखकर वह साहूकार विचारने लगा कि अपने पास में रुपया पैसा तो है नहीं जो शहर में जायकर खा-नापीना करें इसलिये इस जँगल में ठहरकर दो चार लकड़ियों की भारियां बिकवायकर उसका आटा दाल लायकर खापीके चलेंगे। ऐसा विचार कर एक पानी की बावड़ी के पास एक बड़के दरख्त के नीचे ठ-हर गया और पुत्रादिकों से सर्व काम को कहनेलगा कि दो जने तो ल-कड़ियों की भारी बांधके बेचआओ और उसका आटा दाल लावो, और किसी से कहा कि तुम मूँज काटलाओ और किसीसे कहा कि इसको कूटो और किसी से कहा कि चौका बर्तन करो और किसी को पानी के वास्ते इसरीति से सर्व को जुदा२ हुक्म दिया तब बेटा और बहू आदि वचन सुनतेही अपने२ काम को करने लगे। उस वक्त में उनकी एकता अर्थात् सुमति को देखकर उस जगह जो देवता रहताथा सो प्रसन्न होकर फिर भी उन की विशेष परीक्षा करने के वास्ते मनुष्य का रूप धरकर उस साहूकार के पास आया। उस वक्त में वह साहूकार जे-वड़ी बट रहा था सो उसने आयकर कहा कि तू क्यों जेवड़ी बट रहा है और क्यों इतना उजाड़ बिगाड़कर रहा है? इस वचन को सुनकर उस के पुत्रादि सब उस पुरुष की तरफ झाँकने लगे और दिल में विचारते हुए कि जो पिता आज्ञा दे तो इस को पकड़कर सीधा करदें। इतने में

वह साहूकार कहने लगा कि तुझे दीखता नहीं कि हम तेरे को बाधने के वास्ते बटरहे हैं। ऐसा उस को कहकर पुत्रादि को इशारा किया कि इस को पकडकर बाँधो। उन पुत्रादिने इस वचन को सुनतेही अपने२ काम को छोड़कर चारों तरफ से उस को पकडलिया। इस एकता को देखकर वह देवता प्रसन्न होकर कहने लगा कि मैं तुम्हारी एकता को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और तुम्हारे लिये मैं धन देता हूं सो तुम पूर्व की तरह फिर अपने नगर में जायकर अपना जैसा वाणिज्य व्यापार करते थे वैसाही करो और सुख पूर्वक रहो। ऐसा कहकर जो धन उस दरख्त के नीचे था सो निकालकर देदिया और कहा कि किसी को न कहना इतना कहकर वह देवता चला गया और साहूकार भी अपने नगर में आबसा और व्यापार करने लगा। सो उस साहूकारने तो किसी से जिक्र नहीं किया परन्तु उस की स्त्रीने जो कि पडोस में उसी के माफिक एक साहूकार था उसकी स्त्री से सब हाल कहदिया क्योंकि स्त्री के पेट में बात नहीं रहती है सो उसने अपनी पडोसन से जैसा हाल था वैसा सब कहदिया। उस स्त्री ने अपने पति से कहा उसने सुनकर धन के लोभ से जो कुछ थोडा बहुत धन था सोतो लुटादिया और उसी तरह दुःखी होकर अपनी स्त्री और बेटे और उन की बहुओं को लेकर उसी जगह जा पहुँचा और जैसे पेश्तर साहूकार अपने पुत्रों और उन की स्त्रियों पर हुक्म चलाता था वैसाही वहभी हुक्म चलाने लगा लेकिन उसके बेटा और बहुओं ने उसका हुक्म न माना बल्कि उल्टा उसको धमकाने लगे कि तू हम को ऐसे२ काम कराने को लाया है कि जो पामर लोग करते हैं यह काम हमसे नहीं होता तेरे से बने सो तू कर। तब वह बिचारा आपही उठकर मूँज काटकर लाया और सब काम करके रस्सी ब-

टने लगा उस वक्त वह देवता उनके हाल को देखकर दिल में कुपित होकर उसके पास आया। और कहने लगा कि तू मुफ्त की मूंज काट-कर जेवड़ी बटता है सो इस का क्या करेगा उस वक्त वह शख्स बोला कि मैं जेवड़ी तेरे बांधने के वास्ते बटता हूं। इतना वचन सुन-कर उस देवता ने गुस्सा होकर उस के चार थप्पड़ मारे और क-हने लगा कि रे दुष्ट! पहिले तू अपने घर कों को तो बाँध पीछे मुझे बाँधियो क्योंकि देख तेरी स्त्री और पुत्र और पुत्रों की बहू तेरे वचन में न बंधी तो तू मुझ को क्या बाँधेगा? इस लिये तुम लोग जल्दी यहाँ से चले जाओ नहीं तो मैं सब को मार डालूँगा ऐसा कहकर अपना भयँकर रूप दिखाया, उससे डरकर वे लोग सब वहाँ से भागगये और अपने नगर में चले आये। फिर वे पहिले जो धनादिक था उसे खोयकर महादुःखको प्राप्त हुये। इसदृष्टान्त का मतलब तो खुलासा है परन्तु कि-ञ्चित भावार्थ कहता हूँ कि जहाँ सुमति के ० पाँच सात आदमी मि-लकर जो एक की आज्ञा में रहें तो पहिले साहूकार की तरह सुख की प्राप्ति हो और जो अपने २ हुक्म चलावें और किसी को बड़ा न मानें तो पिछले साहूकार की तरह दुःख को प्राप्त हों। इसी रीति से इस जैनमत में भी यती वा संवेगियों में गच्छादिक के भेद, अथवा बाईसटोला ढूंढि-यों में टोला आदिकों के भेद, तेरह पन्थी दिगम्बरी आदि ऐसे२ जुदे२ भेद होने से कोई किसी को नहीं मानते और अपना२ हुक्म चलाते हैं बल्कि गुरु चेलाभी आपस में मान बड़ाई ईर्षा अपनी २ खैंचातान क-रके केवल रागद्वेष पक्षपात को बढ़ाते हैं। कदाचित इस में कोई आत्मार्थी भी आवेतो उसकी भी कुछ कार्यसिद्धि नहीं हो केवल राग-द्वेष में ही लिपटजाय अस्तु प्रसंगागत हमको इतना कहना पड़ा ॥

शंका—इस तुम्हारे कहने से तो वर्त्तमान काल में, साधु साध्वी आत्मार्थी कोई नही दीखता है और भगवान का वचन तो यह है कि साधु साध्वी पंचम आरेके छेडले आर तक रहेंगे ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! हमारातोऐसाकहनानहींहैकि वर्त्तमान कालमें कोईसाधुसाध्वीनहींहै किन्तु आत्मार्थीतोथोडेहीहोंगे। उनमेंभी कोईएकदो मेरेदेखनेमेंभीगर्गवगुरांग्राम्नाये। परन्तु उनपुरुषोंकोआहारादि से अनेकतरहकेदुःखमेंदेखा और उनसेसुनाभीकि भाईइसजैनमतमेंऐसा कदाग्रहफैलरहाहैकि सिवायरागद्वेषपक्षपातदृष्टिरागके आत्मार्थियोंकोआ-त्माकाअर्थअर्थात्चारित्रपालनाकठिनहोगया। लाचारहोकरजैसाकुछब-नताहैतैसापालतेहैं ऐसाउनकीजबानसे सुननेमेंआया और मेरेभीइसबात काअनुभवबैठाहुआहैकि ३३कीसालमें मैंनेभीइसलिंगकोअंगीकाराकिया। सो दो वर्ष तक तो मेरे संग कम रहा परन्तु ३५ की साल से सिवाय जैनियों के औरों का संग कदापि किंचित्मात्र हुआहोगा, जिसमें तमा-म मारवाड और ढूंढाड, आगरा, मालवा, ग्वालियर आदि देशों में फिर-कर देखा तो पक्षपात रागद्वेष कदाग्रहही देखा शुद्धमार्ग की प्रवृत्तितो कहीं किसी गावडा में देखी हो तो न कहसकें सो मैंभी अपना घर छो-डकर आया हूँ मेरा वृत्तान्त तो "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में लिखचुका हूँ। लेकिन जिस इच्छा से घर छोड़ाथा सो मेरा काम न हुआ और मुफ्तमें मागकर टुकडा खाया, अपनेको उल्टा रागद्वेष में फसाया, घर छोडा और पूरा चारित्र हाथ न आया। इस बातका जो मुझको खेदहै सो मेरी आत्मा जानती है या ज्ञानी जानता है। कदाचित् कोई भोला जीव ऐसा सन्देह करे कि अभीके कालमें पंच महाव्रत पालना बडा क-ठिन है तो हम कहतेहैं कि पंच महाव्रत पालना तो कठिन नहीं है

परन्तु पक्षपात रागद्वेष से कठिन होगया। क्योंकि देखो जो किंचित् वैराग सेभी चारित्र लेतेहैं उनको प्राणातिपात अर्थात् जीवहनने का कोई ऐसा काम नहीं पड़ता, और झूठ बोलनेकाभी कोई कारण नहीं दीखता। और अदत्ता अर्थात् चोरी करनाभी नहीं होसक्ता क्योंकि चोरी वही करताहै जिसको किसी तरह की चाहना होतीहै। और मैथुन अर्थात् स्त्री सेवनकी भी इच्छा नहीं होतीहै क्योंकि किंचित् वैराग से अपना घर छोड़ा है। और परिग्रह रखनेका भी कोई काम नहीं क्योंकि आहार वस्त्रके सिवाय और किसीकी साधुको चाह नहीं। सो आहारवस्त्र आदि तोगृहस्थीलोग आदरपूर्वक देतेहैं। बल्कि पुस्तकपन्ना आदिकभी बहुत मिलते हैं क्योंकि श्रीसंघका घर बड़ाहै। इसलिये पँच महाव्रत पालना उनको, जिन्होंने वैरागसे घर छोड़ाहै, कठिन नहीं। लेकिन पक्षपात रागद्वेषने अथवा दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालों ने गृहस्थियों में दृष्टिराग करके कदाग्रह फैलादिया। इससे पंच महाव्रत पालना कठिन होगया। इसलिये मेरा यह कहना नहीं कि साधु साध्वी श्रावकश्राविका इस कालमें नहींहैं। हां अलबत्ता श्रीबूटेरायजी तो कहतेथे और मुंहपत्ती की चर्चा में लिखा भी है कि मेरे देखने में वा सुनने में भी नहीं आया कि जैनधर्मी किस देश में हैं। सो श्रीबूटेरायजी तो साधु साध्वी श्रावक श्राविका तो अलग रहें जिनधर्म कोही नहीं मानते हैं। बल्कि शायद इसी आशय से आत्मारामजीने भी लिखा है कि हम इस कालके जैनमातियों को बहुत नालायक समझते हैं। सो हम बूटेरायजीकी "मुंहपत्तीकी चर्चा" में से पाठ लिखते हैं—" इमजानीने कोई आत्मार्थीपुरुष मौनकरीने रहा होवेगा तो ज्ञानीजाने परन्तु प्रत्यक्ष मेरे देखनेमें तो आयानहीं, कोई होवेगातो ज्ञानीजाने। देखनेमें तो

घने मती आवे हैं तत्वतो केवली जाने जिम ज्ञानी कहे ते प्रमाण। फिर मैने बिचरकर मती तो मैंने घने देखे पिण कोई मती मेरे विचार में आमदा नथी तथा और क्षेत्रमें सुनाभी नथी जो फलाने देशमें जैन धर्मी बिचरें हैं केती दूर किस क्षेत्र में है " इसरीति से " मुहपत्तीकी चर्चा" में लिखा है जिसकी खुशी होय सो देखलो। अब इस झगडेको छोडकर श्रीवीतरागकी शुद्ध देशना देनेवाले पुरुषका वर्णन करते हैं कि किसरीतिका वैराग्यलेनेवाला और कितनी बातोंका अथवा शास्त्रोंका जानकार होय सो वीतरागकी यथावत् देशनादे उसका किंचित् स्वरूप लिखते हैं। प्रथम तो उस पुरुषके १२ प्रकृतिका क्षय हो क्योंकि अनन्तानुबन्धी अप्रत्याख्यानी प्रत्याख्यानी इन तीन चौकडियोंके क्षय अथवा उपशम होनेसे शुद्ध चारित्रकी प्राप्ति होती है। फिर वह पुरुष दान्त अर्थात् इंद्रियों का दमन करनेवाला हो और निर्लोभी हो अर्थात् ऐसा न करे कि जैसे वर्त्तमान काल में पजूसनोंमें कल्पसूत्रादिको पर रुपया बुलवातेहैं किन्तु व्याख्यान सुननेवालेसे आहारवस्त्रादिककीभी इच्छा न रक्खे इस कदर निलोभी हो। दूसरा निर्भय अर्थात् व्याख्यान देनेमें किसी तरहका किसीसे भय न करे, क्योंकि भयसेभी शुद्ध परूपना नहीं होतीहै इसलिये निर्भय होय। और वचनभी जिसका मुहसे स्पष्ट उच्चारण हो क्योंकि उसके मुहसे शुद्ध अर्थात् स्पष्ट वचन न निकले तो श्रोताकी समझमें नहीं आवे इसलिये स्पष्ट उच्चारण करनेवाला होय। और लिंगादि सोलहबातोंका जानकार होय क्योंकि " लिंगतिय वयतिय " इत्यादि शास्त्रोंमें कहाहै। तीन लिंग अर्थात् पुरुषलिंग, स्त्रीलिंग, नपुसकलिंग इनको जाने। तीन वचन अर्थात् एकवचन, द्विवचन, बहुवचन इनको जाने। तीन काल अर्थात् भूत, भविष्यत, और वर्त्तमान, ऐसेही तीनक्रिया को जाने कि यह किस

कालकी क्रिया है। उपनय अपनय आदि चारको जाने। उपनय उसको कहतेहैं कि जैसे किसीको उपमा देकर कहेकि इयंस्त्रीसुशीला अर्थात् यह स्त्री सुशीलहै। अपनय उसे कहतेहैं कि इयंस्त्रीदुःशीला अर्थात् यह स्त्री व्यभिचारिणीहै। उपनय अपनय इसको कहते हैं कि इयंस्त्री स्वरूपाकिन्तुदुःशीला अर्थात् यह स्त्री रूपवतीहै परन्तु व्यभिचारिणीहै। अब उपनय उपनय कहतेहैं इयंस्त्री सुशीलाच रूपवान् अर्थात् यह स्त्री सुशील और रूपवती है इत्यादि १६ वचन जानना। और वह सात प्रकारके सूत्रों काभी जानकार हो। सूत्र ये हैं—विधिसूत्र १ उद्यमसूत्र २ भयसूत्र ३ वर्णव सूत्र ४ उत्सर्गसूत्र ५ अपवादसूत्र ६ तदउभयसूत्र ७ इन सात प्रकारके सूत्रोंको किंचित् दर्शातेहैं। "संपत्तेभिस्कुकालंमि॥ असंभंतोअमुच्छिओइ-म्मेणकम्मजोगेणं॥ भत्तपाणंगविस्सए॥" ऐसा श्रीदशवैकालकके पांचवें अध्ययनमें कहाहै। इसको विधिसूत्र कहतेहैं। "दुमपत्तयपंडुमए॥ जहानिवडइरायगणाणअच्चएएवंमनुआणजीवियंसमय॥ गोयमामाएए"॥ इत्यादिक श्रीउत्तराध्ययनके दशवें अध्ययन में कहा है। इत्यादिकों को उद्यमसूत्र कहतेहैं। और नरकके विष मांस रुधिरादिक वर्णवसूत्र कहलातेहैं यथा उत्तराध्ययनेमृगापुत्रअध्ययनमां तथा सुयगडांगना नरक विभक्ति अध्ययनमां ते परमार्थ मांसादिक नथी पण भय सूत्र छे। "यत्तः नर एसुमंसरूहिएइ॥ वजंपासिद्धि मितेण॥ भयहेउइहरतेसि॥ विडम्बिय पावओनतयं॥" इत्यादिक भयसूत्र हैं। यथा "ऋद्धित्थमियसमिद्धा" इत्यादिक उव्ववाईज्ञाता धर्मकथा प्रमुखने विषे प्राये सूत्रछे। वली "इच्चेसिंछह्नजीवनकायाणंमेवंसयंदण्डसमारभेज्झा" इत्यादिक छ जीवनिकायनारत्तकप्रमुख आचारांगादिक सूत्रने विषे ते उत्सर्गसूत्र जाणवा। तथा छेदग्रंथ ते प्राये अपवादसूत्रछे अथवा "नयालभिज्झानिउणंसहा-

थंगुणहियवागुणओसमंवा ॥ इकोविपावाइविवभ्भकयंते विहरिभ्भकम्मे सुससभ्भमाणो" इत्यादिक अपवादसूत्र कहिये। जेम"अत्थज्ञाणाभावेस-म अहिआसियव्वओवाहि ॥ तप्भावमिओविहिया ॥ पडियारपवत्तणने-य" इत्यादिक अनेक प्रकारना स्वसमय परसमय निश्चय व्यवहार ज्ञान क्रियादिक नानाप्रकारना नय मतना प्रकाशक सूत्रना जेभेद तेअविवाद पणेके० जेमा झगडो न उठे एरीते स्वस्थानके अर्थथी जोडाय केहता जहांकातहां अर्थ लगावे परन्तु ऊपर लिखी वार्ताका जानकार गुरुकुल-वाससेयाहुआ होय कि जिसमें गुरुके पास रहकरके और उनसूत्रोंको विधिपूर्वक अर्थात् योग बहकरके बाचाहुआ होय सोभी शास्त्रमें क-हाहै कि दीक्षा लियेके बाद इतने वर्षकी परयाय हो तब सूत्र बाचे। सो इसका किञ्चित् भावार्थ श्रीयशविजयजी उपाध्यायजीका कियाहुआ १५० गाथाका जो स्तवन श्रीमहावीरस्वामीकाहै तिसकी छठी ढालमें कि जि-सकाअर्थ श्रीपद्मविजयगणिने कियाहै उसमें से अर्थ मात्र लिखताहूं जि-सकिसीकी इच्छा हो मो प्रकरणरत्नाकर के तीसरेभाग में देखलेना। उस जगह ऐसा लिखाहै कि तीनवर्षकी पर्याय का धणी साधुने कल्पे आचारप्रकल्पनामा अध्ययनभणवानें चारवर्षनीदीक्षावालाये सूयगडांगसूत्र भणावुं कल्पे एम पाच वर्षनाने दशाकल्पे व्यवहार अध्ययन भणवो क-ल्पे आठवर्ष पर्यायवाला ठाणांगसमवायांगभणे दशवर्षपर्यायवाला भग-वती सूत्रभणे अगियारवर्षनापर्यायवाला खुड्डियाविमाणप्रविभक्ति महाल्लिया-विमाणप्रविभक्ति अङ्गचूलियावगचूलिया अनेविवाहचूलियाभणेबारवर्षना पर्यायवाला अरुणोपपात, वरुणोपपात, गरुडोपपात, धरणोपपात, वैश्रमणोप-पात, अने वेलंधरोपपात भणे तेरवर्षनी पर्यायवाला उपस्थानश्रुत, समुट्ठाण-श्रुत, देवेन्द्रोपपात अने नागपरियावलिया अध्ययन भणे चउदवर्षनापर्या-

यवाला चारणभावना अध्ययन भणे । सोलहवर्षनापर्यायवाला वेदनीश-तक अध्ययन भणे। सत्रहवर्षना पर्यायवाला आसीविष अध्ययन भणे । अठारह वर्षना पर्यायवाला दृष्टिविषभावना नामा अध्ययन भणे । ओगणीसवर्षना पर्यायवाला सर्व सूत्रनावादीहोय इति व्यवहारदशमोद्देशके ॥ इस रीतिसे गुरुके पास रहकर शास्त्रोक्त रीति से जिन्होंने शास्त्र बांचा है वेहीपुरुष श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवकी यथावत् वाणीका प्रकाश करेंगे नतु अन्यरीति से ॥

शंका—आपने सूत्रोंका प्रमाण दिया सोतो ठीकहै परन्तु वर्त्तमान कालमें कितनेही विद्वान अर्थात् पंडितलोग ऐसा कहतेहैं कि जिसको सूत्रबांचनेका बोधहोय वह अवश्य बांचे क्योंकि दोतीन वर्षकी दीक्षा लेनेवालेको बोधहोय तो अवश्य शास्त्र बांचे उसमें कुछ हर्ज नहीं है ॥

समाधान—हेभोलेभाई ! दोतीन वर्षकी दीक्षा लियेहुएको भी बोध होजाय तो वह हरेक सूत्र बांचे ऐसा कहनेवाले पंडित नहीं किन्तु जिनाज्ञाके विराधकहैं । हांअलबत्ता ऐसेतो पंडित होंगे कि (प) नाम पापी (ड) नाम डाकी और (त) नाम तस्कर अर्थात् चोर । अब यहां कोई ऐसा कहै कि यह तो हंसीका अर्थ है सो नहीं किन्तु इन शब्दों का भावार्थ दिखाते हैं । वह पापी किस तरह हुआ कि श्रीभगवतने तो कहा कि इतने वर्षका दीक्षित तो फलाने सूत्रको पढ़े और वह पुरुष कहताहै कि २तथा३ वर्षकी दीक्षावालेको बोध हो तो हरेक सूत्रको बांचे यह उसका कहना उत्सूत्रहै । इसीवास्ते श्रीआनंदघनजी महाराज चौदवें श्रीअनन्तनाथजीके स्तवनमें कहतेहैं कि "पापनहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिसो ।" इसीरीतिसे डाकी कहतां बालकको खानेवाला है इस जगह कोई ऐसा कहै कि पंडित ने किस बालकको खाया तो

हम कहते हैं कि जब उसने श्रीभगवत-आज्ञा के विरुद्ध अर्थात् सूत्रविरुद्ध कहा तो उसने चारित्र अर्थात् संजमरूपी बालकको खाया इसलिये वह डाकीही है । और तस्कर चोरको कहतेहैं । ऐसा कहनेवाला जो पंडितहै सो चोरभी है क्योंकि एक तो जिनाज्ञा का चोर दूसरा गुरु–आज्ञाका चोर इसलिये इन दोनों के अर्थ को चुरानेसे ऐसा पंडित चोरही ठहरा । देखो संसारी चोरी करनेवाले हैं उनको तो शास्त्रों में इतना विरुद्ध न कहा परन्तु जो जिनाज्ञा अर्थात् सूत्रसे विरुद्ध कहनेवालेहैं उनको शास्त्रोंमें अनन्तसंसारी कहाहै क्योंकि वे निश्चयमें मृषावाद अर्थात् झूठ बोलते हैं । सो निश्चयसे झूठबोलनेवाला जो आलोयणा ले तौभी उसको आलोयणा शास्त्रसंयुक्त न होय । क्योंकि शास्त्रोंमें ऐसा कहाहै कि जो चौथा व्रत भागदेय वह आलोयण लेकर शुद्ध होजाय, परन्तु मृषावाद अर्थात् झूठबोलनेवाला शुद्ध न होय । इसलिये लोग पंडितका जो अर्थ जानतेहैं वैसातो नहीहै किन्तु हमने लिखाहै वैसा है । वह पंडित भोलेजीवों को बहकायकर संसारमें रुलानेवाला होगा नतु जिनाज्ञा संयुक्त पंडित । औरभी सुनो कि जिन-शास्त्रका बोध होना तो गुरुकुलवासकेही आधीनहै और कदाचित् कोई ऐसा समझे कि दोचार शास्त्र गुरुसे बाचकर फिर हम सर्वशास्त्रोंको लगायलें तो यह समझभी उनकी ठीक नहीं है । क्योंकि जिन-शास्त्रका रहस्य अपनी बुद्धि और शास्त्रके बाचनेसेही नहीं किन्तु गुरुसेही प्राप्त होगा ऐसा मेरा अनुभव है ॥ यहा जिन पुरुषों का ८४ चौबीसी नाम चलेगा ऐसे श्रीस्थूलभद्रजी महाराजका थोडासा वृत्तान्त लिखते हैं । श्रीस्थूलभद्रजी महाराज ने श्रीसंभूतविजय स्वामीजी के पासमें दीक्षाली और कुछ दिनके पीछे श्रीभद्रबाहु स्वामीजीके पासमें गये और उस जगह विद्याध्ययन किया और

ना ठीक है। इसलिये श्रद्धा रखकर जिनाज्ञा में चलनाही श्रेष्ठ है। आज्ञा के बिना संजमतपक्रियाकष्टआदि सब क्षारपर लीपना अर्थात् वृथा है। अब इस जगह नवीन प्राचीन आचार्योंका परिचयभी देते हैं। "एगोसाहु एगायसाहुणी सवउविसड्ढिवा आणाजुत्तोसंघो सेसो पुणअट्ठिसंघाओ" ऐसा सबोदसूत्रीमें लिखाहै कि एक साधु एक साध्वी एक श्रावक एक श्राविका ये चारों जो भगवत-आज्ञासंयुक्त हों तो इनहीको संघ कहना। (सेसो) क० सैंकड़ों वा हजारों साधुसाध्वी श्रावकश्राविका भगवानकी आज्ञामें नहीं तो हाड़ोंका समूहहै अथवा अट्ठि क० हाड़ोंसे कुछ प्रयोजन सिद्ध हो तो उन भगवान-आज्ञा-रहित साधुसाध्वी श्रावकश्राविका से कार्यसिद्धि हो। इसलिये श्रीआनन्दघनजी महाराजभी चौदहवें श्रीअनन्तनाथ भगवानके स्तवनकी पांचवीं गाथामें कहते हैं "देवगुरुधर्मनी शुद्ध कहो केमरहे ॥ केमरहे शुद्ध श्रद्धान आणो ॥ शुद्ध श्रद्धानविण सर्व किरिया करी॥ छारपर लीपनो तेहजाणो।" ऐसाही श्रीदेवचन्द्रजी कृत "विंशन्तिविहरमानजिनस्तवन" के बारवें श्रीचन्द्राननजिनकेस्तवन की पांचवीं गाथामें कहते हैं कि "आणासाध्यविनाक्रियारे, लोकेंमान्योरे धर्म ॥ दंसनज्ञानचरित्रनोंरे, मूलनजाणयोमर्मरे" ॥ ५ ॥ औरभी श्रीयश विजयजी महाराज कहतेहैं "भद्रबाहुगुरुवन्दनवचनए, आवश्यकमांलहिये ॥ आणाशुद्धमहाजणजानी, तेहनीसंगरहियेरे ॥ १० ॥" ऐसा श्री मन्दरस्वामीके स्तवनकी १०वीं ढाल साढेतीनसौ गाथाके स्तवनमें लिखा है। औरभी देखोकि श्रीअजितनाथजीके स्तवनमें कहाहै कि "श्रद्धाविन चरण ज्ञान, क्रियासबकरतअजान, जैननामकोधराय कहो कैसे कर तारे॥" इत्यादि अनेक जगह प्राचीन आचार्य आत्मार्थी कहगये हैं इसलिये श्रद्धापूर्वक जिनाज्ञा पालना ठीक है ॥

शंका— आपने ये शास्त्रोक्त बातें लिखी सो तो अभीके वक्तमें इस रीति से जोग ब्रहकर गुरुसेही सर्वशास्त्रवाचना नहीं दीखताहै। हा अलबत्ता कितनेही पुरुष४५ आगमका जोगतो वहतेहैं परन्तु दीक्षाके इतनेही वर्ष पीछे फलाना ग्रन्थ वाचना सो तो नहीं। और कितनेही पुरुष एक महीनाकाही अर्थात माडलीआवश्यक और दशवैकालकका जोगवहकर सर्वसूत्र वाचनेलगतेहैं और कितनेही जोगभी नहीं वहते और सर्व सूत्र वाचतेहैं। तो ऊपरलिखी रीतिसे भगवत-आज्ञा नहीं दीखतीहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! मैंतो इसबातको निश्चय नहीं कहसकू कि ये भगवत्-आज्ञामेंनहीं, इसबातको तो ज्ञानीही कहे। मैंनेतो पक्षपात रागद्वेष छोडकर शास्त्रोंमें लिखीहुई विधिका वर्णन किया। परन्तु ऊपर लिखी विधि नही होनेसे इतना अनुमानसिद्धहै कि शास्त्रविधिविनाही पक्षपात थापउथाप समाचारीभेद अपनी २ बुद्धिपडिताईको जताने, और अपनी २ बुद्धिसे शास्त्रोंके भिन्न २ अर्थको थापने, दूसरेके अर्थको उथापने और अपना स्वार्थ अथवा अपना वचन वा समाचारीकी सिद्धिके वास्ते आगम, प्रकरण, स्तवनासिज्झायआदि कुछभी हो उसका प्रमाण देकर उसको अंगीकार करते हैं। परन्तु अपने स्वार्थ वा वचन समाचारी में फर्क आवेतो उसी आगम प्रकरण वा स्तवनसिज्झायको नहीं मानते। इसीलिये जो हमने शास्त्रोंकी विधि लिखीहै उसके न होनेसे अथवा गुरुकुलवास विनाही इस जैननधर्ममें कलह कदाग्रह होरहाहै। इसीलिये श्रीयशविजयजी महाराजने सवासौ गाथाका श्रीमन्दिर स्वामीका स्तवन बनायाहै उसकी पहली ढालकी अर्थसमेत आठगाथा लिखतेहैं गाथा का अर्थ गुजरातीभाषामें था सो उसीके अनुसार खडीबोली में लिखतेहैं गाथा—"कुगुरुनी वासना पाशमा ॥ हरिणपरे जे पड्यालोकरे ॥ तेहने

शरण तुजविणनहीं ॥ टलवले बापडा फोकरे ॥ २ ॥ अर्थ— (कुगुरुनी वासनापाशमाँ) क० खोटे गुरुकी उपदेशरूपी वासना अर्थात् खोटी देशनारूपीफांस अर्थात् जालमें पड़ेहैं कौनकि लोक (हरिणपरे जे पड्यालोकरे) क० जैसे व्याध अर्थात् शिकारी हरिण अर्थात् मृगादिकों को फंसायकर पकड़ते हैं उसी रीतिसे कुगुरुकी देशना सुनकर लोक अर्थात् गृहस्थी फंसेहैं सो दृष्टिराग मोहमें अमूझेहुए रहतेहैं (तेहने शरण तुजविणनहीं) क० सो हे प्रभु ! तेरी सत्यदेशना अर्थात् सत्यउपदेशबिना उन दृष्टिरागी लोकोंको शरण नहीं क्योंकि जबतक तेरा सत्यउपदेश न परिणमेगा तबतक उनका फांसी अर्थात् जालसे छूटना न होगा इसलिये तेरी शरणके बिना वे बिचारे क्याकरें (टलवले बापडा फोकरे) क० सो हेप्रभु ! वे दृष्टिरागी गृहस्थी विचारे कष्टक्रिया आदिक करेंहैं सो फोगट अर्थात् मुफ्तमें कायाक्लेश कररहेहैं सो हेप्रभु ! फांस नाम इन कुगुरुकी जाल छूटे उन्हीं पुरुषोंकी क्रिया तेरी शरणकी जाननी

गाथा— ज्ञानदर्शनचरणगुणबिना ॥ जोकरावे कुलाचाररे ॥ लूटेतेणे जनदेखतां ॥ किहांकरे लोकपुकाररे ॥ ३ ॥ अर्थ— (ज्ञानदर्शनचरणगुणबिना) क० ज्ञानदर्शनचारित्रकरकेरहित जोकोई कुगुरु गृहस्थियोंसे, करातेहैंक्या (जेकरावेकुलाचाररे) क० जोकोई कुलका आचार बतायकर क्रिया करातेहैं सो उस क्रियासे क्रियाकरानेवाले क्या करातेहैं कि जिस रीतिसे चले उस रीतिसे चलो, परन्तु शुद्धअशुद्धका विचार न करे क्योंकि देखो (लूटेतेणे जन देखतां किहांकरे लोकपुकाररे) क० वे गुरु लोग उन गृहस्थियों अर्थात् भोले मनुष्योंको देखतेहुए लूटतेहैं कि जैसे सुनार लोगोंके सामने सोनेको चुराताहै इसरीतिसे वे कुगुरु भोले मनुष्योंको लूटरहे हैं । खोटी मनोकल्पना करके स्वार्थसिद्धिके वास्ते सूत्रों

का नामलेकर भोले जीवोंको लूटतेहुए इस तरहका अन्याय करतेहैं सो वे भोले जीव कहा जायकर पुकार करें क्योंकि हे प्रभु! आपतो अलग अर्थात् महाविदेह क्षेत्रमें विराजे हो। सो हे प्रभु! आपके बिना इन भोले जीवोंकी पुकार कौन सुने? इस कुलाचार पर श्रीचिदानन्दजी अपरनाम कपूरचन्दजीभी कहतेहैं— दोहा— मूरख कुल-आचारकू, जाणत धरम सदीव ॥ वस्तुस्वभाव धरमसुधि, कहत अनुभवीजीव ॥ ऐसेही कुमरविजय जी जिन्होंने "नवतत्व प्रश्नोत्तर" बनायाहै उसमें कहाहै—दोहा—भेषधारी को गुरु कहै, धनवन्ताको देव ॥ कुलाचारको धर्म्म कहै, यह मूरखकी टेव ॥ **गाथा**— जेह नवि भवतरया निरगुणी ॥ तारशे केणीपरे तेहरे ॥ एमअजाणया पडे फन्दमा पापबंधे रह्याजेहरे ॥ ४ ॥ **अर्थ**— (जेह नवि भवतरया तारसे केणीपरे तेहरे) क० जो कपटक्रिया करता है और भाव धर्म्म जिसके नहींहै तो वह पुरुष आपही निर्गुणी अर्थात् गुण करके रहितहै तो दूसरोंको क्योंकर गुणी करसके क्योंकि जो आप दरिद्री है वह कदापि दूसरों को लक्षपति नही बना सक्ता। इसीरीतिसे जो भेष लेकर भेषधारी धूर्त्तता अर्थात् कपट से वाह्यक्रिया करतेहैं वे आत्मसत्तारूप धनके दरिद्रीहैं क्योंकि जिनाज्ञासयुक्त आत्मधर्मको नहीं जानतेहैं इसलिये वे लोग किसीको नहीं तारसक्तेहैं तो वे क्याकरें (एम अजाणया पडे फन्दमा ॥ पापबंधेरह्या जेहरे) क०वे कुगुरु अजाण पुरुषोंको दृष्टिरागमें फसायकर अपने फन्दमें गेरतेहैं, सो वे भोले जीव फन्दमें फसेहुए केवल पापसमुदायमें पडेहैं उन पुरुषोंका आत्मवीर्य हुल्लास होयनहीं किन्तु कदाग्रहही करेंहैं ॥ **गाथा**— कामकुभादिक अधिकनुं ॥ धर्मनु को नवि मूलरे ॥ दोकडे कुगुरु ते दाखवे ॥ शुंथयु एह जगसूलरे ॥ ५ ॥ **अर्थ**—(कामकुभादिकअधिकनुं ॥ धर्म्मनुकोनविमूलरे) क० कामकलस

आदि शब्दसे चिन्तामणिरत्न कल्पवृक्ष इनसे तो संसारी मनोवांछित फल निकलताहै परन्तु मोक्षफल देनेमें इनकी सामर्थ नहीं और धर्मसे तो चिन्तामणिरत्न आदि मिलतेहैं और मोक्षभी मिलतीहै। इसलिये कल्प वृक्ष आदिसे अधिक अमोल वस्तु धर्म्महै। देखो श्रीआनन्दघनजी महाराजकी कीहुई बहोत्तरीमें ऐसा कहाहै—जोहरी मोलकरे लालनका मेरा लाल अमोला॥ जाकेपटतर कोईनहीं, उसका क्यामोला॥ निसदिन जोउं तारी वाटड़ी, घरेंआवोरेढोला॥२॥ इसलिये धर्मअमोलहै। सो (दोकडे कुगुरु ते दाखवे॥ शुंथयुंएहजगसूलरे) क० दोकड़े कहतां गुजरात में एक पैसेको और काठियावाड़में दोपैसेको, सो तिस धर्म रूपी अमोल वस्तु को कुगुरु पैसोंमें बेचतेहैं अर्थात् गृहस्थियोंको कहतेहैं कि पन्ने हाथमें लो और बोली बोलो अर्थात् दो तथा चार आना इस पर बोलो। इसरीतिसे कहतेहुए लोगोंका पाप गमातेहैं और यह कहतेहैं कि जो तुम धनआदि खर्चोगेतो शुद्ध होजावोगे। ऐसा जगतके विषय सूल थयो अर्थात् अन्धेको अन्धा चलावेहै॥ **गाथा**—अर्थनीदेशना जेदीए॥ ओलवे धर्मना ग्रंथरे॥ परमपदनो प्रगट चोरथी॥ तेहथी केम वहे पंथरे॥६॥ **अर्थ**—(अर्थनीदेशना जेदीए॥ओलवे धर्मनाग्रंथरे)क०अर्थ अर्थात् धनादि अथवा अच्छे२ वस्त्र पोथीपन्ना वा अच्छाआहारादिके वास्तेही देशना देते हैं और धर्म अर्थात् आत्मार्थ के जो ग्रंथ द्रव्यानुयोग अथवा दशवैकालकादि(ओलवे)क० शुद्ध परूपना न करे किन्तु चरित्र,ढाल, चौपाई और रासादि कुतूहल अथवा सभारंजन आदि करके अपना अर्थ अर्थात् आजीविका-करतेहैं। जैसे पुरोहित जिजमानको लडायकर अर्थात् रिझायकर अपने अर्थको सिद्ध करतेहैं इसी रीतिसे कुगुरु कररहेहैं। (परमपदनो प्रगट चोरथी॥ तेहथी केम वहेपंथरे) क० ते कुगुरु परमपद क० आत्मार्थ

अर्थात् मोक्षपदके प्रगटपणे चोरहैं। अब कहो ऐसे कुगुरुओंसे मोक्षमार्ग किस रीतिसे चले किन्तु न चले ॥ गाथा— विषयरसमागृही माचिया ॥ नाचिया कुगुरुमदपूरे॥ धूमधामे धमाधम चली॥ ज्ञानमारग रह्योदूरे।७। अर्थ— (विषये रसमा गृही माचिया ॥ कुगुरु मदपूरे) क० गृहस्थी लोगोंको तो इन्द्रीआदिकोंके विषयमें अनादिसे राचाहुआ अभ्यासहै क्योंकि देखो एकेन्द्रीसे लेकर पचेन्द्रीपर्यन्त जीव इन्द्रियोंके अभ्याससेही जन्ममरण करताहै सो उस जीव अर्थात् गृहस्थीको सुगुरुका उपदेश कानमें लगा नहीं किन्तु कुगुरुका लगा। मद में परिपूर्ण ऐसे कुगुरु धनपात्र अर्थात आहारपानी पुस्तकपन्ना 'धनादि खरचनेवाले दातारोंको मानादि देकर आप उत्कृष्टे बनकर ईर्षा करतेहुए। दोनों जनों को धर्म्मकी खटपटली क० धर्म्मकी इच्छातो गई परन्तु क्या चली (धूमधामे धमाधम चली ॥ ज्ञानमारग रह्यो दूरे।) कि उन्मार्ग चला। धूमधामक० धक्काधक्की तिस करके, धमाधमक०धींगामस्ती चली इसलिये शुद्ध क्रिया तो दूर रही और अशुद्ध क्रियाके करनेवाले आडम्बरको लियेहुए मोटाईसे आगे बढ़े केवल धींगानु क० जबर्दस्ती आपही गृहस्थियोंको प्रेरणा करके गावमें घुसती दफे विशेष करके सन्मुख बुलातेहैं और गाजावाजा करतेहैं और कहतेहैं कि तुमलोग विशेष करके पूजाप्रभावनादिकरो, कि जिससे धर्म्म अर्थात् जिनशासन की उन्नतिहोय। क्योंकि लोग देखेंगे कि प्रभावनादिक बटेगीतो लोग बहुत इकट्ठेहोंगे इसलिये तुम करो, धर्म्मकी शोभादीसे। अब धूम, धामे और धमाधम इन तीनों का भिन्न२ अर्थ लिखतेहैं-(धूम)क०कुमार्गका वचनहै कि जो अपना आपही यशका अर्थी होय उस जगह धर्म गया क्योंकि देखो साधुका मार्ग ऐसाहै कि किसी तरहकी उन्नतिकी इच्छा न करे सहजस्वभावेही जो किसी तर-

ह की उन्नति होय तो होजावो परन्तु उन्नति होनेमें हर्ष न लावे, किन्तु अपने स्वभावमें रमे इसलिये यहां धूम तें उन्मार्ग अर्थात् पासत्थाआदिकका पराक्रम जानना और (धामे)क० आडम्बरी लोगोंके दृष्टिरागी गृहस्थी जोकि उनके कहने मूजिब करनेवालेहैं उनका पराक्रम जानना तैसेही (धमाधम) क० उन दोनों की करणी जानना क्योंकि देखो इस श्लोकका भावार्थ यहां ठीक मिलताहै "उष्ट्रकाणांविवाहेषु गानंकुर्वन्तिगर्द्दभाः परस्परंप्रशंसन्ति अहोरूपमहोध्वनिः ॥ " आगे इसी गाथाका अर्थ जो गुजराती भाषामें बहुत सुगमहै वही लिखतेहैं "बलीशरीरनी शुश्रूषाराखे, शरीरनो मेल दूरकरें, शरीरलुंच्छे, सरस आहारकरे, नवकल्पीबिहारनकरे, श्रावक श्राविकानों घणोपरिचयकरे, श्रावककेघरें भणाववाजाय, श्रावकसाथे घणीमीठासीकरे, पोतानाआत्मानो अर्थतोसाधेजनहीं, भली चन्द्रवा बंधाय तिहां रहे, रेशमीवस्त्रोपेहरे, साबूएधोयावस्त्रपेहरे, हृष्टपुष्ट शरीर राखे, वस्त्रपात्रना दूषण धरे, गीतार्थनीआज्ञा न माने, अणजाणयो मार्ग चलावे, अणजाणयो कहे, मार्गेहिडतां अर्थात् रस्तेमें चलतेहुए बातकरे, गृहस्थसाथे घणी आलापसंलापकरे इत्यादिक एवीकरणी पोते साधुपणो पोतामांहेसर्द्दहे, अनेगृहस्थनेपण साधुपणुंसद्दहावे, दर्शननीनिंदाकरे, पोतापणु बखाणे, पोतानोआडम्बरचलाववो, गृहस्थपासेपण पोतानीभक्तिप्रमुखनो आडम्बरचलाववो इत्यादिक सर्वठामें १ धूम२ धाम ३ धमाधम ए त्रणबोल जाणवा ज्ञानादिकमार्ग पुस्तकादि कहे तेतो करवाजाणवामाटे वेगलोरह्यो भूठाबोलाज घणा छे

गाथा—कलहकारी कदाग्रहभरया ॥ थापताआपणाबोलरे ॥ जिन वचन अन्यथादाखवे ॥ आजतो बाजतांढोलरे ॥ ८ ॥ **अर्थ**—(कलह) क० क्लेशनाकरणार कदाग्रहकरी भरयाहुआ आपसमें माहोमाही एक

को एक अवरणावाद अर्थात परस्पर निन्दा करतेहुए अपने २ वचन को स्थापतेहैं और दूसरेके वचन को उठातेहैं इसरीतिसे (श्रीजिनवचन)क० श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचन को अन्यथाकरके दिखातेहैं अर्थात् विपरीत करके दिखातेहैं क्योंकि देखो इन कुगुरुओंके लडाईझगडोंमें श्रीजिनराजके वचनकी तो आत्मार्थीको खबर पडेनहीं क्योंकि इनकी भिन्न२ परूपना होनेसे श्रीवीतरागके वचनमें विषम्वाद आताहै। गाथा—केई निजदोपनें गोपवा ॥ रोपवा केई मतकन्दरे ॥ धर्मनीदेशना पालटे ॥ सत्य भापे नहीं मन्दरे ॥६॥ अर्थ—कितनेही अपने दोपको छिपाने के ताई कपटक्रिया करते हैं और उस अपने दोपको छिपानेके अर्थ अपवादमार्ग दिखातेहैं कि अभी पचमकालहै इसलिये वोसग्रहण और मनोवचन आदिकी प्रबलता नहींहै इसीलिये पचमकालमें साधुपणा पलेनहीं सो अपवादमार्गका नाम लेकर गृहस्थियोंके घरमें दो२ चार२ दफा आहार पानीआदि लेनेको जातेहैं और खूब सरस आहारादिक करतेहैं, खूब अच्छे२ रेशमी कपडे पहनतेहैं, शरीरको हृष्टपुष्ट करतेहैं, दिनभरमें दो२ तीन२ दफा खातेहैं इत्यादिक तरहसे अपने दृष्टिरागी श्रावकोंको छेद आदिग्रंथोंमें से अपवादमार्गको दिखाय२कर जालमें फसाये रखतेहैं। श्रीकल्पसूत्र दशवैकालक आदि सूत्रोंसे गृहस्थीके घरमें साधुको एक बारही आहारपानीके लिये जाना कल्पेहै नाकि चार२, कदाचित् कोई कारण आपड़े तो गिलान आदिक साधुके वास्ते दूसरी दफाजावे, नहीं तो कुछ काम नहीं। कदाचित् वे ऐसा कहेंकि एक दफाके आहार करनेसे शरीर की शक्ति कम होजातीहै क्योंकि वोसग्रहण नहींहै। तो हम कहतेहैं कि ऐसा कहनेवाले महाधूर्त्त जिनाज्ञाके विराधकहैं। क्योंकि देखो सैंकड़ों गृहस्थी अथवा अन्यमतवाले स्वामी सन्यासी वैरागी आदिक एकद-

फेही आहार करतेहैं सो उनका तो शरीर किसी रीतिसे थकता नहीं और मुझेभी अनुभव है कि एक दफा आहार करनेसे शक्ति नहीं घटती किन्तु आनन्दपूर्वक धर्मध्यान अच्छी तरहसे बनताहै । इसलिये दुःख-गर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालेही इन्द्रियों के विषयभोगनेके वास्तेही अपवादमार्गको मुख्य थापकर भोले जीवोंको बहकातेहैं, अपने वचन-रूपी मत थापनेके वास्ते सूत्रोंकी साक्षी दे२ कर अपवादमार्गको सिद्ध करतेहैं और भोले जीवोंको अपने दृष्टिरागरूपी जालमें फंसातेहैं । और कितनेहीएक प्रतिमाके नहीं माननेवाले लुंपकादि अपने मतरूप कन्दके स्थापनेके वास्ते धर्मकी जो असल देशनाहै उसको पलटकर दूसरी देशना देतेहैं । परन्तु जिससे जीवको धर्मकी प्राप्तिहो अर्थात् वह धर्ममें लगे वह दे-शना तो देतेनहीं इसरीतिसे (मन्द) क० मूर्खहैं सो कदापि सत्य बोलैंनहीं किन्तु झूंठही बोलैं । इसरीतिसे इस पहली ढालकी ८ गाथाका किंचित् भावार्थ लिखा । परन्तु दूसरी ढालमेंभी इसीरीतिसे कई गाथाओंमें वर्णन कियाहै सो ग्रंथ बढ़जानेके भयसे नहींलिखा । इसरीतिसे हमनेतो शा-स्त्रोक्त प्रमाण देकर लिखाहै सो भव्यजीव आत्मार्थी होय सो श्रीवीतरा-गकी आज्ञाको अंगीकार करके कल्याण करो नतु पक्षपात वा किसीकी निन्दासे यह लिखा है ॥

शंका—अजी व्याख्यानादितो आपभी देतेहो तो आपनेभी यह सब रीति की होगी । आपकोभी तो लोग साधु कहतेहैं ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! मैंलाचारहोकर व्याख्यान देताहूं क्यों कि अभीके वक्तमें हरेककोई दीक्षालेकर पाँच प्रतिक्रमण यादकर स्तवन सिज्झाय सीखकर गृहस्थियोंके सँग बैठकर उनको प्रतिक्रमण करादेता है और चौपाई चरित्र सीखकर उनको व्याख्यान सुनादेताहै अथवा चौ-

मासी और पजूसनका व्याख्यान सुनादेताहूँ इसलिये मेरेभी पीछे पडकर गृहस्थीलोग जबर्दस्ती व्याख्यान करातेहैं। तोभी अक्सरकरके दोतीन महीना चौमासेमें व्याख्यानदेताहूँ और हमेशा व्याख्यानदेनेका कमरखता हूँ इसलिये मुझसे गृहस्थीलोग नाराजभी रहते हैं और ऐसाभी कहतेहैं कि जोकोई यहा आताहै सो सब व्याख्यानदेतेहैं परन्तु येहीनहींदेते। ऐसी२ बातें सुनकरभी मेरा चित नही चाहताहै क्योंकि इस वक्तमें जो प्रवृत्ति चलरहीहै उसकाहालतो हम पीछे लिखआये हैं और मेरेसे उस प्रवृत्ति मूजिब व्याख्यान नही होता क्योंकि मेरे अन्तःकरणमें ऐसा निश्चय है कि किसीलोभसे वा भयसे वा पूजाके वास्ते वा लोगोंके लिये जो शास्त्र मेंसे भगवत्-वचनकी ऊचनीच परूपना अर्थात् कानामात्रभी ओछाअधिका कहे तो बहुलससारी होय। व्याख्यान नही देनेसे स्वमतके गृहस्थियोंका मेरे पास आनाजानाभी कम रहताहै इसलिये मुझको व्याख्यान देनाही पडताहै। परन्तु मैंने "श्रीदशवैकालक" और "आवश्यकजी" का जोगवहनेकी क्रिया करीहै सो उसमेंभी शास्त्रोक्तविधिसे उद्देसाआदि बांचानहीं किन्तु वर्त्तमानकी अपेक्षा मूजिब एकमहीनेका जोग श्री सुखसागरजी महाराजके पास करालियाहै इसलिये मैं दशवैकालकजी अक्सरकरके बाचताहू। हा अलबत्ता दो जगह "नन्दीजी" की तीनगाथामें से व्याख्यान दियाथा क्योंकि उसमें मतमतान्तरका खण्डनमण्डनहै इस वास्ते इन तीन गाथाके उपरान्त व्याख्यानदेनेकी इच्छा मेरी नहींहै और न मैंने दिया सो इसमेंभी व्याख्यानके दिनोंमें निवी और एकासना अक्सर करके करताथा। और रतलाममें लोगोंके पीछे पडनेसे "उत्तराध्ययनजी" के दो अध्ययन बाचेथे उसमेंभी कई आमल जोगविधिके मूजिब करतारहा। अलबत्ता अध्यात्मकल्पद्रुम अथवा और कोई अध्या-

त्सके प्रकरण आदि बांचताहूं और उन्हींके बांचनेकी इच्छाभी रहतीहै नतु आगमादि अविधिसे बांचना। लोग मुझे साधु कहतेहैं इसका हाल तो मैंने "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" केपांचवें प्रश्नके उत्तरमें लिखाहै इस लिये ग्रन्थ बढ़जानेके भयसे यहां न लिखा। हां जिनधर्म्मका लिंग मेरे पासहै इस लिंगसे इसभांडोपजीवी को साधु कहतेहों तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि अच्छेकी सोहबत होनेसे नीचकोभी लोग वहुत मान देते हैं। क्योंकि— दोहा— संगतके परतापसे, चढ्यो ईसके सीस। अरे मित्र मोहि जानदे, श्रीगंगाके बीच ॥. अर्थात् एक भंवरा और एक गुबरीला की आपसमें संगत होगई उस संगतके सबबसे गुबरीला अर्थात् गोबर का कीड़ा सूर्यविकासी कमलमें जाबैठा सो भंवरातो सूर्यास्त होनेके वक्त चलागया और गुबरीला उसी जगह रहगया। सूर्य अस्त होनेसे कमल बंद होगया। उस कमलको लेकर शिवजीके भक्तने महादेवके शिरपर चढ़ादिया सवेरेके वक्त महादेवजीके उतरेहुए पुष्प गंगाजीमें बहादिये। तब सूर्योदय होनेसे वह कमल फिर खिला औरवह भंवरा कीड़ाको लेने आया उस वक्त गुबरीले को न देखकर उसने यह दोहा कहाथा इसीरीतिसे श्रीजिनराज सर्वज्ञदेवके लिंगरूपी कमलमें बास होनेसे इस पतित, अधम, अभागे, निर्गुणी, भांडोपजीवीको गृहस्थीलोग साधु कहनेलगे तो कुछ आश्चर्य नहीं। अब इन कुल बखेडोंको छोड़कर हमको जो वर्णन करनाहै सोही करतेहैं कि ऊपरलिखी विधिमूजिब शास्त्र गुरु मुखसे बांचाहोय वही शुद्ध परूपना करेगा। फिर वह सत्पुरुष कैसा होय कि कारण, कार्य, साध्य, साधन, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा देखकर सभामें जो लोग बैठेहैं उनको जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट अर्थात् रोचक, भयानक, यथावत् श्रोता की पहचान करके जैसेकोतैसा लाभ करानेके वास्ते आत्माका स्वरूप

ओलखावे अर्थात् उसको बोध करावे और शुभ क्रियाका आदर कराय-कर शुभ क्रियाके फलका तिरस्कारकरावे इसरीतिका उपदेश देनेवाला श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको यथावत कहे सोही सुगुरु है नतु सभा-रंजन रोचक भयानक देशना देनेवाले ॥

॥ इति श्रीजैनाचार्यमुनि श्रीचिदानन्दस्वामी विरचिताया तृतीय प्रकाश समाप्तम् ॥

चतुर्थप्रकाश ।

अब कारणकार्यकी ओलखान करानेके वास्ते कारण की जगह कारण और कार्यकी जगह कार्य यथावत् दिखातेहैं । श्रीगणधर महा-राजने द्वादशांगी रचीथी उसमें उन्होंने चारों अनुयोग शामिल रचेथे सो उस गणधर-रचित्त द्वादशांगीके एक एक पदमें चार २ अनुयोग अर्थात १द्रव्यानुयोग २गणितानुयोग ३धर्मकथानुयोग ४चरणकरणानुयोग थे । इन चार अनुयोगोंकी व्याख्या एक पदमेंही शामिलथी परन्तु पडता काल जानकर व जीवोंकी बुद्धिक्षीण जानकर पीछे आचार्योंने भव्यजीवोंके उप-कारके वास्ते चारों अनुयोगोंको पृथक्२ किये । देखो द्रव्यानुयोगमें तो सूयगडागजी अनुयोगद्वारादि ग्रंथहैं । और गणितानुयोगमें कर्मग्रंथ सग्र-हणीआदिक हैं । और धर्मकथानुयोगमें ज्ञाताधर्मकथा आदिक ग्रंथहैं । चरणकरणानुयोगमें श्रीदशवैकालकजी आचारंगजीआदि ग्रथहैं । इन चारों अनुयोगोंमें कारण कौन और कार्य कौन है सो जानना चाहिये क्योंकि जबतक कारणकार्यको न जानेगा तबतक उसमें यथावत् प्रवृत्ति न होगी । वस्तुका यथावत् स्वरूप जाननेहीसे बतलानेवाले पर यथावत विश्वास होताहै । जबतक वस्तुको यथावत् नहीं जाने तबतक उसको कै-

साही भलाबुरा कहो उसके जाने बिना कदापि विश्वास नहीं होगा। इ-
सवास्ते वस्तुको जानकर विश्वास दृढ़ करनेके लिये दृष्टान्त दिखातेहैं। एक
नगरमें बहुतद्रव्यपात्र क्रोडिध्वज सेठथा जिसके दिशावरों में जगह २ बणज
ब्योपार था और गुमाश्ते सब जगह काम करतेथे। उस साहूकारके एक
पुत्रथा वह बालकपनेमेंही लाड़से बिगड़गया, खेल, कूद, नाचतमाशे में
लगारहता, कुछ अपने घरका कारव्योहार नहीं देखता। उस साहूकारने
उस लड़केकी शादीभी बड़े ठाठसे कीथी। उसको वह साहूकार बहुत
समझाताथा परन्तु वह अपने महाजनी कारव्योहारमें कुछभी न समझ-
ताथा और न उस व्योपारमें कुछ मनलगाता तब उसके पिताने दिक्क हो-
कर कहना सुनना छोड़दिया। कुछ दिनके बाद जब उस साहूकारका
अन्त समय आया उस वक्त उस पुत्रको एकान्तमें लेबैठा और एक डिब्बी
में बढ़िया२ कपड़ा लगायकर चार झूंठे रत्न अर्थात् काचके टुकड़े धरकर
अपने पुत्रसे कहनेलगा कि हेपुत्र तूने मेरा कहना आजतक न माना और
कुछ बणजब्योपार न सीखा सो देख मेरे मरनेके बाद ये मुनीम गुमाश्ता
ही सब धन खाजावेंगे, धन नहीं रहनेसे तू महा दुःखी होगा, इसलिये
मुझे तेरा तर्स आताहै सो तू मेरा कहना करेगा तो फिरभी संभल जाय-
गा। इसलिये देख मैं तुझ को ये चार रत्न देताहूं सो तू अपने पास यत्न
से रखियो और किसीको मत दिखाइयो। जब तेरे ऊपर अत्यन्त भीड़
पड़े तब एक रत्न बेचकर अपना निर्वाह करियो। सोभी मेरा इतना कहना
है कि जो तू मुनीम गुमाश्ते अथवा और किसीको दिखावेगा तो झूंठा
रत्न अर्थात् काचका टुकड़ा कहकर तेरेको बहकाय देंगे और एक पैसा
न देंगे इसलिये मेरे कहनेको यादरखकर अपने मामाके पास जायकर
इन रत्नोंको दिखावेगा तो वह तेरे संगमें छलकपट न करेगा और तेरे-

को दो चार महीना पास रखकर इनको विकवाय देगा इसलिये तू मेरे वचनको याद रक्खेगा तो सुख पावेगा नही तो तू जानै। ऐसी शिक्षा देकर वह डिब्बी उसे देदी और उसने उस डिब्बी को अपने घरमें यत्न से रखदी। वह साहूकारभी अपनी आयु पूर्ण करके परलोकको प्राप्त हुआ। उस साहूकारके मुनीम और गुमाश्ता आदिक ने उस लडकेको होशियार न जानकर अपना २ काबू करना शुरू किया। थोडेसेही दिनमें वे गुमाश्तालोग लक्षपति बनबैठे और उस साहूकारका काम विगाडदिया। वह साहूकारका लड़का व्योपार के न समझनेसे रोटियोंको मोहताज होगया और अपने दिलमें विचारनेलगा कि जो मेरा पिता कहगयाथा सोही हाल हुआ जो अब इनको वे रत्न दूंगा तो ये मेरे रत्न खाजावेंगे इसलिये इनको तो नदेना चाहिये परन्तु मामाके पास चलकर इन रत्नोंको बेचलाऊं जिससे मेरा गुजरहो, और कोई उपाय नहीं। तब वह अपने घरसे चलकर अपने मामाके घर पहुचा और अपना सब हाल कहकर वह डिब्बी खोली और चारों रत्न दिखाये तब वह उन रत्नोंको देखकर अपने जी में कहनेलगा कि ये तो खोटे अर्थात् काचके टुकडेहैं जो मैं इससे कहूं कि ये काचके टुकडेहैं तब तो जो बात इसके पिताने समझाई वैसीही समझकर मुझकोभी सबके समान जानेगा इसलिये इसका ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे यह अपने आपहीं जानजाय कि ये खोटे हैं। ऐसे अपने दिलमें विचारकर उससे कहने लगा कि हे भानेज! इन रत्नोंका अभी तो कोई ग्राहक नहीं और बिना ग्राहकके इनके दाम ठीक ठीक बंटें नहीं इसलिये जो तू इस जगह कुछ दिन रहे तो ये रत्न तेरे सामनेही बिकवादूगा। तब वह कहनेलगा कि मेरे घरमें तो धानभी नहीं मेरा रहना यहा कैसे बने? तब वह कहनेलगा कि घरका तो बन्दोबस्त

मैं करताहूं परन्तु तू इसी जगह रह और दूकान पर बैठा कर क्योंकि परदेशी ग्राहक न जाने किस वक्तमें आजावे, जो तू दूकानपर नहीं होगा तो लेनेवाला कुछ बैठा न रहेगा इसलिये तू यहीं रह । तब उसनेभी यह बात मंजर करली । तब उसनें वहडिब्बी बन्दकर उसके हाथमें दी और घरलेजाकर उसको एक मालिया तालाकुंजी-वाला बतादिया उसमें वह रहनेलगा और दूकानपर जानेलगा । ब्योपारबणज जैसा उसका मामा चलाताथा वैसाही वहभी करनेलगा सो थोड़ेसेही दिनमें हीरापन्ना वगैरा जवाहिरातकी अच्छी तरहसे परीक्षा करने लगा और जवाहिरातके परखनेमें होशियार होगया । तब उसका मामाभी उसकी सलाहसे जवाहिरात लेनेबेचने का काम करनेलगा । एक दिन उसके मामाने एक हीरा मोललिया और उसे दिखाया । उसने उस हीरेको देखकर कहाकि मामाजी इसमें तो एक दागहै, नहींतो जितने में आपने लियाहै उससे बीसगुने दाम मिलते । दोचार दिनके बाद वह कहनेलगा कि हे भानेज ! आज मैंने सुनाहै कि फलानी जगह एक ब्योपारी अच्छे२ बढ़िया रत्न लेनेको आयाहै सो तूभी अपने रत्नोंको जुदी२ डिब्बीमें रखकर लेआ और ये तीन डिब्बियां लेजा । वह मकान परगया और अपनी डिब्बीको खोलकर देखा तो वे काचके टुकड़े निकले । उनको देखकर विचारने लगा कि मेरे पिताने यह क्या कामकिया परन्तु फिर बुद्धि उपजी कि मेरे पिताने मुझे संभारनेके वास्ते यह काम कियाथा । इतना विचारकर उन रत्नोंकी डिबिया लियेबिना अपनी दूकानपर चलाआया और मामाको कहा कि वे काचके टुकड़ेथे । मेरे पिताने आपकी भलामण दीथी सो उनकी भलामणसे और आपकी सोहबतसे अब मुझको ब्योपार करना आगया इससे मैं दुःख न पाऊंगा और

अपनी इज्जत मूजिब फिर अपने घरका कारव्योहार सभारलूगा। कुछ दिनके बाद वह अपने घरको चला आया और अपना वणजव्योपार करके बापकासा काम चलानेलगा। जैसे उस लडकेको उसके मामाने जवा हिरातकी परीक्षा सिखाई इसीरीति से श्रीवीतराग-आज्ञासयुक्त सिद्धान्त के रहस्य जाननेवालेभी पेश्तर भव्यजीवोंको कारणकार्यकी परीक्षा सिखातेहैं अर्थात् जानकार करदेतेहैं जब वह भव्य जीव इस कारणकार्यका जानकार होगा तब वह यथावत प्रवृत्ति भी करेगा। तोभी यथावत् प्रवृत्ति तब होगी कि जब लाभ अलाभको जानेगा। इसलिये जो उपदेशदाताहैं वे कार्य बतायकर लाभ अलाभके वास्ते पदार्थमें ग्लानिवारुचि दोनोंको दिखातेहैं तब भव्य जीव उसमें हर्षसहित उद्यम बरावर करते हैं। इसलिये श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव के स्याद्वाद अनेकान्त मतके जाननेवाले हैं सो पेश्तर तो कारणकार्यकी परीक्षा फिर पदार्थ में ग्लानिवारुचि दिखातेहैं क्योंकि जिस वस्तुमें ग्लानि होजातीहै वह तुरन्तही छूटजातीहै। एक शहरमें एक बडाभारी साहूकारथा उसका नाम लक्ष्मीसागर था उसके एक पुत्रथा सोभी वणजव्योपार बोलचाल अर्थात् समारी वातोंमें बहुत होशियारथा परन्तु उसमें वेश्यागमन करनेका बडा भारी ऐबथा उसमें हजारों लाखोंही रुपया खर्च करताथा। उसका ऐब छुडानेके वास्ते उसके पिताने परोक्ष अनेक तरहकी कोशिश की परन्तु उसका ऐब नछूटा। तब उस सेठने विचारा कि इसके वास्ते रोजीना खर्चे देकर उजागर भेजनाही ठीकहै क्योंकि दुबकाचोरी जानेसे बहुत रुपया खर्चा पडताहै। और इसके शौकमें इसको ग्लानि पहुचानेका उपायभी करना मुनासिब है। जब इसको उसमें ग्लानि होगी तो यह आपही छोडदेगा। ऐसा विचारकर अपने पुत्रको कहनेलगा कि हे पुत्र चार घडी दिन रहाकरे

तब सैर करनेको चले जायाकरो और पहर डेढ़पहर राततक सैरकरके अपने घर आजायाकरो और जो तुमको रुपया चाहिये सो रोकड़ियासे लेजायाकरो। इसरीतिसे उसको समझायकर उसको ग्लानि उपजानेका उपाय सोचनेलगा। शामके वक्त चार घड़ी दिन रहतेही वह अपने पुत्रको कहै कि तुम्हारा सैर करनेका वक्त आगया और यह काम तो पीछे होजायगा। इसरीतिसे दोचार मास हुए तो वह साहूकारका पुत्र भय छोड़कर अच्छी तरहसे वेश्याओंके पास जानेलगा क्योंकि पेश्तर तो पिताका भयथा अब सोभी न रहा। चन्दरोजके बाद एक दिन उसका पिता कहनेलगा कि आज शामके वक्तमें दूकानपर कुछ काम विशेषहै इसलिये आज मतजाओ इसके बदलेमें सवेरे के वक्त सैर करआना। इतना सुनकर वह साहूकारका बेटा न गया। तब उस साहूकारने पीलेबादल अपने पुत्रको उठाया और कहनेलगा कि हे पुत्र तू शामको सैर करने नहींगया सोअब उठ और सैर करआ। तब वह उठा और पिताके कहनेसे सैर करनेको घरसे निकला और जिन२ वेश्याओंके पास जाकर शामको उनका रूप देखकर मोहित होताथा उनको सोतीहुई देखकर ग्लानि आनेलगी क्योंकि उन वेश्याओंके केश तो बिखरे हुए थे और आखोंमें गीड़ आरहेथे, मुंह काजलसे काला होगयाथा और रातको पान खानेसे होठोंपर फेफड़ी आरहीथी और बुरे मैलेसे कपड़े पहने डांकनकी तरह सोरहीथीं। उनको देखकर उसके चित्तमें ग्लानि आई और कहनेलगा हाय! हाय! इन चुड़ेलोंके पास लाखोंरुपयोंका नुकसान मैंने किया। ऐसा चित्तमें उदासहोकर अपने घरको चलाआया और उस वक्त अपनी औरतको देखातो हूबहू रंभाके मानिन्द मालूम पड़ने लगी। तब उधरसे तो ग्लानि और इधर घरकी स्त्रीमें रुचि होनेसे सन्तोष

कर बैठा। और दिलमें ऐसा ठानलिया कि अब कभी उन वेश्याओंके पास नहीं जाऊगा। फिर जब शामका वक्त हुआ तब उसका पिता कहनेलगा कि हे पुत्र! अब तेरा सैरका वक्त होगया सो तू जा। उस वक्त सुनकर चुप होगया। फिर थोडीसी देरके बाद वह सेठ कहनेलगा कि हे पुत्र! तू बेशक जा अपने घरमें धन बहुतहै तू किसी बातकी चिन्ता मतकर अपनी सैरको मतछोड। तब वह पुत्र कहनेलगा कि हे पिताजी! उस जगह जानेसे मुझे ग्लानि होगई सो मैं उस जगह कदापि न जाऊगा इसलिये आप अब न कहिये, इस कहनेसे मुझे लज्जा उत्पन्न होतीहै। इसरीतिसे कहकर वह साहूकारका पुत्र उस वेश्यागमन रूप ऐबको छोड कर अपने घरमें संतोषसे बैठगया। इसीरीतिसे श्रीसर्वज्ञदेव वीतरागके आगमोंके वेत्ता अर्थात् जाननेवाले आचार्य उपाध्याय साधुभी गृहस्थीको कारणकार्य बतायकर फिर उसमें ग्लानिसे लाभअलाभदिखायकर जिज्ञासुका कल्याण करतेहैं नतु जबर्दस्ती करके त्याग पचक्खाण कराकर॥

अब हम कारणका स्वरूप कहतेहैं कि शास्त्रमें चार अनुयोग कहेहैं इन चारों अनुयोगोंमें कारण कौनहै और कार्य कौनहै सोही दिखातेहैं। पेश्तर कारण कितनेहैं सो शास्त्रमें कारण चार कहेहे १समवायी कारण २ असमवायीकारण ३ निमित्तकारण और ४ अपेक्षाकारण और किसी जगह अपेक्षाकारण के विना तीनही कारण मानेहैं यथा आप्तमीमांसाया "समवाय असमवाय निमित्त भेदात्।" और कितनेही शास्त्रोंमें दोही कारण कहेहैं १उपादानकारण २निमित्तकारण। इसरीतिसे शास्त्रोंमें कारण कहे हैं परन्तु उपदेशदाता जैसा जिज्ञासु देखे वैसेही कारणोंको समझाय कर बोधकरावे अर्थात मन्दमतिको चार कारण बतायकर बोध करावे और उससे तेज हो उसको तीन और उससेभी तेज बुद्धिवाला हो उसे

दोही कारण बताकर बोधकरावे । समवायी कारण उसको कहतेहैं कि जैसे मिट्टीका घट बनताहै तो मिट्टीतो उसमें समवायी कारणहै क्योंकि मिट्टीमेंसे घट उत्पन्न होताहै और महाभाष्यमें कहाहै कि "तदवकारणतं तवोपडस्सेहजेणतम्मइया ॥ विवरीयमन्नकारण मित्थंवोमादओतस्स" ॥ इस गाथाके व्याख्यानमें "यदात्मकंकार्यंदृश्यतेतदिहतद्रव्यकारणं उपादानकारणंयथातंतवःपटस्यइति" अब असमवायी कारणका लक्षण कहतेहैंकि दो कपालोंका संयोग अथवा तन्तुओंके पटसे संयोग सो असमवायी कारणहै । इसके कहनेका प्रयोजन यहहै कि समवायी कारणमें रहकर कार्यको उत्पन्न करे उसका नाम असमवायी है । जैसे घटका असमवायी कारण कपाल आदिहै । और कपालोंके संयोगकोही असमवायी कारण कहतेहैं । अब निमित्त कारणका लक्षण कहतेहैं कि समवायी और असमवायी कारणसे भिन्न अर्थात् जुदाहो और कार्यको उत्पन्न करे जैसे मिट्टी घटका समवायी कारणहै और मिट्टीसे भिन्न डंड चक्रादि जुदेहैं परन्तु उनकेबिना घट बन नहींसक्ता इसलिये ये निमित्त कारणहैं । अब अपेक्षा कारण का लक्षण कहतेहैं काल आकाशादि अपेक्षा कारणहैं क्योंकि आकाश पोला नहीं होने से वस्तु आदि रहनहीं सक्ती इसलिये यह अपेक्षा कारण जरूरहै और जो अपेक्षाको छोड़कर तीनही मानेंतो हम पहिले अर्थ लिखचुकेहैं औरजो इन तीनोंमें असाधारण कारण नहीं मानें तो दोही कारणोंमें सब कारण समाजातेहैं क्योंकि समवायी कारणकोही उपादान कारण कहतेहैं इनदोनों शब्दोंका एकही अर्थहै । सो असाधारणकारण उपादानकारणकेही अन्तर्गतहै और निमित्तकारणके दोभेद करनेसे अपेक्षा कारणको जुदा लेतेहैं परन्तु अपेक्षाकारणभी निमित्त कारणके अंतर्गतहै । अब उपादान और निमित्त कारणका लक्षण दूसरी

रीतिसेभी कहते हैं। "कारण कार्यको उत्पन्न करे और वह कारण अपने स्वरूपसे कार्यमें बना रहे और कारणके नष्ट होनेसे कार्य नष्ट हो जाय उसका नाम उपादान कारणहै"। दूसरा "कार्यसे कारण भिन्न होकर कार्यको उत्पन्न करे और कारणके नष्ट होनेसे कार्य नष्ट न हो उसे निमित्त कारण कहते हैं।" अब चार अनुयोगोंमें से कारण कौनहै और कार्य कौनहैं ? इस जगह चारित्ररूपी कार्यहैं तो चरणकरणानुयोग तो कार्य ठहरा। यह कार्य बनानेके वास्ते कारणभी अवश्यमेव चाहिये सो हम कार्य दिखातेहैं कि चार कारण मानकर कार्य-सिद्ध करे उस जगह तो समवायी कारण द्रव्यानुयोग है। क्योंकि देखो द्रव्यको जानेगा तो द्रव्यका जो गुण वही चारित्र अर्थात् रमणतारूप कार्य होगा तो द्रव्यानुयोग इसका समवायी कारण हुआ। तो कहतेहैं कि एक जीवद्रव्यभी द्रव्यानुयोगमें द्रव्यहै इसलिये चारित्रका समवायी कारण हुआ। अब दूसरा असमवायी कारण गणितानुयोग अर्थात् कर्मप्रकृति यह असाधारण कारण है क्योंकि यह कर्म प्रकृति जीव के सम्बन्धसे जीवमेंही रहनेवालीहै। तीसरा धर्मकथानुयोग निमित्त कारण है क्योंकि देखो धर्मादिकको श्रवण करनेहीसे चारित्रमें रुचि होतीहै क्योंकि दूसरोंके धर्मको अलाभ जानकर छोड़ेगा और क्रिया आदिक करेगा यह निमित्त कारणहै। इस जगह काल स्वभाव आदि पाच समवाय अपेक्षा कारणहैं क्योंकि जबतक ये पाच समवाय न मिलें तबतकभी कार्य नहीं होताहै। जबतक इन कारण आदिकों को न समझे तबतक यथावत् चारित्र पालना कठिनही है॥

शंका— अजी मोक्षके मिलने और जन्ममरणके मिटनेको कार्य कहतेहैं और तुमने तो चारित्रही कार्य ठहराया, इसका कारण क्याहै ?॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! अभी तूनें श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके स्याद्वादमतकी परूपना करनेवाले गुरुसे प्रायःकरके परिचय नहीं पाया दीखेहै। जो इस जगह चारित्रको कार्य ठहराया उसका प्रयोजनभी तुझे न मालूम हुआ क्योंकि तूने पक्षपात कदाग्रह समाचारीकेही ग्रंथ श्रवण कियेहैं नतु स्याद्वाद रीति के। इसलिये हेभोलेभाई ! हमारे अभिप्रायको समझ और कुछ द्रव्यानुयोगका परिचय कर जिससे तुझको इन बातों का बोध हो । देख जो कार्य होताहै सोही कारण होजाताहै तो जब मोक्षमार्गका साध्यसाधन होगा उस वक्तमें चारित्र और ज्ञानदर्शन तो उपादानकारण होंगे और कालस्वभावआदि निमित्तकारण मिलेगा अ-थवा चारित्र समवायीकारण और ज्ञानदर्शन असाधारणकारण और गुरु आदिक निमित्तकारण और कालस्वभावआदि अपेक्षाकारणहैं । अथवा चारित्र ज्ञान दर्शन उपादानकारण और काल स्वाभावआदि निमित्तका-रणहैं । इस रीतिसे जो द्रव्यानुयोगका अनुभव अर्थात् षटद्रव्यका विचार करनेवालेहैं वेही पुरुष इन कारणकार्योंको अनेकरीतिसे समझाय सक्तेहैं नतु भेष लेकर पंडितोंकी सहायतासे न्याय व्याकरण अथवा जैन शास्त्रोंको बांचकर पंडित बनजानेसे । क्योंकि देखो मेहका बरसना तो नदीके पूर होनेका कारणहै और पूर होना कार्यहुआ। अब जब नदी बहनेलगी तब बहना कार्य हुआ और पूर होना जो पेश्तर कार्य था सो नदीके बहनेका कारण हुआ। अब फिरभी नदीका बहना जो कार्यथा सोही खेतोंमें वा मनुष्योंको सहायता देनेका कारण होगया और सहा-यतारूप कार्य्य हुआ। इसीरीतिसे मिट्टीका पिंड, स्थासरूप कार्यका का-रणहै, और वह जो स्थासरूप कार्य था सो कोशका कारण हुआ, और कोश कार्यहुआ और कोश कुशलका कारण हुआ, और कुशल कार्य

हुआ और कुशल कपालका कारण और कपाल कार्य, कपाल कारण और घट कार्य। इसरीतिसे कार्य जो है सोही कारण होजाताहै और दूसरे कार्यको उत्पन्न करताहै। सो इस जगहभी चारित्र रूप कार्य भगवत-आज्ञा-सयुक्त मोक्षका कारणहै सो विशेष करके प्रश्नोत्तर समेत "द्रव्यअनुभवरत्न" जो एक जिज्ञासुको विशेष बोध करानेके वास्ते बनायाहै उसको देखने से तुम्हारा सब सदेह दूर होजायगा इसलिये इस ग्रन्थमें विशेष वर्णन नहीं लिखा। क्योंकि हमको इस ग्रन्थमें आत्मार्थीके वास्ते जिनोक्त विधिका वर्णन करनाहै और इस कारणकार्य अर्थात् द्रव्यानुयोग की व्याख्यामें सूक्ष्म विचारहै सो वह हरेक जिज्ञासुकी समझमें आना कठिनहै। और सूक्ष्म विचार लिखनेसे उसके समझानेवाले आत्मार्थीतो थोडे और वाद विवाद अथवा पडिताई जतानेवाले बहुतहैं। क्योंकि देखो इस पचम कालको बतायकर शरीरको तो कुछ जोर देते नहीं केवल इन्द्रियोंका भोग करतेहुए निश्चयको पकड बैठतेहैं। सोभी निश्चयको समझते तो नहीं हैं, केवल निश्चयको पकडनेसे ज्ञानी बनकर भोलेजीवोंको भ्रमजालमें फसायकर, व्यवहारसे उठायकर, अपने मतको चलायकर, पुरुषार्थ को मिटायकर, इन्द्रीविषयभोगोंमें लगायकर, त्यागभग करायकर, ससार में रुलातेहैं। सो इस निश्चय व्यवहारके मध्येऊपर लिखेहुए ग्रथमें विस्तार करके लिखाहै परन्तु किंचित् यहाभी लिखतेहैं कि निश्चय कुछ पदार्थ नहीं केवल शब्दहै ॥

शंका— अजी निश्चयको तुम कुछ नहीं ठहरातेहो परन्तु शास्त्रोंमें निश्चयकोही बहुतकरके कहाहै। जबतक निश्चय नहीं हो तब तक कोई काम न हो, व्यवहार तो केवल बालजीवोंके दिखानेके वास्तेहै। क्योंकि देखो श्रीयशविजयजी उपाध्यायजीने सवासौ गाथाके स्तवनमें निश्चयही

निश्चयको बयान कियाहै; व्यवहार तो बालजीवोंके बहलानेके वास्तेहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! अभी तुझको जिनागमके रहस्यकी खबर न पड़ी और तू निश्चयव्यवहारको अभी समझता नहींहै और तेरे कहनेसे हमको ऐसाभी मालूम हुआकि तुझको निश्चय व्यवहारके कहने वाले गुरु न मिले इसलिये तेरेको यह शँका हुई तो अब सुन। निश्चय कुछ पदार्थ नहींहै। निश्चय एक शब्दहै सो इसका अर्थ ऐसाहै कि निश्चय नाम "नियामक" का अर्थात् नियमा करके, तो इससे क्या तात्पर्य निकला कि जैसे किसी पुरुषने कोई काम किया तब उससे दूसरा पुरुष पूछनेलगा कि तुमने फलाना कामकिया ? वह कहनेलगा कि मैंने करलिया। तब पूछनेवाले पुरुषको सन्देह उठा और बोला कि अरेभाई निश्चय काम कियाहै कि केवल हमको बहकातेहो ? करलियाहो तो निश्चय कहदो। यहां निश्चय शब्द सन्देहको दूर करनेवाला ठहरा। दूसरा औरभी लौकिक व्यवहार दिखातेहैं। लौकिकमें किसीका कोई काम करनाहो तो कामके करनेवाला शख्स कहताहै कि तुम मेरी तरफसे निश्चय रक्खो मैं तुम्हारा काम करूंगा कोई फिकर मतकरो। इस जगहभी विचार करो कि जिसका काम होनेवाला था वह इस निश्चय शब्दको सुनकर उस कामकी चिन्तासे दूर होगया। इसलिये निश्चय शब्दका अर्थ वहीहै जो हम ऊपर लिखआयेहैं। परन्तु इस निश्चयशब्द के अर्थको नहीं जाननेसे लोग निश्चय २ ऐसा तोतेकी तरह टेंटें करतेहैं। क्योंकि देखो निश्चयव्यवहार ऐसा शब्द कहनेसे तात्पर्य यहीहै कि सन्देहरहित जो व्यवहार सो कार्यकी सिद्धि करेगा नतु निश्चय जुदी वस्तुहै। क्योंकि बिना यथावत् गुरुके मिले इस स्याद्वादमतका रहस्य मिलना कठिनहै। देखो अभीके वक्तमें आगम२सब कोई कहतेहैं परन्तु आगमशब्दका यह

अर्थ नहीं और यथावत् अर्थ गुरुकुलवास बिना कोई नहीं जानसकता। केवल पुस्तकोंको आगम करके आगे रखतेहैं और दिखातेहैं परन्तु उसके अक्षरोंका भावार्थ नहीं जानते। क्योंकि आगम तो दूसरी चीजहै पुस्तकादि नहीं। देखो श्रीस्याद्वादरत्नाकर है टीका जिसकी ऐसा जो मूल "प्रमाणनयतत्वालोकालंकार" जिसके चतुर्थ परिच्छेदमें आगमका लक्षण कियाहै सोलिखतेहैं "आप्तवचनादाविर्भूतमर्थसंवेदनमागमः" इसका अर्थ "स्याद्वाद रत्नाकर" वा "स्याद्वादरत्नाकरअवतारका" में विस्तारसे है परन्तु यहा तो अक्षरोंका अर्थ लिखताहू कि (आप्त) क० तीर्थकरादि केवल ज्ञानी उनके मुखसे (वचनात) क० अमृतरूपी वचनसे (आविर्भूत) क० प्रगट हुआ ऐसा जो अर्थ उसका जो (सम्वेदन) क० जानना उसीका नाम (आगम) क० आगमहै नतु पुस्तकादि। इसीरीतिसे निश्चय शब्द काभी अर्थ जानलेना। व्यवहारका सन्देह मिटानेके ताईं निश्चय है। व्यवहारके कई भेदहैं सोही दिखातेहैं-१शुद्धव्यवहार २ अशुद्ध व्यवहार। उस शुद्ध व्यवहारकोही निश्चय कहतेहैं। सो इसके भेद तो कुछहैं नहीं परन्तु जिज्ञासुको समझानेके वास्ते जुदी प्रक्रिया दिखातेहैं। वह प्रक्रिया इस रीतिसे है कि ज्ञानदर्शनचारित्र गुणहैं सो एकरूपहैं परन्तु जिज्ञासुके समझानेके वास्ते जुदे २ कहे, इस रीतिका शुद्ध व्यवहारहै। और अशुद्धके भेद येहैं-१शुभ २अशुभ ३उपचरित ४अनुपचरित। इसरीतिसे व्यवहारके भेदहैं, निश्चय तो सन्देह दूर करनेवाला शब्द है। इसलिये इस ग्रथमें व्यवहारकाही वर्णन कियाहै परन्तु शुभ अशुभ दिखाना अवश्य है सो इस प्रकाशमें कारणकार्यकी व्यवस्था कही॥

॥ इति श्रीजैनाचार्यमुनि श्रीचिदानन्दस्वामी विरचिताया चतुर्थ प्रकाश समाप्तम्॥

पंचम प्रकाश।

दोहा—शासनपति श्रीबीरको, नमनकरूं नितमेव। आगम अनुभव विधि कहूं,जिमि कही जिनेश्वरदेव॥ १ ॥ मंगल करनेके अनन्तर चौथे प्रकाशसे पांचवेंका सम्बन्ध क्याहै सो कहतेहैं कि चौथे में तो कारणकार्यकी परीक्षा की और व्यवहारको सिद्धकिया। व्यवहार सिद्ध हुआ तो अब विधि कहनेका अवकाश मिला इसलिये इस पांचवेंमें विधि का वर्णन करतेहैं। इस प्रकाशमें १ चैत्य अर्थात् मन्दिरकी २ यात्राकरनेकी और ३ स्वामीवत्सल आदिकी विधि कहतेहैं क्योंकि इन तीनों चिजोंमें समकित दृष्टि अर्थात् अव्रती समकितधारी श्रावकभी शामिलहै। इसलिये पेश्तर समकितदृष्टि आदिक की चैत्यवन्दनआदिक की विधि कहके पीछे देशव्रती आदिककी विधि कहेंगे। इसलिये जिस रीतिसे हमने निर्देश कियाहै उसीरीतिसे आदेश करतेहैं, इसलिये प्रथम गृहस्थीके वास्ते मन्दिरमें जानेकी विधि कहतेहैं कि गृहस्थी जब घरसे चले उसवक्त निस्सीही कहै अथवा मन्दिरके पगोथियोंपर चढ़े उसवक्त निस्सीही कहै॥

शंका—आपने दो वचन कैसे लिखे? यातो घरसे निकलतेही करे या मन्दिरके पगोथियोंपर चढतेहुए निस्सीही करे॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! इस जगह कोई आचार्य तो कहतेहैं कि घरसे निकलकर निस्सीही करें। इस निस्सीहीका प्रयोजन यहहै कि निषेध कियाहै सब संसारी काम, तो गृहस्थी जब घरसे जायतो कोई संसारी काम न करे इस अभिप्रायसे कहतेहैं। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं कि गृहस्थी संसारमें फंसाहुआहै सो जो घरसे निस्सीही कहेगा और बीचमें काम आजाय तो उस काममें कदाचित् गृहस्थी चलायमान हो

तो निस्सीही का भग होगा। कदाचित् निस्सीहीके भयसे उस काममें न जाय और सीधा मन्दिरमेंही चलाजाय तो उस कामकी चिन्तासे चित्त की चचलतासे भगवत्का दर्शन यथावत् न करसकेगा तो उसको यथावत् दर्शन करनेका लाभ न होगा। अथवा अविधि और चित्तकी चचलतासे मन्दिरमें अधिक न ठहर सकेगा इसलिये मन्दिरके पगोथियों पर निस्सीही कहना ठीक है॥

शका—अजी आपने जुदे२ आचार्योंके अभिप्राय जताये तो जिज्ञासु किस बात पर श्रद्धा रखकर विधि करे क्योंकि सर्वज्ञका तो एकही वाक्यहै॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! इस सर्वज्ञ-वचन स्याद्वादमतका रहस्य विना गुरुकुलवासके मिलना कठिनहै सो परोपकारी आचार्योंका प्रयोजन न समझनेसे तुमको दो वाक्योंकी शका होतीहै परन्तु उन दोनों का प्रयोजन एकहीहै और आचार्य लोग जो व्याख्यान देतेहैं सो अपेक्षा लेकर कहतेहैं। सो उन आचार्योंकी अपेक्षाको तो वह जाने जो उनके चरणोंकी सेवा करे अथवा उन आचार्योंपर विश्वास रखकर इन्द्रियोंके विषयादिको त्यागनेवालेको और अध्यात्मशैलीसे वार२ उनकी अपेक्षाको विचारतेहुए अनुभववालेको किञ्चित् रहस्य प्राप्त होगा नतु दुखगर्भित वैराग्यवाले भेषधारियोंको। अब देखो प्रयोजन कहतेहैं कि जो आचार्य महाराज घरसे निकलकर निस्सीही कहना कहतेहैं वे तो इस अपेक्षासे कहतेहैं कि जो गृहस्थी दृढ़ चित्त उत्कृष्ट अभिप्रायवाला कि जिसको देवताभी चलायमान करें तो न चले और धर्ममें हैं उत्कृष्टी वृत्ति जिसकी ऐसा श्रावक घरसेही करे क्योंकि वह धर्म्मके सिवाय ससारी कृत्य वे मन से करताहै। इसलिये उसको कोई ससारी कृत्यकी बात रास्तेमें कहे तोभी

उस संसारीकृत्यमें उसके चित्तकी चंचलता न होगी क्योंकि वह संसारी कृत्यसे तो विरक्त है और उसको धर्मकृत्यसे रागहै इस अपेक्षासे आचार्योंका कहनाहै कि घरसे निकलके निस्सीही कहे। और दूसरे आचार्यों की अपेक्षा यहहै कि जघन्य मध्यम गृहस्थी मन्दिरकी पगोथिया पर जायकर निस्सीही कहे क्योंकि उन जघन्य मध्यम गृहस्थियोंको अनादिसे संसारीकृत्यसे अभ्यास तथा परिचय बनाहुआहै सो संसारीकृत्य सुनने से उनका चित्त चंचल होजाय इसवास्ते घरसे न कहे इसलिये उपकार बुद्धिसे आचार्यने मंदिरके पगोथियापर चढ़कर निस्सीही कहना कहा। सो दोनों तरह की रीति कहनेका अभिप्राय आचार्योंका यहहै कि किसी रीतिसे जिज्ञासुको यथावत् धर्म्मका लाभहो नतु एक का एकने निषेध किया। अब इस अभिप्रायसे दोनों रीति ठीक हैं जैसी जिसकी रुचि हो वैसा करो। अब देखो जब वह निस्सीही कहके ऊपर चढ़े तब उसने संसारीकृत्य अर्थात् कर्मबंध हेतुका निषेध कियाहै इसमें प्रथम निस्सीहीका प्रयोजन कहा। अब निस्सीही कहनेके बाद धोतीकी एक लांग खोले और दूसरी लांगको वैसेही रक्खे और दुपट्टाका उत्तरासन करे। फिर ऊपर पगोथियोंपर चढ़के दूरसे प्रभुका मुखारविंद देखतेही अंजुली मस्तकपर चढ़ायकर नमस्कार करे और प्रभुके चेहरेको देखतेही शरीरका रोम२ प्रफुल्लित हो अर्थात् जैसे सूर्यके देखनेसे सूर्यविकासी कमल खिलजातेहैं इसरीति से प्रभुको देखतेही शरीर और चित्त प्रफुल्लित होजाय। और ऐसा विचारने लगे कि धन्य आजका दिन, धन्य घड़ी, धन्य भाग्य मेरा जो मुझको त्रिलोकीनाथ जगतगुरु सर्वज्ञ निष्कारण परदुःखहरनेवाले ऐसे बीतराग अरिहंत परमेश्वर का दर्शन हुआ। ऐसा विचारताहुआ मंदिरकी सारसंभाल फूटाटूटा असातनादिकको देखकर

जो बात जिसको कहनीहो उसको कहकर फिर तीन प्रदक्षिणा दे फिर निस्सीही कहे । इस निस्सीही कहनेसे मंदिरके टूटेफूटे कामआदिक कहनेका निषेध किया । अब निस्सीही कहनेके बाद फिर नमस्कार करे और फिर चांवल हाथमें लेकर इस मंत्रको पढ़े—ॐऽर्हंतप्रीणनंनिर्म्मलंवल्य मागल्य सर्व सिद्धिद ॥ जीवनं कार्य ससिद्धो भूयान्मे जिनपूजने ॥ इस मंत्र को पढ़े और चावल हाथमें ले मंत्र पूर्ण करके चांवलोंकी तीन टिगली करे उस वक्तमें ज्ञान दर्शन चारित्र विचारे । फिर दूसरे मंत्रके सग साथिया करे उस वक्त ऐसा विचारे कि हे प्रभु ! मैं चार गतिसे निकलू । फिर तीसरे मंत्रको पढ़कर सिद्धशिला बनावे । उस वक्त मनमें ऐसा विचारे कि मुझको सिद्धशिला प्राप्त हो । कदाचित् फलादि चढ़ाना हो तो इस मंत्र से चढ़ावे । मंत्र— ॐ अर्हंहुं जन्मफल स्वर्गफल पुण्य फलं मोक्ष फल दद्याज्जिनार्च्चने तत्रैव जिनपदाग्रसंस्थित ॥ इस मंत्र से फल को चढ़ावे । फिर तीसरी निस्सीही कहे तीसरी निस्सीही कहेके बाद तीन इच्छामिखमासमणो देकर इरियावही पडिकमे, फिर काउसग्ग करे उस वक्त काउसग्ग में गुरुकी बताईहुई यथावत विधिसहित श्रीजिनेश्वर भगवानके सामने मन वचन और काय करके मिच्छामिदुक्कड देकर अपनी आत्माकी शुद्धि करे । सो विधितो विना गुरुकुलवास अर्थात् आत्मार्थी सत्पुरुषके विना मिले नहीं सो इसकी विधि तो हमने जिनको उपदेश दिया है उनको बताईहै सो वेलोग करतेहीं होंगे क्योंकि ऐसी विधिआदिककी बातें ग्रंथोंमें नहीं लिखीजातीहैं क्योंकि गुरुआदिक पात्र अपात्र देख करके वस्तु बतातेहैं । फिर काउसग्ग पढ़कर 'लोगस्स' कहे । फिर बैठकरके चैत्यवन्दन करे । इसरीतिसे चैत्यवन्दन की विधि कही और पूजा आदिककी विधि तो हमने "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" में कहीहै

इसलिये यहां न कही, परन्तु यह चैत्यवन्दन पूजनादिविधि सूर्यकी साख से अर्थात् दिन अच्छी तरहसे उगेके बाद प्रभुका मुखारविंद अच्छी तरहे से देखनेमें आताहै इसलिये विधिसंयुक्त दिनमेंही करना ठीकहै, क्योंकि देखो भगवतआज्ञासंयुक्त जो विधिका करनाहै सो भव्यजीवोंको लाभकारीहै और अविधिसे करनाहै सो अलाभकारी है. क्योंकि देखो एकतो अविधिसे भगवतआज्ञाका विराधक होताहै । दूसरा अविधिके करनेसे जिस लाभके वास्ते करतेहैं सो लाभतो नहीं होताहै किन्तु अलाभ होजाताहै इसलिये आत्मार्थियोंको जिनाज्ञासंयुक्त विधिका करनाही ठीकहै नतु अविधि का ॥

शंका—अजी तुमनेतो चैत्यवन्दन आदि विधि दिन मेंही करनेका लिखा परन्तु वर्त्तमान कालमें तो रात्रिमेंभी दर्शन चैत्यवन्दन आदि करतेहैं सो यह प्रवृत्ति सब जगह दीखतीहै और लोग कररहेहैं तो आपने दिनमें तो करना कहा और रात्रिमें करनेकी नाहीं कही इसका कारण क्याहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! हमने इस ग्रंथकी आदिमें प्रतिज्ञा की है कि व्यवहार और जिनाज्ञाका इस ग्रंथमें वर्णन करेंगे इसलिये इस जगह जिनाज्ञा और विधि कहनेसे ही हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी और आत्मार्थी भव्यजीवों को इस स्याद्वादमत के रहस्य से यथावत जिनधर्म की प्राप्तिहोगी इसलिये हमको विधिसे ही प्रयोजन है नतु अविधि से ॥ और जोतुमने कहा कि वर्त्तमान काल में सर्वदेशों में रात्रिकी प्रवृत्ति है यहकहनाभी ठीक नहीं क्योंकि देखो गुजरात आदि देशोंमें आर्ती किये के बाद मन्दिर के पट मंगल करदेते हैं फिर मन्दिर में कोई श्रावक नहीं जाता है क्योंकि भगवत-आज्ञा-भंग दूषण से कोई नहीं जाता इसलिये

सब देशों में यह प्रवृत्ति है ऐसा तुम्हारा कहना असगतहै ॥

शंका— आपने यह कहा सो तो ठीक परन्तु हम जब साधुओंसे पूछतेहैं कि महाराज गुजरात आदि देशमें रात्रिमें मन्दिर नही जाते इस का कारण क्याहै तो प्राय. करके बहुत साधु तो कहतेहैं कि रात्रिमें मन्दिर जानेकी विधि नही परन्तु कोई साधु ऐसाभी कहतेहैं कि परमेश्वरकी भक्ति जब करें तबही अच्छी, राति क्या और दिन क्या ? और जो तुम गुजरातके मध्ये कहतेहो सो तुम्हारेको खबर नही, उन गुजराती लोगोंमें तो काम-धन्धा नहीं इसलिये वे लोग दिनमेंही करलेतेहैं रात्रि में नहीं जाते, परन्तु तुम लोगोंमें तो काम-धन्धा व्यवहारादिक दिनमें बहुतहै इसलिये दिनमें सुभीता नही हो तो रात्रिमें भक्ति करना ठीक है क्योंकि प्रभुकी भक्तितो जबकरे तबही ठीकहै ऐसा हम सुनतेहैं ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! जो ऐसा कहताहै वह साधु नही किन्तु महाधूर्त्त मायाचारी इन्द्रियोंका विषय भोगनेवाला जिनाज्ञाका चोर गुरुकुलवास बिना तुम्हारी खुशामदसे तुम्हारी आत्माको डुबानेवाला और तुम्हारे मनको राजी रखनेके वास्ते अपना स्वार्थ-सिद्ध अर्थात् पोथी पन्ना लेने वा अच्छे २ माल खानेके वास्ते कहनेवाला है नतु जिनाज्ञा-आराधक गुरुकुलवास सेवक। क्योंकि इस जगह विचार करना चाहिये कि उसने गुजरातके श्रावकोंके वास्ते कहा कि उनके कुछ कामकाज नहींहै यह कहना उसका महा मूर्खताकाहै क्योंकि देखो क्या गुजरातके श्रावक उसकी तरह भिक्षा मांगके खातेहैं कि जो उनके काम काज नहींहै ? सो तो नहीं, परन्तु गुजरातके श्रावक तो धर्मको ऐसा जानतेहैं और दिपातेहैं और हजारों लाखों रुपया खर्चतेहैं किन्तु धर्मके वास्ते प्राणजाय तो जाय पर धर्मको विपरीत करनेकी इच्छा न होय। कदा-

चित् ऐसे गुजराती श्रावक न होते तो तीर्थ आदिकोंकी सारसंभाल होना कठिनथा अथवा इस जैनधर्मकी प्रवृत्तिभी गुजरातसे ही चलतीहै। हां अलबत्ता आत्मारामजी तो ऐसा लिखतेहैं कि वहां के लोग बड़े हठी अर्थात् कदाग्रहीहैं सो जितने जैनमतमें भेद पड़ेहैं उतने गुजरातसे ही निकले। इस मतमतान्तरके भेद होनेसे उनका लिखनाहै परन्तु हमतो कितनीही बातें धर्मकी यथावत् देखनेसे उन लोगोंको धन्यवाद देतेहैं नतु कदाग्रही मतमतान्तरके भेद करनेवाले हठग्राहियोंको ॥ इसलिये भोदेवानुप्रिय ! ऐसे मूर्ख भेषधारीके कहनेसे अविधिमें प्रवृत्ति होनेकी इच्छा मतकरो किन्तु विधि मार्गकी इच्छा करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो ॥

शंका—आपने कहा सो तो ठीकहै परन्तु हम लोगोंकी भावभक्ति जो होतीहै सो न होगी क्योंकि दिनमें तो चित्त नहीं लगता, रात्रिमें हम लोगों का चित्त मन्दिरमें अच्छी तरहसे लगताहै। इसलिये रात्रिमें दूषण क्याहै ॥

समाधान—हेभोलेभाइयो ! इस तुम्हारे कहने से हमको अनुमानसिद्ध होता है कि तुम्हारे भावभक्ति तो नहीं किन्तु तुम को रात्रिमें उसवक्त कुछ काम नहीं इसलिये तुम अपने दिल बहलाने अर्थात् खुशी करने के वास्ते भक्ति का नाम लेकर झांझमंजीरा कूटते हो। जो तुम्हारे भावभक्ति होती तो जिन-आज्ञा को छोड़कर अपनी मनकल्पना को भक्ति क्यों मानलेते ? क्योंकि देखो जो भगवतकी आज्ञा में है उसी को भक्तिभाव हैं क्योंकि जिसके जीमें जिसका भक्तिभाव होगा उस की आज्ञा आपही अंगीकार करेगा जिसको आज्ञा अंगीकार नहींहै उसके भक्तिभावभी नहीं बनता। और जो तुमने कहा कि रात्रि में दूषण क्या है सो देखो कि जिनमत में यतना का करना सोही जिनाज्ञा का

सार है सो रात्रिमें यतनानहीं होसके और दूसरी जिनाज्ञा नहीं कि रात्रि में मन्दिर जाना क्योंकि आज्ञामें धर्म है "आणाजुत्तो धम्मो" सो हम इस आणा के मध्ये तो इस पुस्तक के तीसरे प्रकाश में भगवत् की आज्ञा को सिद्धकर आये हैं कि आणा में धर्म है परन्तु तौभी इस जगह एक लौकिक दृष्टान्त देकर दिखाते हैं। देखो अभीके वक्त में अंग्रेज़ लोगों ने ऐसा बन्दोबस्त कर रक्खा है कि बाजारों में सडकोंपर पेशाब मतकरो झाडे मत फिरो अथवा बारह पत्थर के भीतर कोई दिशाफरागत न जाने पावे ऐसा उनका हुक्म अर्थात् उनकी आज्ञाहै। परन्तु जो शख्स उनको रोजीना दिनभर में तीनदफा जाकर सलाम करता है और बडी भक्ति रखताहै परन्तु जो वह शख्स उनके कानून के बाहर अर्थात् उसजगह दिशा आदिक फिर आवे और उसको कोई पकडकर लेजायतो कानून के माफिक उसे सजाही होगी, उसका भक्तिभाव और सलाम करना कुछ काम न आया। इसीरीति से इसजगह भी जानना कि जो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देव जिनेश्वर भगवान ने कहा है उससे विपरीत करनेवाले को कर्मबन्धहेतु है नतु भक्तिभाव कहकर छूटना। क्योंकि देखो इस लौकिक राजाआदिके भक्तिभावसे उसका उसविपरीत करनेसे सजाके सिवाय छुटकारा न हुआ इसलिये यहाभी अविधि से धर्मध्यान करना ठीक नहीं है जोतुमने कहा कि दूषण क्या है तो आज्ञा न मानना इसके सिवाय और क्या दूषण होगा ॥

शंका— अजी तुमने युक्ति दीनी सो तो ठीकहै परन्तु कोई आगमका भी प्रमाणहै कि जिसमें रात्रिको मन्दिर जाना निषेध कियाहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! तुझको कुगुरुकी वासना बैठी हुई है इसलिये तोतेकी तरह टेंटें करताहै कि आगममें कहा निषेध कियाहै ?

सो हे भोलेभाई ! कुछ बुद्धिसे विचारकर कि विधि होय तो निषेधभी होय जिसकी विधिही नहींहै उसका निषेध क्योंकर बने ? क्योंकि दीवार हो तो चित्र होगा बिना दीवारके चित्र किस पर होगा क्योंकि केवल आकाशमें चित्र नहीं होता । इसलिये रात्रिकी विधिभी नहीं तो निषेधभी नहीं । जिनाज्ञा प्रमाण यतना करना और विधिसे मन्दिर जाना यही रात्रिका निषेध है ॥

शंका—अजी इन तुम्हारी युक्तियों से तो रात्रिको मना करते हो परन्तु मन्दिरमें भक्ति करना नृत्यादिक करना यह सब उठ जायगा तो फिर हरेक जीवको लाभ होनाही बन्द हो जायगा ॥

समाधान—अरेभोलेभाई ! कुछ बुद्धिसे बिचारकर केवल कुगुरुके बहकानेसे बुद्धिका विचक्षणपना मत दिखावे । जो तुझको आगमही आगम के प्रमाणकी इच्छा होय तो अब हम तेरेको प्रमाण देतेहैं सो तू अच्छी तरह कान लगाकर सुन । श्रीतपगच्छमें भट्टारिक श्रीहीरविजय सूरिजी महाराजके कियेहुए जो प्रश्नोत्तरहैं उनमें रात्रि को नाटकादि निषेध कियाहै सो उन प्रश्नोत्तरोंमें ऐसा लिखा हुआहै कि "जिनगृहेरात्रौ नाट्यादिर्विधेनिषेधौ ज्ञायते" ॥ यथोक्तं ॥ "रात्रौन नंदिर्नवलिप्रतिष्ठा । न स्त्रीप्रवेशो न चलास्यकीलेत्यादिकंच" ॥ अब देखो कि इस में खुलासा हैकि "नन्दिर्नवलिप्रतिष्ठानस्त्रीप्रवेशो" आदिका निषेध किया है सो इस प्रमाणसे जो आत्माका कल्याण करना होय तो इस बातको अंगीकारकरके रात्रिमें मन्दिर जायकर जिनअसातना मत करो । हमतो तुम्हारी करुणा करके तुम्हारे उपकारके वास्ते लिखतेहैं आगे करना न करना तो तुम्हारे अख्तियारहै क्योंकि देखो चौकीदार तो रात्रिको ऐसा कहताहै कि " जागते रहो२" परन्तु जागना तो उस घरधनीके अख्तियार है

जागेगा तो उसका माल रहेगा और सोताही रहेगा तो उसका माल जायगा, कुछ जगानेवाले का दूषण नहीं। इसीरीतिसे हमभी जिनोक्त विधि कहतेहैं जो आत्मार्थी करेगा उसका कल्याण होगा और जो हठ कदाग्रह में पडाहुआ न करेगा तो उसकाही नुकसान है। इसलिये आत्मार्थीको हठग्राहीपना छोडकरके विधिका अंगीकार करनाही ठीकहै॥

शंका—अजी तुमने इस प्रमाणमें स्त्रीआदिकका निषेध किया तो जिन स्त्रियोंका दिनमें फिरना नहीं होता उनको दर्शन करना क्योंकर बनेगा और विना दर्शन करे तो श्राविकाको बने कैसे? क्योंकि दर्शन न करे तो दण्ड आता है॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! नेत्र मींचकर कुछ बुद्धिसे विचार कर कि देव और गुरु के सामने तो परदा बनताही नहींहै और जो देव और गुरुके सामने परदा करे तो मिथ्यात्व आताहै क्योंकि देखो उस जगह सिवाय साधर्मीके एकभी नहीं दीखताहै और साधर्मी से कोई तरह का परदा है नहीं क्योंकि वो तो संसारी नहीं किन्तु परमार्थ का सहाय देनेवाला है। हा अलबत्ता संसार व्यवहार के कृत्यमे जैसी जिस देशमें प्रवृत्तिहो वैसा करना ठीकहै नतु परमार्थ अर्थात् धर्म्मकृत्य में संसारीकृत्य का हठकरना। औरभी देखो कि तुम्हारे जैसे विलक्षण बुद्धिवाले उन आचार्यों वा सर्वज्ञों के सामने नहीं हुए जो ऐसे२ संसारीकृत्योंको धर्मके कृत्योंमें फसायकर ऐसे प्रश्न करते और तुम्हारे कहनेसे ऐसीभी प्रतीति होतीहै कि उन सर्वज्ञोंमें इतना उपयोग न हुआ कि आगेके कालमें ऐसे२ श्रावक श्राविका होंगे कि जिनके वास्ते रात्रिमें मन्दिर जानेकी विधि कहजाय क्योंकि नहीं तो मेरे शुद्धप्ररूपकों से अर्थात् शुद्धविधिकरनेवालों से वे कुगुरुके बहकायेहुए मूढमति नामके श्रावक उपजीविकाके

नहीं कल्पता। क्योंकि रात्रि को सोयेहुए मनुष्य के अनेक तरहके कारणोंसे इस उदारीक अशुचि पुद्गली शरीर में दुर्गन्धादि उत्पन्न होतीहै सो विना दांतन करनेके जोकोई पूजा करेगा उसको असातना लगेगी। यथोक्तं सतरभेदी पूजायां "पूर्वमुखसावनं कारदशन पावनं" अब देखो कि पूर्व नाम पहिले (मुखसावनं)क० मुख पवित्रकरे (दशनपावनं)क० दांतों की बत्तीसी को खूब मंजन आदिकसे मसलकर खूब धोवे। इस रीति से मुखको साफकर पूर्व मुख होकरके उष्ण जल से स्नान करे फिर शरीर को पूंछकर उत्तरमुख होकरके नवीन वस्त्र अर्थात ऐसा वस्त्र होय कि जिस वस्त्रसे कभी लघुनीत दीर्घनीत न किया हो, और उस वस्त्रको पहिरकर अकेला वा स्त्री संगभी न सोया हो अर्थात् उस वस्त्र को सिवाय मन्दिर पूजन के और किसी काममें नहीं लाया हो ऐसा वस्त्र हो। फिर वह वस्त्र सिला हुआ न हो और छिद्रभी न हो, और सफेद के सिवाय कोई रंगका नहो। उस वस्त्रसे पाहिले तो धोती बांधे अर्थात् एक लांग खुली रक्खे और दूसरे वस्त्रसे उत्तरासन करे और उसी उत्तरासन के वस्त्रसे आठ परत करके मुखकोश बांधे सो उस मुखकोशसे नाककी डांडी ढके कि जिससे नाकका स्वास प्रभुके ऊपर न जाय परन्तु पूजनादि करके उन वस्त्रोंको धोयकर सुखादे जब तो वे दूसरे दिन पूजनके काममें आवें, बिना धोये कामके नहीं। फिर तिलकादिक की जो विधिहै सो तो श्राद्धदिनकृत में विशेपकरके लिखीहै परन्तु उसके अनुसार किंचित् छांटकर हमारे बनाये हुए ग्रंथमें है सो ग्रन्थका नाम ऊपर लिख आयेहैं वहां से जानलेना। इस जगह किंचित् प्रसङ्गागत पूजामें प्रवेश होनेकी पीठिका दिखाई है ॥

शंका—अजी तुमने प्रथमही जो पूजाकरने वालेकी विधि कही

सो इस विधि से कोई नहीं करताहै परन्तु पूजादिकतो बहुत करते हैं ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! हमने तो जो शास्त्रों में था सो कहा और जो कोई वर्त्तमान में नहीं करता है तो हमारा कुछ जोर नहीं और जो इस विधिको छोडकर अपनी मनोकल्पना की विधि से करते हैं उनको सिवाय कर्मबन्ध हेतुके कुछ लाभ नहीं है । जो करनेवाले हैं वे नामधगने के जैनीहैं नतु भावितात्मा । क्योंकि देखो जो भावितात्मा है सोतो असातना टालकेही करेंगे और जो आजीविकावाले हैं वे लोगोंको दिखानेके वास्ते नतु आत्मार्थ के वास्ते । क्योंकि देखो प्रथम तो मन्दिरमें जायके स्नान करतेहैं और बालों के खूब मसाला लगाके धोते हैं और खूब मल२ के स्नान करते हैं और उसी जगह धोती आदिक भी धोते हैं फिर कागसा लेकर खूब डाढी और मूछको सवारते हैं और काच अगाडी रखकरके एक२ केशको सवारकरके डाढी और मूंछ जुदी२ बाधते हैं कि जिससे वो जहा की तहा बनीरहै अर्थात् डाढ़ी मूछका बाधनाहै नतु मुखकोश बाधना । अब कहो उन की भक्ति कहा रही ? देखो ससारमें भी जो ससारी मनुष्य अपने वडे के सामने दो२ टाटे बाधकर अथवा एकभी ढाटा बाधकर नहीं निकलता और रजवाडी देशोंमें जहां कि गामादि के छोटे मोटे जमीदार हैं उनके भी सामने ढाटा बाधकर नहीं निकलसक्ते तो अब देखो श्रीवीतराग त्रैलोक्यनाथ सर्वज्ञदेवके सामने इसरीतिसे पहुचना क्योंकरबने ? सो उस वीतरागके तो कोई तरहका रागद्वेष हैही नहीं परन्तु जो करने वाले हैं उनको असातनासे कर्मबन्ध होते है । और देखो जोकि धोती आदिक वस्त्रोंसेही ससारी दिशा लघुनीत औ स्त्री सगादि सर्व कार्य करतेहैं और उसी धोतीको पहरते है और कोई आधी धोती पहरते हैं

और आधी ओढ़ते हैं इसरीति से जो पूजन करनेवाले हैं सो भाव भक्ति वाले तो नहीं हैं किन्तु लोगोंको दिखाने के लिये पूजन करनेवाले बनते हैं और ओसवालों के घर में जन्म लेके जैनी नाम धराय कर जन्मपत्रीकी विधि तो मिलाते हैं कि हमभी सेठ हैं क्योंकि मुफ्तका पानी मिला और मुफ्त की केसर चन्दन मिले जिसके तिलकसे चहराभी अच्छा दीखनेलगा और मन्दिरके दोचार आदमियों पर हुक्मभी चला, इसरीति से जन्मपत्रीका जोग सधा कि ओसवालके घरमें जन्मलेने का फल मिला परन्तु इत्यादिक बातोंके करनेसे सिवाय कर्मबन्ध हेतु के लाभ नहीं इसीलिये इस जैनमतमें ऐसी २ रीति कुगुरुके भ्रमाये हुए कदाग्रही मूढ़मती हठग्राहियोंनेही श्रीसङ्घकी हानि की क्योंकि शास्त्रों में कहा है कि देवगुरुकी असातना होनेसे श्रीसंघमें हानि है इसलिये श्रीसंघमें वृद्धि नहीं होती है ॥

शंका—अजी प्रथमतो तुमने पूर्व पश्चिम आदि दिशिके वास्ते कहा उसका कारण क्या है और दूसरा वर्त्तमान कालमें जो प्रवृत्ति मार्ग है सो तो बिलकुल उठजाताहै तब व्यवहारके बिना मार्ग क्योंकर चलेगा ? सो व्यवहारका उठाना ठीक नहीं है। तुम्हारा कहना तो हमको निश्चय मालूम होताहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! जो दिशि के मध्ये प्रश्नकिया उसका तो उत्तर यहहै कि बिना प्रयोजन जो पामर पुरुषहैं उनकीभी प्रवृत्ति नहीं होतीहै तो श्रीअर्हन्तभगवन्त बीतराग सर्वज्ञ देवकी वाणी क्यों निष्प्रयोजन होंगी ? परन्तु इस प्रयोजन केलिये सत्पुरुष आत्मार्थी शुद्ध परूपककी चरण सेवाकरो तो वह सत्पुरुष पात्रकी परीक्षाकरके आपही बतलायदेगा नतु पूछनेका कामहै। औरजो तुमने कहा कि

प्रवृत्ति मार्ग व्यवहार उठ जायगा तिसका उत्तर यहहै कि प्रवृत्ति व्यवहार मार्ग तुम्हारी मनोकल्पनाका जो चलरहाहै सो उठेगा या अर्हन्त भगवन्त वीतरागका व्यवहार उठजायगा? जो कहो कि हमारा वर्त्तमानकालका प्रवृत्ति मार्ग उठताहै तो हमने तो श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव का धर्म अंगीकार कियाहै नतु तुम लोगोंकी मनोकल्पना का व्यवहार। हमारीतो प्रतिज्ञा ऐसीहै कि श्रीवीतराग की वाणीसे व्यवहारकाही वर्णन करें। हा अलबत्ता व्यवहारके भेदोंका विशेष करके वर्णनहै सो अभीतो हमने शुद्ध व्यवहारको किंचित्भी नहीं कहा किन्तु शुभ व्यवहारकाही वर्णन कियाहै और प्राय करके इसग्रंथमें शुभ व्यवहारकाही वर्णन विशेष करके होगा और शुद्धव्यवहारका वर्णन तो "द्रव्यअनुभवरत्नाकर" में किंचित् कियाहै सो कदाचित् उसको सुनो तो तुम्हारा क्या हालहो! अभीतो शुभ व्यवहारकोही निश्चय समझ लिया सो निश्चयकाभी वर्णन उस शुद्ध व्यवहारवाले ग्रंथमें कहाहै कि निश्चय कुछ पदार्थ नहीं है इसकी विशेष चर्चा वहा देखलेना। अब किंचित् औरभी सुनो। देखो तुमलोग अपनेको जिनधर्मी बनाकर बहुत उत्तम अर्थात् श्रेष्ठ समझतेहो और अन्यमती लोगोको मिथ्याती अर्थात् बहुत नीच समझते हो तो जब तुम्हारा और उनका कृत्य एकसा है तो फिर उनको मिथ्याती कहना और अपनेको समगति कहना क्यों कर बनेगा? क्योंकि उन लोगोंको मिथ्याती इसीलिये कहतेहैं कि वे लोग विधि अविधि, साध्य साधन, कारण कार्यको नहीं जानकर केवल न्हानाधोना माल उडाना और झाझ मजीरा कूटना नाचनाकूदना खूब गालबजाना गाना रागरागिनी काटना इसी को धर्म जानकर ईश्वरभक्तिका नाम लेकर इन्द्रियसुख भोगतेहैं और शृंगारआदि करतेहैं

परन्तु जिनमतमें तो विधिका करना, साध्य साधन, कार्य कारण समझकर देवगुरुकी असातना टालकर संसारकृत्यसे विरक्त वैराग्य भाव सहित जो कृत्य करतेहैं सो आत्माके ज्ञान दर्शन चारित्र प्रगटहोनेके वास्ते; क्योंकि देखो शास्त्रों में कहाहै कि ज्ञानी अर्थात् जानकार एक स्वासोस्वासमें कर्मक्षय करे सो अज्ञानी अर्थात् मिथ्याती करोड़ वर्ष तक क्रियाकरे तो उतना कर्म क्षय न करसके । और इसीलिये जो फल समगति की नौकारसी का कहा सोमिथ्यातीके मासषवणका फल नहीं कहा। इसरीतिसे हे भोलेभाइयो! जैसे वे मिथ्याती लोग न्हानेधोने स्नानमेंतो चार घड़ी लगावें और संभार२ कर तिलककरें और मन्दिरमें गये तुलसीचरणामृत लेकर अपने घरको चलेआये । इसी तरह तुमलोग भी अपने शरीरके स्नानादि अथवा केश आदि संवारने में वा तिलक लगानेमें तो चार घड़ी लगातेहो और श्रीजिनराजके सामने धूपखेई और इधरउधर टीकी लगाई—विधि अविधि असातनाका खयाल न किया और पूरा चैत्यवन्दनभी न करनेपाये और घरको जानेलगे । फिर तुम कहतेहो कि हमतो जैनी और बड़े उत्तमहैं हाय! इतिखेदे। इन दुःखगर्भित मोह गर्भित वैराग्यवाले कुगुरुओंने इन भोलेजीवोंको बहकायकर चिन्तामणि रत्नका नाम लेकर काचका टुकड़ा हाथमें देकर वीतरागके मार्गको उठायकर, अपनी मनोकल्पित बातोंको चलायकर, कुमार्ग बतायकर, वीतरागके मार्गको दबायकर, इन बालजीवोंको खेलमें लगायकर, केवल व्यवहार२ बतायकर झगड़ाही फैलायाहै। और जो तुमने निश्चय का कहासो इस ग्रंथमें कहनेका इरादा नहींहै क्योंकि निश्चयको कोई समझताही नहींहै केवल निश्चयको पकड़कर इन्द्रियोंका भोगकरना और संसारको बढ़ाना तो अक्सरलोग करतेहैं । इसलिये इस जगहतो ज़ि-

नाज्ञा सयुक्तविधि कहनेही की हमारी प्रतिज्ञाहै ॥

शंका—अजी तुमनेतो विधिका ऐसा वर्णन किया परन्तु औरभी बहुत गीतार्थी लोगहैं वे तो ऐसा कोई नही कहते ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! जिन्होंने जिनमत श्रीवीतरागके धर्मको अंगीकार किया है वे सत्पुरुष तो अच्छी तरह चौकीदारकी तरह हल्लामचातेहैं कि श्रीवीतरागका मार्ग इसरीति से है और इस कुमार्गको छोडने के वास्ते कहते हैं कि हे भव्यजीवो ! श्रीवीतरागके शुद्ध मार्ग में चलो जिससे तुम्हारा कल्याणहो। देखो श्रीआनन्दघनजी श्रीयशविजयजी उपाध्याय श्रीदेवचन्दजी उपाध्याय श्रीसमयसुन्दरजी श्रीज्ञानसागरजी आदिक अनेक सत्पुरुष कुगुरुओंके मार्गको निषेध करके श्रीवीतरागके मार्गको स्तवन सिज्जाय प्रकरण रास आदि अनेक ग्रंथोंमें कहगयेहैं सोजिसको अपनी आत्माका अर्थ करना होगा वही उन बातोंको मानकर वीतरागकी बातों पर चलेगा। क्योंकि देखो श्री देवचन्द्रजी महाराज श्रीचन्द्राननप्रभु के स्तवनमें कहतेहैं कि "तत्वआगमजानगतजीरे।बहुजनसम्मतएह॥ मूढ हठी जिन आदरीरे। सुगुरु कहावे तेह" ॥ इसरीतिसे अनेक ग्रंथोंमें कुमार्गका निषेध करके सुमार्ग प्रतिपादन कियाहै परन्तु तुमको कोई निषेध करनेवाला न मिला तो क्या करें हमने तो श्रीवीतराग सर्वज्ञ देवका शुद्धमार्ग अंगीकार कियाहै। सो हमतो शास्त्र अनुसार विधि मार्गकीही इच्छा रखतेहैं और कहतेहैं और कहेंगे॥

शंका—अजी तुमने विधि कही सो तो ठीक है परन्तु शास्त्रोंमें तो उत्सर्ग अपवाद दोनों रीति का मार्गहै तो अपवादमार्गभी भगवान की आज्ञामें है और भगवानकी भावभक्ति करनेसेतो सदा लाभहीहै

न करनेसे तो करना अच्छाहीहै । देखो जिसको गेहूं चांवल न मिले तो क्या मोठबाजरी खाकर पेट न भरे ? और जो एकान्त इसी बातको थापोगे तो आपकोंभी तो लोग साधु कहतेहैं तो आप कौनसी सर्व विधिसेही क्रिया करतेहो ? इसलिये जो लोग करतेहैं जिस रीतिसे वे चलें उसी रीतिसे चलना चाहिये क्योंकि जो बहुतजने करतेहैं सो अच्छा ही करते होंगे । क्या आपकी बराबर आगेके लोगोंमें बुद्धि नहींथी ? सोतो नहीं, किन्तु पहलेके लोग तो विशेष बुद्धिमान थे ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! तुमनेकहा कि वीतरागके मार्गमें उत्सर्ग और अपवादहै और ये दोनोंही भगवानकी आज्ञामें हैं सोतो हमभी अंगीकार करतेहैं परन्तु उत्सर्ग अपवाद समझो तो सही कि उत्सर्ग क्याचीजहै और अपवाद क्या चीजहै सोही हम तुमको दिखाते हैं । उत्सर्गमार्गको रखनेके वास्ते अर्थात् सहाय देनेके ताईं प्रभुने अपवाद मार्ग कहा है जैसे कोई एक तिवारी बनी हुईहै उसकी छतमें पत्थर की पट्टी लगी हुई है उस छतकी पट्टियोंमें से बीचकी पट्टी जर्जरी अर्थात टूटगई अब उस तिबारीकी और पट्टियां न टूटनेके वास्ते बीच में दोस्तम्भ खड़ेकिये और उस टूटीहुई पट्टीके निकालनेका और दूसरी साबित पट्टी रखनेका यत्न करनेलगे । जबतक वह पट्टी वहां लगकर छत ज्योंकीत्यों न होजाय तबतक तो वे स्तंभ बीचमें लगेरहैं परन्तु जब छत दुरुस्त होगई तब उन स्तम्भोंको उस तिवारीके बीचमें कोई बुद्धिमान नहीं रखसक्ताहै किन्तु उन स्तम्भोंको मकानकी शोभा और जगह खाली करनेके वास्ते उठाही देताहै । दूसरा दृष्टान्तसुनो एकसड़क है जिस पर गाड़ी घोड़ा हाथी ऊंट आदि बेधड़क चलेजातेहैं जिसमें कोई तरहका खटका नहीं है परन्तु उस सड़कमें एक खाड़ा (गड्ढा)

होगया सो उस को दुरुस्त करनेवालोंने कुछ हटाकर गाडी आदिके नि-कलनेके वास्ते मार्गकरदिया तो लोग उधर होके जाने लगे। जब वह सडक ज्योंकीत्यों बनगई तब उस सडक को छोड कर फिर कोई उस नये निकाले हुए रस्ते से न जायगा किन्तु सीधी सडक परही जायगा। इन दृष्टान्तों का सार यहीहै कि जो श्रीभगवतने उत्सर्ग मार्ग कहाहै उस मार्गमें चलनेवाले जो भव्य जीवहैं उनमें से कोई भावित आत्मा कर्म उदयके जोरसे परणामकी चचलतासे और शरीरादिकमें कोई कारण होनेसे अपवादमार्गको अङ्गीकार करके अतिचार आदि लगावे परन्तु शरीरादिके कारण मिटनेसे और परणाम की स्थिरता होनेसे फिर उत्सर्गमार्गमें चले। क्योंकि देखो तिवारीकी पट्टी अच्छी होतेही स्तम्भ निकाललियेगये और सडकका खाडा बुरनेके बाद गाडीघोडादि सीधी सडक पर जानेआने लगे। इस रीति से जो आत्मार्थी हैं वे अपवाद मार्ग कारणसे ग्रहण करके फिर इस कारण रूपी अपवादको छोडकर कार्यरूपी उत्सर्ग पर चलें। इसरीतिसे तो उत्सर्ग अपवाद भगवत-आज्ञा में है परन्तु तुम्हारे जैसा कि खूब मसल२ कर स्नान करना और मन्दिर में खूब काच कागस्या करना, बालों को सवारना, डाढी मूछ को जुदी२ बाधना, खूब सवार२ के केसर का तिलक करना और जिस धोतीसे स्त्रीसगादि सब कामकरना उसी धोतीको आधी पहरना और आधीका उत्तरासन करना और भगवत—असातनादिको न देखना इत्यादि तुम्हारा कृत्य अपवादमें नहीं किन्तु अनाचारमें है। और जो तुमको इसी उत्सर्ग और अपवादका विशेष करके निर्णय देखना होय तो हमारे किये हुए "शुद्धदेव अनुभव विचार" में सत्तावन बोल श्रीवीतराग देव पर उतारे हैं उन सत्तावनबोलों में हेय, ज्ञेय, उपादेय,

उत्सर्ग और अपवाद भिन्न२ दिखाया है सो देखनेसे तुम्हारा सब सन्देह दूर हो जायगा और उपाध्याय श्रीदेवचन्द्रजी कृत चौबीसी के आठवें श्रीचन्द्रप्रभुजी के स्तवनमें उत्सर्ग और अपवाद सेवनाका स्वरूप नैगम नयसे लेकर एवंभूत नय तक अच्छी तरह से विस्तार पूर्वक दिखायाहै सो जिसकी इच्छा हो सो देखलेना और जो तुमने कहा कि भगवतकी भावभक्ति करनेसे तो सदा लाभहै न करनेसे तो करना अच्छा। तो सुनो कि भगवतकी भावभक्तिमें लाभ कहासो तो ठीकहै परन्तु भाव से भक्ति करे तबतो लाभ होय और जहां भाव ही नहीं है वहां भक्ति का लाभ कहांसे होगा ? क्योंकि देखो जो पुरुष अपने मातापिताकी भावसे भक्ति करताहै वह पुरुष अपने मातापिताके वचनको कभी उल्लंघन न करेगा और जो अपने मातापिताका वचन न मानेगा उससे कदापि भावभक्ति न होगी क्योंकि यह अनुभव सबको बैठा हुआहै कि जो पुत्र दास दासी आदिक उनके हुक्ममें चलतेहैं उनकोही अच्छा कहतेहैं और जो उनका हुक्म नहीं मानते और काम काज सब करते हैं परन्तु उनके मालिक उनको कभी अच्छा न कहेंगे और उन पुत्रादिकों को मातापितासे यथावत फलभी प्राप्त नहीं होगा क्योंकि वे उनकी आज्ञा नहीं मानते हैं। इसी रीति से आंख मींचकर बुद्धि से विचार कर विधि को अंगीकारकरो। और जो तुमने कहाकि नहीं करनेसे तो करना अच्छाही है यह तुम्हारा कहनाभी बुद्धिवैकल्य अनसमझका है क्योंकि देखो घी, दूध, दही, अन्नादिक खानेसे मनुष्य सदा पुष्ट होताहै परन्तु जब ताव आदिक चढताहै अथवा और कोई रोग उत्पन्नहो उस वक्तमें ये चीजें रोग को बढानेवालीहैं सो खानेसे रोगकी वृद्धि होगी। इसी रीतिसे अविधिसे

भक्तिभाव करनेवालेको मिथ्यात्वरूप रोगकी वृद्धिके सिवाय और कुछ लाभ न होगा। कदाचित् तुम इसी वातको अगीकार करो कि नहीं करनेसे तो करना अच्छाहै तो ससारमें कोई मिथ्यात्वीही नहीं बनेगा क्योंकि सबही ईश्वरकी भक्ति कररहेहैं जैन और परमतमें किसी तरह का फरकही न रहेगा क्योंकि जब ईश्वरकी भक्तिभावही लाभका कारण है तब परमेश्वरने विधि और अविधि क्योंकही ? नहींतो विधिके अङ्गीकार और अविधिके निषेध से सर्वज्ञके कहनेमें आपत्ति आवेगी। दूसरा औरभी सुनोकि परमेश्वरने दो मार्ग इसीवास्ते कहेहैं एक तो सर्व व्रत दूसरा देशव्रत। देखो विधि पूर्वक सर्व व्रत पालनेकी जिसकी शक्ति नहीं है उसीके वास्ते देशव्रतकी आज्ञाहै। जब करनाही करना श्रेष्ठ होता तबतो दो भेद न होते अथवा पचक्खाण आदिके अनेक भेद कियेहैं सो भेद कदापि न करते इसलिये यह तुम्हारा कहना कि न करनेसे करना ठीकहै तुम्हारी बेसमझीका है। और जो तुमने कहा कि गेहूं चावल न मिलेतो मोठबाजरी खाकर पेट न भरे सो यह कहना तो तुम्हारा ठीकहै परन्तु इस को विचारे विनाही तोतेकी तरह टेंटें करके कहते हो इसकाभी उत्तर सुनो कि जिसकी सर्व व्रत पालनेकी शक्ति न हो वह देशव्रतही पाले अथवा जिसकी तेला करने की शक्ति न होवे सो बेला करे। जिसकी बेला करनेकी शक्ति नहीं हो वह उपवास करे अर्थात् इसी रीतिसे जैसी२ जिसकी शक्तिहो वैसाही पचक्खाणादि करे परन्तु करे विधिसे। इसीलिये हमारा यह कहनाहै कि जो तुमसे पूजन नहीं होतो चैत्यवन्दनहीकरो परन्तु विधि से करो जबतो तुम्हारा मोठ बाजरी का दृष्टान्त ठीक बने परन्तु तुम नामतो लेवो मोठ बाजरीका और भक्षणकरो धतूरेके बीज। सो उससे तुम्हारा पेट तो भरेगा किन्तु उन

बीजोंके नशेमें ऐसे व्याकुल होकर पड़ोगे कि फिर किसी तरहकी सुधि ही न रहैगी इसलिये हे भोलेभाइयो ! हमतो तुम्हारे हितके वास्ते कहतेहैं कि जिसमें तुम्हारा कल्याण हो नतु रागद्वेषसे। और जो तुमने कहा कि जो इस बातको एकान्त थापोगे तो आपकोभी तो लोग साधु कहतेहैं सो आप कौनसी सर्व विधि सेही क्रिया करतेहो इस तुम्हारे कहनेकाभी उत्तर देतेहैं हमारेतो एकान्त थापना नहींहै किन्तुजो भगवत-आज्ञा है उसको तो हम एकान्तही थापते हैं क्योंकि भगवत की आज्ञामें धर्महै सो हम भगवत आज्ञासे युक्त उत्सर्ग अपवाद लिख कर सब समझाते चले आतेहैं फिर तुम एकान्त क्यों कहतेहो। और मुझे लोग जो साधु कहतेहैं इसका तो मैं क्या करूं सो मेरा जैसा कुछ हाल विधि अविधि है सो तो "स्याद्वादानुभवरत्नाकर" के पांचवें प्रश्नोत्तरमें लिखाहै और किंचित् हाल इसी ग्रंथके तीसरे प्रकाशमें लिखा है इसीलिये मैं यथावत् साधुनहीं बनता क्योंकि मुझे मेरा कृत्य दीखता है। और मेरे परणामकी धाराभी ज्ञानी जानताहै या मेरी आत्मा जानती है परन्तु व्यवहारसे तो मैंने जिन-लिंग लियाहै सो इस लिंगसे भांड चेष्टा करताहुआ इस शरीरका निर्वाह करताहूं अर्थात् भिक्षा मांगकर खाताहूं न मैं इधरका हूं न उधरका, लाचारहूं, अफसोस करताहूं कि मेरी क्या गति होगी ! परन्तु मुझे इतनाही आसराहै कि जिस मूजिब मैंने त्याग कियाहै उसी मूजिब द्रव्य,क्षेत्र, काल, भाव, अपेक्षासे अपना निर्वाह करताहूं और श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवका जो वचनहै उसको मेरी बुद्धि के अनुसार निर्भय होकर कहताहूं और किसी के ममत्वभावमें नहीं फंसताहूं क्योंकि मैं गृहस्थीपनमें महा मिथ्यात्वमें पड़ाहुआ स्वामी संन्यासियोंकी सोहबत और सातों कुव्यसनका सेवनेवाला था और जैनमत

का मेरेमें लेशभी नथा परन्तु शुभ कर्मके उदयसे किंचित् ढूढियोंकी सोह्‌बत पायकर किंचित् जैनधर्मको जाना। फिर जिन-प्रतिमाकी आस्था होनेसे तेरहपन्थी दिगम्बर बना फिर उसकोभी पक्षपाती जाना तब दिगम्बरी बीसपन्थीका मत अंगीकार किया। फिर उसमेंभी पक्षपात देखी तब पीछे फिर श्वेताम्बरका मत मानने लगा। इसरीतिसे तो मेराहाल गृहस्थीपनेमें रहा फिर शुभकर्मके उदयसे गृहस्थीपना छूटा तो कुछ दिनतक ओघामुहपत्तीकेबिना लगोटी लगाये अवधूतकी तरह अनेक तरहके मत मतान्तरके पथाइयोंको देखता फिरा परन्तु सच्चे जिनमतकी आस्था दिन२ बढ़तीही गई सो वह आस्था तो मेरे आत्मामेंहै सो ज्ञानी जानता है परन्तु जिस वास्ते मैंने इसलिंगको ग्रहण कियाथा सो मेरा काम यथावत न हुआ क्योंकि इस जैनमतमे नानाप्रकारके भेद होनेसे और दुःखगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवालोंके कदाग्रहसे ऐसा होगया कि "दोनों खोईरे जोगडा मुद्रा और आदेस" और ऐसाभी हुआकि "आहके करनेसे हौलदिल पैदाहुआ, एकतो इज्जत गई दूजा न सौदा हुआ"। इसलिय मैंतो मेरेमें यथावत् साधुपना नहीं मानताहू अलबत्ता वीतरागका जो वचनहै सो मेरीबुद्धि के अनुसार यथावत कहूगा औरजो मेरीबुद्धिमें न आवेगा उसको जोकोई पूछेगा उसको मैं साफ कहदूगाकि भाई मुझको इसबातकी खबरनहींहै इसलिये मैं इसमें कुछनहीं कहसक्ता। औरजो तुमने कहाकि जोलोग करतेंह उस रीतिसे चलना चाहिये क्योंकि बहुतजने करतेहैं सो अच्छाही करतेहोंगे। यह कहनाभी तुम्हारा बहुत बेसमझका है क्योंकि देखो बहुतजने करतेहोंगे सो समझकरही करते होंगे तो बहुतजनोंकी देखादेखी करोतो अनार्य देशमें अनार्यजन बहुत हैं अथवा इस आर्यदेशमें मिथ्यात्वी बहुतहैं और जैनी थोडेहैं तो उन

मिथ्यात्वियोंकी समझ तुम्हारे कहनेसें अच्छी ठहरी इसलिये तुम उन की देखादेखी करतेहो। खैर फिरभी देखोकि जैनियोंमेंभी श्रावक बहुत और साधु थोड़े उन साधुओंमेंभी मुंड बहुत और श्रमण थोड़ेहैं यथोक्तं कल्पसूत्रे "बहु२मुंडा अल्प श्रमणा" और उन श्रमणोंमेंभी प्रणति धर्म वाले थोड़े। इसलिये हेभोलेभाई! यह तेरा कहनाभी महामुड़्ढपनेकाहै और तेरेको इस बहुजनकी सम्मतिपर बहुत देखना होयतो श्रीयशोविजयजी के साढे तीनसौ गाथाके स्तवनकी पहली ढालमें बहुजन सम्मति पर बहुत लिखाहैसो वहांसे देखलेना। वह स्तवन प्रकरण रत्नाकर के पहिले भागमेंहै सो प्रसिद्धहै। और जो तुमने कहाकि आपकी बराबर क्या पहलेके लोगोंमें बुद्धि नहींथी सोतो नहीं, किन्तु पहिलेके लोगतो विशेष बुद्धिमानथे। यह कहनाभी तुम्हारा ठीक नहींहै क्योंकि देखो जो विशेष बुद्धिमान होतेतो एक जैनमतमें अनेक भेद क्योंकर डालते और गच्छोंके भेद वा ढूंढिया तेरहपन्थी वा सम्वेगी आदि नाना प्रकारके भेद होकर थाप उत्थाप न करते क्योंकि कदाग्रह करना बुद्धिमानों का काम नहींहै किन्तु निर्बुद्धिवालोंकाही कामहै। बुद्धिमान उसीको कहतेहैंकि जो बीतरागके वचनको यथावत् कहै क्योंकि देखो पहलेके जितने बुद्धिमानथे उनके कथनभी इकसारहीथे जबसे यह जिनमतमें निर्बुद्धिमान अर्थात् अल्पबुद्धिवालेहुए तबसेही नानाभेद होकर थाप उत्थाप पक्षपात चलनेलगी और अगले जो सतपुरुष श्रीवीतरागके यथावत् मार्गके कहनेवालेथे उनके रचेहुए ग्रन्थोंके देखनेसे तो मेरी बुद्धि किंचित्‌भी नहीं किन्तु उनके रचेहुए ग्रंथोंको देखकर मैंभी (जैसे समुद्रमेंसे कबूतरकी चोंच जल भरलावे उस माफिकभीतो मैं नहीं परन्तु उन ग्रंथोंके देखनेसे चित्त प्रफुल्लित होकर) किंचित् आश्रय

लेशमात्र कहताहूंसो मेरेमें कुछ बुद्धिहैनहीं, परन्तु मेरी तुच्छबुद्धि अर्थात अल्पबुद्धिकी यही शिक्षाहैकि हे भव्यप्राणियो! जो आत्माके अर्थ की इच्छाहै तो विधिको अगीकारकरो जिससे तुम्हारा कल्याणहो और अविधिके करनेसे अकल्याण होताहै इसलिये शास्त्रोंमें जगह२ विधि कहीहै। और रात्रिमें जिनमन्दिरमें जाना इसलिये शास्त्रोंमें निषेध कियाहै कि जो लोग रात्रिमें मन्दिर जायगेतो अविधि होगी और अविधि होनेसे अकल्याणभी होगा क्योंकि देखो एकतो भगवतकी आज्ञा अविधि करने की नहीं दूसरे जिनराजकी असातना होगी क्योंकि जिनमन्दिरमें जो लोग जातेहैंसो अपने कल्याणकेवास्ते जातेहैं इसीलिये श्रीतपगच्छनायक श्रीहीरविजयसूरिजी अपने प्रश्नोत्तरमें रात्रिकी आरती करनाभी निषेध करतेहैं यथा "श्राद्धानांजिनालयरात्रौआर्तीउतारनना" ऐसा उनका वचन है इसलिये शास्त्रोंमें कहाहैकि आरती सूर्यकी साक्षीसे करना और फिर मन्दिरजीके पट मगल करदेना अर्थात् बन्धकरदेना तो जब परमेश्वरकी आरती कियेकेबाद पटमगल अर्थात् बन्दहोगयेतो फिर श्रावकोंका जाना रात्रिमें क्योंकर होसक्ताहै और इसीरात्रिकेवास्ते श्रीजिनवल्लभसूरिजीने सघपट्टाग्रथमें अविधिका वर्णनकियाहै उसजगह रात्रिमें जिनमन्दिरमें जाना निषेध कियाहैसो १७वें श्लोकसेलेकर २२वें श्लोकतक अविधिमार्ग से जिनमन्दिरमें पूजाआदि कृत्य और रात्रि आदिका अच्छीतरह निषेध कियाहै सो मैंने एकसूत्रकानाममात्र रात्रिमें श्रावकको नहीं जानेका ठिकाना बतायाहै जिसकी इच्छाहोसो उसमेंसे देखलो। इसजगह नहीं लिखनेका कारण यहीहैकिजो उन श्लोकोंको और उनकी टीकाको लिखूं तो संस्कृतहोनेसे हरएक जिज्ञासुकी समझमें न आवे और उसकी भाषा बनाकर लिखूतो ग्रन्थबहुत बढजाय इसभयसे इसजगह न लिखा। अब

हमारी भव्यजीवोंसे यही शिक्षाहै अर्थात् यही उपदेशहैकि विधि सहित श्रीवीतराग सर्वज्ञदेवके वचनको अंगीकारकरो, जिससे मुक्तिपद जाय वरो, फिर कुगुरुकासंग कभी न करो, मिथ्यातको परिहरो, क्यों नाहक झगड़ेमेंपड़ो, संसारके जन्म मरणसे डरो,हमारी इस शिक्षाको हृदयमेंधरो, अब तुम सत्यगुरुकी चरणसेवाकरो। इसरीतिसे जिनमन्दिरमें चैत्यवन्दन वापूजा अविधिका निषेधकर विधिको अंगीकारकरके भव्यजीवोंको अपनी आत्माका कल्याणकरना चाहिये। इसरीतिसे मन्दिरजीकी किंचित विधि कही ॥

अब तीर्थयात्रा करनेकी विधि भव्यजीवोंकेवास्ते कहतेहैं सो सुनो। प्रथमतो तीर्थशब्दका अर्थ करतेहैंकि तीर्थ क्या चीजहै तीर्थ शब्दकी धातु कहतेहैंकि "तृपलवनतर्णयो" इस धातुका तीर्थशब्द बनताहै इस का अर्थ क्या हुआकि "तारयेतिइतितीर्थ" जो तारे उसकानाम तीर्थहैसो तीर्थ दो प्रकार का है एकतो जंगम दूसरा स्थावर। सो जंगम तीर्थ में तो आचार्य उपाध्याय साधु आदि हैं क्योंकि वेभी उपदेशसे ज्ञानकराय कर साक्षात् मोक्ष मार्गको बतलाते हैं और जन्म मरण मिटाते हैं और संसार रूपी जो समुद्र है उसमें से तारकर मोक्ष में पहुंचाते हैं इसलिये वे तारनेवाले हुए सो उनको जंगम तीर्थ कहते हैं। अब दूसरा स्थावर तीर्थ सुनो कि श्री सिद्धाचलजी गिरनारजी शिखरजी आदि तीर्थ हैं अथवा जहां तीर्थकरों की जन्मभूमि अथवा दीक्षाभूमि, केवल ज्ञान उत्पन्न वा निर्वाण भूमि आदिक अनेक तीर्थ हैं सो जिस २ जगह भगवान का कल्याण होता है वह भूमि सब तीर्थ रूपी है उन तीर्थों में जाय कर यात्रा करना। वह यात्रा भव्य जीवों को कल्याणकारी है इसलिये ये स्थावर तीर्थ हैं॥

शका—अजी आपने आचार्य आदिक जगम तीर्थ कहे सो तो ठीक है परन्तु भूमि पर्वत आदिकों को तीर्थ कहे सो वेकैसे तारें ? क्यों कि वे आप ही जगमरूप अज्ञान में हैं सो उनको तीर्थ कहना किस रीति से बनेगा ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय हमको मालूम होताहै कि तेरे को किसी आर्यसमाजी वा ढूंढिया तेरहपन्थी अथवा दादूपन्थी कबीर पन्थी आदिक पथाइयों का सग होकर अज्ञानरूपपवन का झपट्टा लगा है क्योंकि वे लोग शास्त्र का रहस्य तो समझते नहीं केवल मनोकल्पनासे हठकदाग्रह करतेहैं सो उनका अज्ञान दूरकरने को और तेरा सन्देह मिटानेके वास्ते शास्त्रानुसार युक्ति कहतेहैं उस को सुन। कारणके विना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती इसलिये कारण अवश्यमेव होगा और कारण उसीको कहेंगे कि जो कार्य उत्पन्न करे और जिससे कार्य न होय वह कारण नहीं। तो इस जगह विचार करो कि श्रीसिद्धाचलजी श्रीगिरनारजी श्रीआबूजी आदिक तीर्थ सत्य कारण हैं सो इनकी सत्यता दिखातेहैं। किसी सत्पुरुष ने उपदेश दिया कि आत्माका कल्याण करो तब जिज्ञासु पूछनेलगा कि महाराज ! आत्माका कल्याण किस रीतिसे होवे सो कहो ? तव उपदेशदाता कहने लगा कि भोदेवानुप्रिय भावमे भगवत की भक्तिरूपस्मर्ण करके एकान्तमें अपने आत्मस्वरूप को विचारो। जब वह जिज्ञासु कहने लगा कि महाराज मैंतो पुत्रकलत्रादि ससार के अनेक हेतुओं में फसा हुआ बैठाहू सो मुझसे तो एकान्त बैठकर कुछनहीं होसक्ता। जब वह उपदेश दाता कहनेलगा कि भोदेवानुप्रिय! शास्त्रों में ऐसा कहाहै कि श्रीसि- द्धाचलजी आदिक तीर्थों पर जाय और उस भूमिको स्पर्शकरे और ई-

श्वर—भक्ति से अपने आत्मस्वरूपका विचार करे तो जल्दी कल्याण हो। इस वाक्यको सुनकर आत्मार्थी भव्यजीवको इच्छा हुई कि मैं तीर्थयात्रा करूं जिससे मेरा कल्याण हो क्योंकि इस जगहतो पुत्र कलत्रादिकोंके जाल में फंसाहुआ जन्मभरमें भी शुभकृत्य न करसकूंगा परन्तु तीर्थमें दोचार मास लगेंगे तो उतनाही लाभ होगा। ऐसा विचार करके घरसे निकला और तीर्थके जानेआनेमें उसको दो चार महीने लगे उन दो चार महीनोंमें झूट, कपट, छल, रागद्वेष आदि संसारी कृत्यसे निवृत्त हुआ और जबतक यात्रा करके घर न आया तबतक धर्मादि कृत्यकोही करता रहा। सो यात्राकी विधि तो हम नीचे लिखेंगे परन्तु इस जगह प्रसंगागत कारण को सिद्ध करनेके वास्ते युक्ति दिखाईहै। सो अब विचार करोकि वह तीर्थ स्थापन न होता तो संसारीकृत्यका छूटना और धर्मादिक कृत्यका करना निरंतर दो चार महीने तक नहीं बनता इसलिये दोचार महीने धर्मध्यान का करानेवाला वह तीर्थ ठहरा इस हेतुसे वह स्थावरभी तीर्थही सिद्ध होगया। इसलिये वहभी तारनेवालाहीहै इस हेतु वा युक्तिसे श्रीसिद्धाचलजी श्रीगिरनारजी श्रीआबूजी आदिक तीर्थ सिद्ध होगये। अब आत्मार्थी भव्य जीव हैं उनको इन तीर्थोंकी यात्रा करके अपना जन्म सफल करना आवश्यकही ठहरा तो अब उन भव्य जीवोंके वास्ते शास्त्रोक्त विधि कहतेहैं कि जो भव्य जीव आत्मार्थी तीर्थ करने को जाय वह शास्त्रोक्त विधिसे ६ 'री' पालता जाय। उन ६ 'री' का स्वरूप दिखातेहैं। कि प्रथमतो 'पगचारी' अर्थात् यात्रा करनेवाला पगों से चले किसी सवारी पर न बैठे, यहतो प्रथम 'री'का अर्थ हुआ। दूसरा 'दोनों वक्त प्रतिक्रमणकारी' कोई इस जगह ऐसाभी कहतेहैं कि

'व्रतधारी' और कोई ऐसाभी कहतेहैं कि 'समकितधारी' इन तीनोंका अर्थ ऐसाहै कि 'दोनों वक्त प्रतिक्रमणकारी' कहनेसे तो दोनों टक प्रतिक्रमण करे अर्थात् रात्रिकी आलोयणा तो सवेरेके प्रतिक्रमणमें करे और दिनभरकी आलोयणा सध्याके प्रतिक्रमणमें करे । और जहां व्रतधारी कहाहै उस'री'का अर्थ यहहै कि१२व्रतमेंसे जैसा जिसकी खुशी होय उसी तरहके व्रत का धारणकरनेवालाहो और जिस जगह समकित अगीकार करे उस समकितधारीकी तो यात्रा सबसे उत्तमहै परन्तु उस समकितकी खबरतो ज्ञानीहीको मालूम पडे परन्तु इस जगह हम शुभव्यवहारका वर्णन करतेहुए शुद्धव्यवहारकी प्राप्ति होनेकी इच्छासे कहरहेहैं। तीसरी'री'को कहतेहैं कि सचित परिहारी इस 'री' के कहनेसे यह अभिप्राय है कि यात्राकरनेवाला सचित (कच्ची) वस्तु न खाय। अब चौथी 'री' कहतेहैं कि 'एकत्र आहारी' इस 'री' का अर्थ यह है कि यात्रा करनेवालेको दिन रात में एक दफा आहार अर्थात् भोजन करना दसरी दफा न खाना । परन्तु इस जगह रात्रिमें भोजन नहीं किन्तु दिनमेंही करना । अब पाचवीं 'री' कहतेहैं कि 'ब्रह्मचारी' इस 'री' का प्रयोजन ऐसाहै कि स्वस्त्रीका भी त्यागकरे अर्थात् स्त्रीसे विषय नकरे । अब छठी 'री' कहतेहैं कि भूमीसथारी इस 'री' का यह प्रयोजनहै कि भूमी अर्थात जमीन पर सोवे इसरीतिसे ६'री' पालता हुआ यात्राकरने को जाय इसरीतिसे भव्य जीव यात्राकरे उसीके ताईं सर्वज्ञदेवने यात्राका यथावत फल कहाहै । अब यहां कोई ऐसी शका करे कि छे 'री' कहनेका प्रयोजन क्याहै और इन छे'री' पालनेसे विशेष लाभ क्याहै इस सन्देहको दूर करने के वास्ते मेरी बुद्धिके अनुसार छे 'री' पालनेका अभिप्राय कहताहू

सो सुनो। प्रथम जो पगचारी कहा इस 'री' का तात्पर्य यहहै कि जब पैदल चलेगा तो जमीनको देखता हुआ नीची निगाहसे कीड़ीमकोड़ी आदिक बचाताहुआ रस्तेमें जैना से चलेगा और जोपुरुष जमीनको जैना से देखताहुआ चलताहै तो उसको हिंसा आदिक नहीं लगती एकतो यह लाभ। दूसरा जब कि पैदल चलेगा तो ६तथा ७कोस तक जायगा तो रस्तेमें अनेक तरहके गांव नगर आदि आतेहैं उनमें श्रीजिनराजके चैत्य अर्थात् मन्दिरों की भक्ति और देव दर्शन जगह२ का होना अथवा जगह २ के साधर्मियांसे मिलना और उनसे अनेक तरह की धर्मविषयमें भावभक्ति से प्रीतिका बढ़ाना क्योंकि साधर्मीका संग होना कठिनहै। तीसरा और सुनो कि जो पैदल चलने वालाहै उसको आत्मार्थी भाविक आत्मा प्रणिति धर्मके जाननेवाले साधु अक्सर करके जंगल झाडी पहाड़ आदिमें रहते हुए तिनका उस भव्यजीवको दर्शन होजाय अथवा वे साधुमुनिराज गांव नगरआदिक में आहार लेनेको आवें उस वक्तमें उनका दर्शन होजाय अथवा वे साधु लोग किसी गांवनगरमें भव्यजीवोंको देशना देतेहुए मिलें इस रीतिसे उन मुनिमहाराजों को शुद्धआहार आदिकभी देनेमें आवे इत्यादि अनेकलाभोंका कारण पैदल चलनेवाले भव्यजीवोंको प्राप्तहोताहै इसलिये पगचारी कहा। अबदूसरी 'री' का स्वरूप कहते हैं कि जो दोनों वक्त प्रतिक्रमण करनेवालाहै उसके हालतो जो पहली छै 'री' में कहीहुई रीतिसे कोई तरहका संसारी दूषण लगताही नहीं और जो किंचित् दूषणादि लगताहै सो प्रतिक्रमण करनेसे रोजका रोज शुद्ध होजाताहै सो प्रतिक्रमण की रीतितो हम छठे प्रकाशमें कहेंगे वहां से यथावत जानलेना। अथवा प्रतिक्रमण नहीं करसके तो व्रतधारीहो

अथवा 'समकितधारीहो'। अब तीसरी 'री' का स्वरूप कहतेहैं कि 'सचित् परिहारी' कहने का प्रयोजन यहीहै कि हरीलीलोती आदि कुछ भक्षण नकरे क्योंकि सचित् वस्तु से इन्द्रिया पुष्ट होतीहैं और जोइन्द्रिया पुष्ट होंगी तो मनकी चचलताभी होगी जब मनकी चचलता होगी तो विषयमें चित्त जायगा और धर्म्ममें नहीं रहेगा। इसलिये सर्वज्ञदेवने इन्द्रिया प्रबल नहोने के वास्ते सचित का परिहार कहाहै। अब चौथी 'री' का स्वरूप कहतेहैं।देखो 'एकलआहारी' अर्थात एक दफाभोजन करने का यही अभिप्रायहै कि एकतो भोजन करनेवाले को अजीर्ण नहीं होता और आलस्य भी नहीं होताहै और चित्तभी शान्त रहताहै और दूसरीदफा रसोई करनेकाभी आरमसारम नहीं रहता और एक दफा भोजन करनेवालेको आठ पहर धर्मक्रिया करनेमें फुर्सत मिलतीहै। इसलिये श्रीअरिहन्त भगवन्तने यात्रा करनेवालेको एकदफा आहार करना कहाहै। अब पाचवीं 'री'का स्वरूप कहतेहैं कि ब्रह्मचारी अर्थात स्वस्त्रीसे भी भोग न करे क्योंकि स्त्रीसे विषयकरनाही अनेक अनर्थोंका हेतुहै, और चित्तकी चचलता करनेवालाहै। जब चित्तकी चचलता होगी तब यथावत धर्मध्यानभी न होगा इसलिये जिनेश्वर देवने यात्राकरनेवालेको 'ब्रह्मचारी' कहा। अब छठी 'री'का स्वरूप कहतेहैं कि 'भूमिसथारी' अर्थात जमीनपर सोवे क्योंकि जो जमीनपरसोनेवालेहैं उनको निद्रा कम आतीहै क्योंकि जमीनमें कडापन होता है सो उस कडेपनके सबबसे निद्रा कम लेताहै उस निद्रा कमहोनेसे जागना विशेष हुआ। जो पुरुष रात्रिमें जियादा जागतेहैं उनका चित्त प्राय करके एकत्र होजाता है जब चित्तकी एकाग्रता होगी तो धर्म ध्यानभी विशेषही होगा। इसलिये जगतगुरु जगबन्धु जगन्नाथने म-

व्यजीवोंको तारनेके वास्ते यात्रीको भूमिपर शयन करना कहाहै । इस रीतिसे इस जगह इन छै 'री'का स्वरूप कहा सो भव्यजीव आत्मार्थी विधिसहित तीर्थोंकी यात्राकरके अपना जन्म सफल करें ॥

शंका—आपने जो यात्राकी विधिका वर्णन किया सो तो शास्त्रानुसार है परन्तु इसरीतिसे अव्रती समकितदृष्टिकी यात्रा तुम्हारी लिखी विधिसे न होगी क्योंकि वह अव्रतीहै तो तुम्हारी कहीहुई 'री' को कैसे पालसकेगा ? तब उसकी यात्रा भगवतआज्ञामें कैसे होगी ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! इस तुम्हारी शंकाका उत्तर ऐसाहै कि प्रथमतो मैंने शास्त्रोंमें विधिथी सो कही दूसरा अव्रती समकितदृष्टि प्रायःकरके ज्ञानीकी दृष्टिमें आतेहैं नतु उनकी समकित हरेकको मालूम होतीहै । और इस जगह व्यवहारसे कथनहै इसलिये यह तुम्हारी शंका बनती नहीं परन्तु इस जगह कथनतो मनुष्यों का है और अव्रती समकितदृष्टि तो प्रायःकरके देवलोकादिमें होतेहैं और मनुष्योंमेंतो कोई२ क्षायकसमकितवाले अव्रती होयं तो उनकी उत्तमता तो ज्ञानी वर्णन करसके और ऐसे उत्तम पुरुषकी यात्राकाभी वर्णन वही करसकेगा। ऐसे अव्रती समकितधारी पुरुषोंकी यात्राकी विधि अविधि कहनेकी सामर्थ नहीं किन्तु ज्ञानी जाने। हां इतना कहसक्तेहैं कि ६'री' न पाले और समकितधारी जो उत्तमपुरुषहैं तो उनकी यात्राभी उत्तमही फलकी देनेवाली होगी आगेतो बहुश्रुत कहै सो ठीक। मेरे इस कहनेमें कुछ आग्रह नहीं, इस कथनमें जो श्रीबीतरागकी आज्ञाविरुद्ध होय तो मैं मिथ्यादुक्कडं देता हूं ॥

शंका—आपने जो शास्त्रोक्त विधि कही सो तो चौथे कालकी विधि होगी वर्त्तमान काल की तो नहीं क्योंकि जो चौथे आरेमें अवि-

धि करते तो उनको दूपण वहुत होताथा अब तो पंचम काल है सो चौथे आरे केसे संग्रहणादि नहीं हैं इसलिये जो आपने विधि कही सो तो बननी कठिनहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! हमने तो इस पचम कालमें जो शास्त्रहैं उनके अनुसार विधि कहीहै और ये शास्त्र पचमआरेके अन्ततक रहेंगे अलवत्ता शास्त्रके जाननेवालेगीतार्थ दिनवदिन कम होतेचले जायगे परन्तु शास्त्रसे आचार्योंने पंचमकालके भव्यजीवोंके वास्तेही विधिलिखीहै। ऐसातो किसी शास्त्रमें लिखाहीनहीं कि जो विधि हम कहते हैं पचम कालके भव्यजीवोंकेवास्ते नहींहै कदाचित् किसीशास्त्रमें ऐसा लिखा होतो हमकोभी दिखाओ नहींतो तुम्हारी मनोकल्पना और इन्द्रियों के विपय भोग मजा करनेके वास्ते कहनाहै आत्माका अर्थ करनेकी इच्छा तुम्हारी नहीं। और जो तुमने कहाकि अविधिका दूपण चौथे आरे में लगताथा और अभीके कालमें नहींहै यह कहना तुम्हारा वेसमझ का है क्योंकि जो चौथेआरेमें मनुष्यादि जहर खातेथे सो मरतेथे या नहीं तो तुमको कहनाहीपडेगा कि जो चौथेआरेमें जहरखातेथे सो तो जरूरमरतेहीथे तो इस पचमकालमें जो मनुष्य जहरखायगा सो मरेगा कि नहींतो तुमको कहनाही पडेगा कि जो जहरखाताहै वह तो मरता हीहै। तो जो जहरखानेसे चौथेआ० पाचवेंआरेमें मरताहै तो अविधिभी वतौर जहरकेही ठहरी तो जो चौथेआरेमें अविधि करनेसे पाप लगता था और पचमकालमें अविधि करनेसे पापनहीं लगता यह तुम्हारा कहना मनोकल्पित मिथ्याहै। इसलिये अविधि के करनेसे तो सवही दानपूजा व्रतपचखाणादि निष्फल हैं ॥

शका—आपने कहासो तो ठीक परन्तु इस वक्तमें कोई पैदल

यात्राकरनेको जातानहीं और दूसरे इस अंगरेजीराजमें रेलके चलने
यात्राकरना सबको सुगम होगया सो यात्रा करनातो अच्छाहीहै ॥

समाधान—भो देवानुप्रिय ! तुमने जो कहाकि अबतो क
उसरीतिसे यात्रा नहीं करताहै सो इसमें तो हमारा कुछ जोर न
क्योंकि हमारी कुछ हुकूमतनहीं जो भव्यजीव आत्मार्थी हो
सो तो शास्त्रोक्त विधिसेही यात्रा करेगा और जो तुमने कहाकि अंगरे
राजमें रेलके होनेसे यात्रा सुगम होगई सो यात्रा तो सुगम हो
किन्तु बम्बई कलकत्ता आदि बड़े२ शहरों की सैर करना भी
सुगम होगया । देखो यात्राका तो केवल नाम लेतेहैं और कलक
बम्बई आदिकी सैर करनेके वास्ते जातेहैं कि चलो यात्राभी
जायगी और वेभी नजीकहैं सो देखते आयंगे और उसजगह उम्द
वनस्पति भी सस्ते भावकी मिलतीहैं सो खायंगे और कोई सस्ता अ
लाभकारी सौदाभी खरीदलायंगे कि जिससे खर्चाभी निकलजायगा । इ
अपेक्षासे बहुतलोगों ने यात्राको सुगम मानलीहै क्योंकि "आम के आ
और गुठलीके दाम" सो इसरीतिकी यात्रातो भगवतकी आज्ञामें न
है किन्तु तुम्हारे मनोकल्पितशास्त्रोंमें होय तो न कहें । अजी कुछ बु
से विचारतो करो कि रेलतो गदरके पीछेसे चलीहै और तमाम मुल्क
फैलती चलीजातीहै सो जब रेल नहींथी तबभी भव्यजीव आत्मार्थी
यात्राकरतेही थे और विधिभी होतीहीथी परन्तुइस रेलके चलनेसे य
तो नहीं किन्तु धमाधम होरहीहै क्योंकि देखो रेलके होजानेसे लोग
क२ बातके वास्ते बोल्यारी बोलतेहैं कि मेरी अबकी बीमारी आराम
जावे तो हेकेसरियानाथ ! हम यत्राकरेंगे । म्हारे पुत्र होगा तो ५ वर्ष
बाद चोटी उतरवाऊंगा और आपका दर्शन करूंगा अथवा अद-

म्हारे इस रोज़गारमें पैदा होगी तो नौकारसी आयकर करूगा अथवा हेकेसरियानाथ ! मैं आपके इतनी केशर चढाऊगा अथवा जबतक यात्रा नहीं करूगा तबतक घी या तेल नहीं खाऊगा इत्यादिक अनेक प्रकार के ससारी कामोंके वास्ते लोग खण लेतेहैं और यात्राको जातेहैं और कितनेही लोग नामतो यात्राका करतेहैं और अपना रोजगार करते फिरतेहैं इत्यादि अनेक व्यवस्था करके लोगोंने शास्त्रोक्त विधितो मिटादी और अपने मनोकल्पित ससारी कामके वास्ते अथवा कितनेही लोग आजीविकाके वास्ते यात्राका नाम लेकर फिरतेहैं और कितनेही अपनी मानबडाई कीर्त्ति लोगोंमें जतानेके वास्ते यात्राको जातेहैं नतु आत्माके अर्थके वास्ते । हा ! इस जैनमतमें कैसी व्यवस्था बिगडरहीहै कि जैसे मिथ्यात्वीलोग मरनेके समय उसके नातेरिश्तेवाले अथवा उसकी जातिके लोग इकट्ठेहोकर जब उसके प्राण घटघटीमें आवें उस वक्त उससे जबरदस्ती कहके अन्न लाडूपेडाआदि पुणयदान करातेहैं उसी तरहसे इस जैनमतमेंभी होनेलगा । क्याहोने लगाकि जब कोई अत्यन्त बीमार हुआ और बचनेकी आशा न रही तब उसको कहतेहैं कि तू कुछ मन्दिर उपासरेके ताईं ,कर । उस मरनेके समय उससे जबरदस्ती घीचन्दन थोडी बहुत केसर और जो मातबर हुआ तो २—४ रुपया नकद इसरीतिसे मन्दिरोंमें भिजवातेहैं । जब मन्दिरमें घीकेसर पहुंचतीहै तब लोग देखतेहैं कि वह मरनेवालाहै क्योंकि मन्दिर में चन्दनघी आगया अब कुछ बाकी नरहा । इसरीतिके मनोकल्पित व्यवहार चलायकर उलटी जैनमतकी व्यवस्था बिगाडकर धर्मकी हीलना करातेहैं । अहो अरिहन्तभगवन्त वीतरागसर्वज्ञदेवका धर्मतो जन्म मरण मिटानेवालाहै उसके दु खगर्भित मोहगर्भित वैराग्यवाले कुगुरुओंने

और उनके दृष्टिरागवाले गृहस्थियोंने और मिथ्यात्वियोंकी देखादेखी इस जैनधर्ममेंभी संसारी कृत्य प्रचार कररक्खे हैं और जो शास्त्रोंमें आत्मार्थ अथवा जन्ममरण मिटानेके वास्ते विधि कहीहै उसविधिको उठायकर अपनी मनोकल्पित विधियोंको स्थापतेहैं और नाना प्रकारके झगड़े कदाग्रह मचातेहैं। इसलिये हे भव्यप्राणियो! जो तुमको इस जिनमतकी चाहनाहै और अपनी आत्माके कल्याण करनेकी इच्छा हैतो जितनी तुम्हारी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे शक्ति होय उतनाही जिनाज्ञा सहित कृत्य करो जिससे तुम्हारा कल्याणहो नतु लोगोंकी देखादेखी अथवा मानबड़ाईके वास्ते करनेसे फलहै। इसरीतिसे किंचित् यात्राकरनेकी विधि कही, विशेष दिनकृत्य श्राद्धविधिआदि ग्रंथों से जानलेना ॥

अब भव्यजीवोंके वास्ते स्वामीवत्सलकी विधि अथवा स्वामी वत्सल शब्दका जो अर्थहै सो लिखतेहैं। प्रथम स्वामीवत्सल शब्दका अर्थ ऐसा होताहै कि स्वामी कहिये साधर्मी उसकी जो वत्सलता कहते सहायता देना उसका नाम स्वामीवत्सलहै। अब साधर्मीका अर्थ करतेहैं कि सरीसी (समान) क्रिया और श्रद्धाहै जिसकी उसका नाम साधर्मी है और जिन पुरुषों की एकसमाचारीहो अर्थात् धर्मकृत्य में कोई तरहका भिन्नपना नहीं अर्थात् उसक्रियामें और क्रियाकी जो विधि अर्थात् समायक प्रतिक्रमण व्रत पचक्खाणादि उनके करनेमें वा उच्चारनेमें कानामात्रकाभी फर्क नहीं ऐसी क्रियाआदि पर जो विश्वासहै जिन्होंका इसरीतिकी समुदायका जो मिलन उनहीका नाम साधर्मीहै जैसे देखो श्रीवर्द्धमानस्वामीके १५६००० श्रावक और ३१८००० श्राविकाथीं परन्तु इनसबोंकी श्रद्धा अर्थात् विश्वास और

क्रियामें कोई तरहका फर्क नहींथा ऐसी जो समुदायके लोग वे आपसमें साधर्मी हैं नतु भिन्न श्रद्धा वा भिन्न समाचारीवालोंका साधर्मीपना। वत्सलता अर्थात् सहायतादेना उसका अर्थ करतेहैं कि कोई श्रावक अशुभ कर्मके उदयसे धन करके हीन बहु परवारीहै सो आजीविका के वश करके उससे यथावत धर्मकृत्य नहीं होता ऐसे श्रावकको धर्मकृत्यमें हीन जानकर यथावत धर्मकृत्य करानेके वास्ते दूसरे स्वामि भाई अर्थात श्रद्धालु श्रावक उसको सहायतादें किसमेंकि जिससे उस की यथावत आजीविकाहो और उसके धर्मकृत्यमें हानि न पडे क्योंकि आजीविका सम्पूर्ण न होनेसे उस आजीविकाकी फिकर से चित्तमें चचलता रहतीहै और चित्तकी चचलता होनेसे धर्मकृत्य यथावत नहीं बनता इसलिये वे साधर्मी भाई उस धनहीन श्रावककी धनादि अथवा गुमाश्तगीरी आदिसे लेकर अनेकरीतिसे उसकी वत्सलता अर्थात् सहायता करें उस धर्मकृत्यके करनेसे उसको बहुत लाभ अर्थात् परम्परासे मोक्ष प्राप्त होगी इस लाभ के करानेमें जो सहायतादेना वही स्वामीवत्सल है नतु एक दिन दो दिन पेटभरकर जिमाना स्वामीवत्सलहै । दूसरा औरभी सुनो कि किसी साधर्मी भाई पर राजआदिकका सकट पडे उसमें उसको सहायदेना अथवा किसीका कर्जा आदिक देनेसे धर्मकृत्य न बनता हो अथवा मांदा दुःखी आदिक नानाप्रकार के क्लेशोंमें पडेहुए साधर्मीको देखकर उसको उन क्लेशोंसे निकालकर जिनाज्ञा सयुक्त विधिसे धर्मकृत्यमें लगाना अर्थात् कराना, उसीका नाम स्वामीवत्सल है नतु ससारी रीतिके वास्ते सहायतादेना ॥

शंका—अजी आपने कहासो तो ठीकही है परन्तु जीमनेका स्वामीवत्सल अगाडीभी श्रावककरतेथे क्योंकि देखो पुष्कलादिने चार

प्रकार का आहारनिस्पादन अर्थात् बनाकरके आपसमें मिलकरके भो-
जनकिया सो यह अधिकार श्रीभगवती आदिसूत्रोंमें कहाहै फिर आप
जीमने के स्वामीवत्सलको क्यों निषेधकरतेहो क्योंकि यहतो साधर्मियों
को जिमाना और जीमनाहै सो स्वामीवत्सलहीहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! असल स्वामीवत्सलतो जो हमने
कहाहै सोहीहै और जो साधर्मीभाइयोंको जिमानाहै सोभी हमकुछ
बिलकुल निषेध नहीं करतेहैं किन्तुअच्छाहै परन्तु जो हमने साधर्मी
का लक्षणकहाहै कि जिनकी एक क्रिया और श्रद्धाहै वे दोचार, दस
बीसमिलकर जैनासे आहारादिक बनायकर आपसमें मिलकर जीमें तो
कुछ हर्ज नहीं क्योंकि देखो श्री 'भगवतीजी'में सावत्थीनगरीके श्रावक
दोचारजने आपसमें मिलकर ऐसा विचारकियाकि आज चारप्रकारका
आहार बनायकर अपन साधर्मीभाई इकट्ठाहोकरजीमें और फिर अपन
सर्व्वजने देसाउगासी आदिक धर्मकृत्य करें सो इसका विस्तार तो श्री-
'भगवतीजी' सूत्रके १२शतक और पहले उद्देसामें कियाहै सो उसरी-
तिसे जो तुमलोग करो तो अनुमोदना करनेके योग्यहै परन्तु वर्त्तमान
कालमें तुमलोग जिसरीतिसे कररहेहो उसी रीतिको देखकर श्रीआत्मा-
रामजी इस तुम्हारे स्वामीवत्सल जीमनादिकको गधाखुरकनी बतातेहैं
सो उनकी धर्म्म विषयक प्रश्नोत्तरकी पुस्तकके १७३वें पृष्टमें देखलेना ।
इस हमारे लिखे शब्दको सुनकरतो तुमलोगोंको बुरा मालूमहोगा,
परन्तु जो इस शब्दका भावार्थ बुद्धिपूर्वक विचारो तो कदापि यह श-
ब्द बुरा न लगेगा। और उसभावार्थको समझकर, इस ऊंधी रीतिको
छोड़कर यथावत रीति करोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा क्योंकि
देखो जो वर्त्तमानकालमें स्वामीवत्सलकी रीति होरहीहै सो स्वामीव-

त्सलतो नहीं किन्तु धामीवत्सल और मुर्चरीवत्सलतो है। सो हम इन दोनों शब्दों का भावार्थ सहित मतलब दिखाते हैं कि यह धामीवत्सल और मुर्चरीवत्सल कैसे हैं ? सो प्रथम धामीवत्सलका मतलब सुनो कि प्रथम तो लोगोंके जीमनेके वास्ते वस्तु हलवाई आदिक बनाता है सो वह हलवाईभी मिथ्यादृष्टिहै इसलिये उस हलवाईसे जैनियोंके माफिक यत्ना कभीभी न होगी। दूसरा उसमें कामको करानेवालाभी एक दो श्रावक मुखतियार होताहै सो तो केवल हुक्म करनेवालाहै और कामकाज करनेवाले मिथ्यादृष्टि सेवक या मन्दिरके गुमाश्ता आदिक होतेहैं अथवा किसीके यहा विवाहादिक हुआ और उस का माल बच-रहा उसकोभी ये लोग स्वामीवत्सलादिक में लगातेहैं। इन दोनों रीति-योंका आहार उत्पन्नहुआ थका धर्मकृत्यमें गिनना कदापि ठीक नहीं। इसलिये प्रथमतो अयत्नासे चार प्रकारका आहार उत्पन्न करना अधर्म है। दूसरी औरभी सुनो कि जहां साधर्मी भाइयोंका इकट्ठा होनाहै उस जग-ह आपसे आपही इकट्ठे होतेहैं कदाचित् कोई साधर्मी भाई न आवे तो साधर्मी उसको बुलानेको जावे परन्तु जैसे आजके वक्तमें सेवक न्योता देने जाताहै इसरीतिका न्योता स्वामीवत्सलका नहीं किन्तु न्या-तजातकाहै। तीसरी और सुनोकि जब सब लोग इकट्ठे होकर जीमने को बैठतेहैं उसवक्त गद्दी और पाटा लगाये जाते हैं तो अब विचार क-रोकि गद्दी और पाटा कुछ श्रावकतो लावेगाही नहीं किन्तु मजूर लावेगा सो मजूरतो यत्नासे काम करे नहीं और यत्ना बिदून दयाधर्म बने नहीं। चौथी और सुनो कि जब वे लोग जीमनेको बैठतेहैं तब दश २ पाच २ शामिल बैठकर जीमते हैं। अब देखो और विचार करो कि जो सूखीसी चीजहै जिसके खानेमें उगली मुखमें न जाय उसे शा-

मिल खानेमें तो कुछ हर्ज नहींहै परन्तु जिस चीजके साथ उंगली मुखमें जाय जैसे झोलकी दाल वगैरः अनेक चीजें बनतीहैं उन चीजों को शामिल खानेमें समुर्छम पचेन्द्री पैदाहोतेहैं ऐसा शास्त्रोंमें कहाहै। 'पन्नवणाजी' उपाङ्ग सूत्रमें कहाहै कि दोमनुष्यों की लारमें लार मिल- नेमें समुर्छम जीव उसी वक्त असंख्यात उत्पन्न होजातेहैं तो अब विचार करके देखो कि जब पांचसातजने शामिल जीमनेको बैठतेहैं उसवक्तमें खाटा अर्थात् कढी अथवा क्षीर आदि झोलकी चीजें सबजने खातेहीहैं उस समयमें उन सबोंकी लार अर्थात् थूक मिलनेमे जो उन क्षीरादिक झोलकी चीजोंमें जो असंख्यात जीवोंकी उत्पत्ति होगी सो संख्या तो ज्ञानी जाने परन्तु ऐसी जीवोंकी उत्पन्न हुई चीजों को खानेका श्रावकोंका तो काम नहीं क्योंकि श्रावक तो बड़े विवेकी और जीवकी रक्षा करनेवालेहैं। अब पांचवीं और सुनोकि कि- तने लोग अपने घरमें जीमती दफै झूंठमें तो कग्रासभी नहीं छोड़ते होंगे परन्तु स्वामीवत्सलमें जीमनेको जांय तो उस जगह पत्तल वा थालीमें खूब माल छोड़ें। अब देखो इस जगह विचारकरो कि भला आप खाय तो ठीक परन्तु साधर्मी का माल झूंठमें छोड़कर अनेक अ- नर्थके करनेवाले मह्तरादिकों (भंगी)को दिलाना क्योंकि झंठा और तो कोई ले नहीं, लौकिकमेंभी कहतेहैं कि गऊके मुखमें से निकालकर सूकर के मुखमें देना यह काम कुछ अच्छे आदमियोंका नहीं है। और छठी बात फिरभी सुनोकि उसमेंसे नापितादि (नाई) नौकर चा- करोंकोभी देना तो वे नापितादि नौकरचाकर कुछ साधर्मी नहीहैं और यह जीमन केवल साधर्मियोंके वास्ते होताहै। औरभी सुनो कि कित- ने एक लोग खूब भंगादि पीकर यानी नशाआदि करके जातेहैं कि जिस

से खूब अच्छी तरहसे मालखा में आवे। इसरीतिका इरादा करके जाते हैं सो जीमनमें जाने तो मुस्तैदहुए परन्तु मन्दिरादि धर्मकृत्यमें तो उन लोगों की सूरत बिलकुल नहीं दीखतीहै और किसी२जगह और कि-सी २ समयमें तो दिनमुदे तक जीमतेहैं अर्थात् रात्रि भी होजातीहै और दोचार मुखत्यार आदि तो अवश्य करके रात्रिमेंही खाते होंगे। इतना तो हमने जीमनेका वर्णन किया अब जीमनेके बादका वर्णन सुनो। जब वे जीम२कर हाथधो चुके उस वक्त में आपसमें खूब ठट्टा मसखरी हंसनाबोलना करना अथवा बगीचोकी सैर करना अथवा जो कोई कामवालेहों तो अपने काममें चलेजाना, सिवाय संसारीकृत्यके धर्म कृत्य करना तो एक तर्फ रहा किन्तु धर्मका जिकरभी नहीं। सो इस स्वामीव-त्सलमें जीमनेवालेको जो रीति करनाचाहिये सोतो हम आगे लिखेंगे परन्तु इस जगह तो जैसा वर्त्तमान कालका स्वामीवत्सलका जीमनहै उसका वर्णनकिया है॥

अब जो कुछ हमने ऊपर लिखाहै उसको बाचकर मध्यस्थ हो-कर अपनी बुद्धिसे विचार करो कि यह स्वामीवत्सलहै या जो हमने धार्मीवत्सल शब्द लिखाहै वही है सो ये सब बातें एकजनेकी अ-पेक्षासे लिखीहैं कि जो कोई दूसरेको शामिल न करे और अपनेही घरसे सब कामकरे। अब दूसरा मुडचरीवत्सल शब्दका अर्थ लिखते हैं कि जिसको अभी पंचायती स्वामीवत्सल कहतेहैं। देखो दोचार आ-दमी मिलकर धर्मका नाम लेकर मालखानेकी इच्छासे टीपनी करना कराना शुरूकिया तब सबलोगोंसे रुपया मंडवानेलगे और दो चार द-फे फिर कर उनसे मंडातेहैं कोईतो अपनी खुशीसे लिखताहै, कोई शरमसे, कोई देखादेखी लिखताहै और कोई नहीं मांडे तो उसके

पास आपजाय और सेवकोंको भेजकर जरूर मंडायलेतेहैं । अब इस जगह हमने 'मुडचरी' शब्द दियाहै सो इस 'मुडचरी' के अर्थको आ-खमींचकर अपनी बुद्धिसे विचारकरो कि यह बात ठीकहै या नहीं ? देखो कोई तो अपने दिलका सख्तहै इसलिये पैसा नहीं खर्चसके अ-र्थात् कृपण है, कोई अपनी नादारी से क्योंकि उसकी इज्जत तो है परन्तु हींगके थैलेकीसी खुशबूहै परन्तु उसमें हींग नहींहै, इसरीतिसे बिचारेने अपनी इज्जत बनारक्खीहै परन्तु जब लोग उसको दबातेहैं तब अपनी इज्जतके खयालसे देनाही पड़ताहै परन्तु दिलतो दूखता हीहै । और किसीको धर्ममें रुचि नहींहै परन्तु लोकलाजसे देनाहै और कोई अपनी दिलकी खुशीसेभी देताहै परन्तु रुपयादोरुपया देने की खुशीहै और उससे दसपांच मांगतेहैं सो वो लोगोंके कहनेसे दशपांच तो देताहै परन्तु उसकाभी खुशीसे देना न रहा परन्तु दिल कुन्द कर-केही देताहै । इसरीति की जो टीपनी आदिकसे लोगोंके अन्तरंग रुचि विदून उनसे लेना और उनके चित्तको दुखाना तब उस ऊपर लिखे शब्दके सिवाय और क्या अर्थ बनसकताहै? और बाकी जीमण की रीति जो हम ऊपर लिखआयेहैं सो सब इसके शामिल करने से इ-न दोनों में इकसार समझलेना । अब इसमें एकबात औरभी सुनोकि स्वामी वत्सल साधर्मी अर्थात् सरीसी क्रिया और श्रद्धावालेहैं उन का जो वत्सल उसका नाम स्वामीवत्सलहै अब इस जगहतो जो जी-मणमें लोग इकट्ठे होतेहैं उनकी जुदी२ श्रद्धा और अपनी२ श्रद्धाके मूजिब भिन्न२ उपदेशहै परन्तु एक मन्दिर के दर्शनमें तो एकताहै परन्तु उसमेंभी चैत्यवन्दन पूजनादि क्रिया करनेमें श्रद्धा एक नहींहै इसलिये भव्यजीव आत्मार्थी अपनी बुद्धिसे विचारे कि शास्त्रोक्त स्वामी-

वत्सलका फल क्योंकर होसके। इसलिये अब इस भगडेके विस्तारमें निष्प्रयोजन कडाकूट करना वृथा जानकर छोडतेहैं। अब जो शास्त्रोंमें लिखीहै और अगाडी श्रावकोंने कियाहै उसकी रीति लिखतेहैं सो सुनो। हम प्रथमतो स्वामीवत्सलका अर्थ चलतेही लिखआयेहैं कि सरीखी क्रिया और श्रद्धावालेको जो सहाय देना उसका नाम स्वामीवत्सलहै परन्तु किंचित साधर्मीके जीमने वा उसको जिमाना उसकाभी भावार्थ दिखातेहैं। सरीसी क्रिया और श्रद्धावाले पाच, दस वा बीसजने मिलकर कहनेलगे कि भाई आजतो कुछ असण पाण खादम स्वादम चार प्रकार का आहार अपन सबजने इकट्ठे होकर करें । फिर यहासे चलकर धर्मकृत्य विशेष सबजने मिलकर करेंगे ऐसी इच्छाहै आप सबकी मर्जी होय तो ठीकहै। इसबातको सबजने सुन कर खुशीहों और कहें कि अच्छा भाई जिसमें धर्मध्यान विशेष हो सो काम करना ठीकहै। इसरीतिका विचार करके वे लोग सब सामग्री भोजन आदिक करके धर्मध्यानमें लगे। इसरीतिसे जो साधर्मी आपसमें इकट्ठे होकर यत्नासहित भोजन आदि करें तो लाभकाकारणहै क्योंकि जो साधर्मीके यहा जीमें तो अवश्यकरके जिस रोज जीमाहो उसरोज तो दुविहार तिविहार चौविहार यथाशक्ति पचक्खाण सामायक प्रतिक्रमण देशावगासी रात्रिका ब्रह्मचर्य अवश्यमेव करे और दूसरे दिन उपवास पोसाआदिक करे अथवा देसावगासी करे अथवा मन्दिरमें भगवानकी विशेषकरके भक्तिकरे। इसरीति से साधर्मीके यहां जीमनेवाले को अवश्यमेव करना चाहिये इसलिये हे भव्यप्राणियो ! जो तुमको जिनमत की चाह और अपनी आत्माके कल्याणकरनेकी इच्छाहो तो जिनाज्ञासहित विधि करो जिसमें तुम्हारा कल्याणहो व जिससे परम्परासे

मोक्ष प्राप्तहो और अपनी आत्माके ज्ञानादि गुणमें सादि अनन्त भोगसे आनन्दमेंही रमण करो ॥

॥ इतिश्रीजैनाचार्य्य मुनि श्री चिदानन्द स्वामी विरचितायां

पञ्चम प्रकाश समाप्तम् ॥

छठा प्रकाश ।

अब छठे प्रकाशका प्रारंभ करतेहैं । पांचवें प्रकाशमेंतो समुच्चय समकितदृष्टि समेतकी वृत्ति कही अब इस छठे प्रकाशमें केवल देशव्रतीके वास्ते पच्चक्खाण करनेकी विधि दूसरी सामायक लेने और पारनेकी विधि और तीसरी प्रतिक्रमण करनेकी विधि लिखतेहैं । प्रथमश्रावकको पच्चक्खाणकी विधि सीखना चाहिये क्योंकि जबतक पच्चक्खाणकी विधि न जानेगा तबतक यथावत उसको न पालसकेगा, क्योंकि जो जिस कामको नहीं जानताहै वह उसे कदापि नहीं कर सक्ता । इसलिये प्रथम श्रावकको चाहिये कि पच्चक्खाणके भांगे सीखे क्योंकि जो भांगेको जानकर भागेसे पच्चक्खाण करेगा और पालेगा तो उसका पच्चक्खाण बहुत शुद्ध होगा ॥ मन, वचन, काय और करना कराना अनुमोदना इन तीन करण और तीन जोग सेही जीव नाना प्रकारके कर्म्म बांधताहै इसलिये भव्यजीवको उचितहै कि इन ३ करण और तीन जोगमेंसे जिस२ करण वा जोग को रुकता जाने उसीको रोके और अपनी शक्तिके अनुसार विषयमें न जाने

दे। इसीलिये सर्वजीवोंका उपकार जानकर करुणानिधि श्रीअरिहन्त भगवन्त वीतराग सर्वज्ञदेवने सर्वजीवोंके आश्रय लेकर तीनकरण और तीनजोगके माहोमाही मिलायकर गुणपचास भागेकहेहैं । इस जगह प्रथम गुणपचास भागे का स्वरूप कहतेहैं—करना, कराना, अनुमोदना इनको तो वर्त्तमान कालमें 'करण' कहतेहैं और कहीं २ प्रकरण वा यत्रादिमें अथवा किसी२ सूत्रमेंभी इनही को करण कहाहै और मन, वचन, काय इनको योग कहतेहैं। परन्तु 'श्रीदशवैकालक' की टीका श्रीहरिभद्रसूरिजीकी की हुई उसमें अथवा श्रीभगवतीसूत्रकी टीकामें श्रीअभयदेवसूरिजी महाराजने अथवा औरभी ग्रथोंमें मन,वचन,कायको 'करण' कहाहै और ऐसी व्युत्पत्ति लिखीहैकि " क्रियतेअनेनसंकरण " इसका अर्थ यहहै कि जिसकरके कियाजाय सो करणहै तो मनकरके किया जाताहै अथवा वचनकरके वा कायकरके कियाजाताहै इसलिये मन,वचन,और काय यही करणहैं और करना,कराना और अनुमोदना योगहैं सो कितनेही लोग करना,कराना और अनुमोदना इनको करण कहके भागे उठातेहैं और कई मन,वचन और काय इनको योग कहकर भागे उठातेहैं सो हम इस जगह दोनों रीतिके भागे दिखातेहैं। प्रथम करना,कराना और अनुमोदना इनको करण और मन,वचन,काय इनको योग कहकर इसरीतिसे भांगे दिखातेहैं ॥

अंक ११ करण १ योग १ भागे उठे ९ व्रत १ अव्रत ४८

करूं नहीं मनसा, करूं नहीं वायसा, करूं नहीं कायसा । कराऊं नहीं मनसा, कराऊं नहीं वायसा, कराऊं नहीं कायसा । अनुमोदूं नहीं मनसा, अनुमोदूं नहीं वायसा, अनुमोदूं नहीं कायसा ।

अंक १२ करण १ योग २ भागे उठे ९ व्रत २ अव्रत ४६

करूं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं वायसा कायसा। कराऊं नहीं मनसा वायसा। कराऊं नहीं मनसा कायसा, कराऊं नहीं वायसा कायसा। अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा।

अंक १३ करण १ योग ३ भांगे उठे ३ व्रत ७ अव्रत ४२

करूं नहीं मनसा वायसा कायसा, कराऊं नहीं मनसा वायसा कायसा, अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा।

अंक २१ करण २ योग १ भांगे उठे ९ व्रत ३ अव्रत ४६

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं कायसा। करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा। कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं कायसा।

अंक २२ करण २ योग २ भांगे उठे ९

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा कायसा। करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा। कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायमा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा।

अंक २३ करण २ योग ३ भांगे उठे ३ व्रत २१ अव्रत २८

करूं नहीं कराऊं नहीं मनसा वायसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा

वायसा कायसा ॥

अंक ३१ करण ३ योग १ भांगे उठे ३ व्रत ७ अव्रत ४२

करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा, करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं वायसा, करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं कायसा ॥

अंक ३२ करण ३ योग २ भांगे उठे ३ व्रत २१ अव्रत २८

करु नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा वायसा, करूं नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं मनसा कायसा, करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं वायसा कायसा ॥

अंक ३३ करण ३ योग ३ भागे उठे १ व्रत ४९ अव्रत०

करु नहीं कराऊं नहीं अनुमोदू नहीं मनसा वायसा कायसा ॥

अब दूसरी रीतिसे, मन वचन कायको करण और करना कराना अनुमोदना को जोग मानकर भागे उठातेहैं सो अंक तो जैसे पहिले रक्खे गयेहैं उसी रीतिसे रक्खेजायगे सो हम लिखकर दिखातेहैं ॥

अंक ११ करण १ योग १ भागे उठे ९

मनसा करू नहीं. मनसा कराऊ नहीं, मनसा अनुमोदूं नहीं, वायसा करू नहीं, वायसा कराऊ नहीं, वायसा अनुमोदू नहीं, कायसा करू नहीं, कायसा कराऊ नहीं, कायसा अनुमोदू नहीं ॥

अंक १२ करण १ योग २ भागे उठे ९

मनसा करू नहीं कराऊ नहीं, मनसा करू नही अनुमोदूं नहीं, मनसा कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं, वायसा करू नहीं कराऊ नहीं, वायसा करू नही अनुमोदूं नहीं, वायसा कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं, कायसा करू नहीं कराऊ नहीं, कायसा करू नही अनुमोदू न-

हीं, कायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक १३ करण १ योग ३ भांगे उठे३

मनसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक २१ करण २ योग १ भांगे उठे ९

मनसा वायसा करूं नहीं १ मनसा वायसा कराऊं नहीं २ मनसा वायसा अनुमोदूं नहीं ३ मनसा कायसा करूं नहीं ४ मनसा कायसा कराऊं नहीं ५ मनसा कायसा अनुमोदूं नहीं ६ वायसा कायसा करूं नहीं७ वायसा कायसा कराऊं नहीं ८ वायसा कायसा अनुमोदूं नहीं ।

अंक २२ का २ करण २ योग भांगे उठे ९

मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं, मनसा वायसा करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा वायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं मनमा कायसा, करूं नहीं कराऊंनहीं मनसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं मनसा कायसा, कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा, करूं नहीं कराऊं नहीं वायसा कायसा, करूं नहीं अनुमोदूं नहीं वायसा कायसा कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक २३ का २ करण ३ योग भांगा उठे ३

मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं, मनसा वायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं,वायसा कायसा करूं नहीं कराऊं नहीं अनुमोदूं नहीं ॥

अंक ३१ का ३ करण १ योग भांगा उठे ३

मनसा वायसा कायसा करू नहीं, मनसा वायसा कायसा कराऊं नहीं, मनसा वायसा कायसा अनुमोदू नहीं ॥

अंक ३२ का ३ करण २ योग भांगे उठे ३

मनसा वायसा कायसा करू नहीं कराऊ नहीं, मनसा वायसा कायसा करू नही अनुमोदू नहीं, मनसा वायसा कायसा- कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं ॥

अंक ३३ का ३ करण २ योग भांगे उठे १

मनसा वायसा कायसा करू नहीं कराऊ नहीं अनुमोदू नहीं ॥

इसरीतिसे भांगे कहे और इस दूसरी रीतिमें व्रत अव्रतके उतनेहीहैं जितने पहिलेवाली रीतिके भांगेमेंथे परन्तु पहली रीतिके भांगेमे पचक्खान करे तो वर्त्तमान कालमें प्रवृत्ति होनेसे सुगमहै क्योंकि वर्त्तमान कालमें प्रचार पाहिली रीतिका विशेष करके देखनेमें आताहै इस अपेक्षासे इस दूसरी रीति में पचक्खाण करने और करानेवाले को बिना अभ्यास किये कठिन मालूम होताहै परन्तु जो गुरु यथावत् सिखानेवाला हो तो यह रीतिभी सुगमहै क्योंकि देखो जो जिसमें अभ्यास करताहै उसको यह रीतिभी सुगम होजातीहै इसलिये दोनों शास्त्रोक्त रीतियोंमेंसे जिसको जो यादहो वही करे परन्तु बिना भांगेके पचक्खाण करना ठीक नहीं ॥

शंका—३ करण ३ जोगसे साधुका पचक्खाणहै श्रावकके ३ करण ३ जोगका पचक्खाण नहीं ॥

समाधान—हेभोलेभाई जो३ करण ३जोगसे श्रावकके पचक्खाण नहीं होता तो श्रीभगवतीजी में श्रावकका नाम लेकर ४६ भांगे श्रीसर्वज्ञदेव न कहते किंतु ४८ भांगेकाही वर्णन करते और

कितनेक पुरुष जिनआगमके तो अजानहैं परन्तु वे अपनेदिलमें ऐसा कहतेहैं कि हम जिनआगमके जान हैं इसलिये वे ऐसा कहतेहैं कि ३ करण और ३ जोग से उत्कृष्टा श्रावक पच्चक्खाण करे सो उनका यह कहनाभी ठीक नहींहै क्योंकि उन्होंने जिनआगम तोतेकी तरह लोगोंके रिझानेको बांचलियेहैं अथवा पोथियोंको लादे फिरतेहैं "यथा खरश्चन्दनभारवाही" इसरीतिसे वे लोगहैं और उनको जिनआगमका रहस्य गुरुकुलवास विदून न मालूम पड़े सो हम इस जगह दिखातेहैं कि श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराज आवश्यक सूत्रकी २२ हजारी टीकामें साफ लिखतेहैं कि "स्वयंभूरमणसमुन्द्र" अर्थात् छेड़ला समुन्द्र के मच्छका त्यागतो हरेक श्रावक करसक्ताहै इसलिये यह नियम न रहा कि उत्कृष्टा श्रावकही करे इसवास्ते यह पच्चक्खाण हरेक श्रावक करसकता है ॥

शंका—अजी अभीके वक्त में जो भांगेसे पच्चक्खाण करे तो वह उस मूजिब चल नहीं सकता इसलिये भांगेसे पच्चक्खाण नहीं करते भांगे से करें तो पलना मुश्किल होजाय ॥

समाधान—भो देवानुप्रिय ! यह तुम्हारा कहना बहुत अनसमझ और अज्ञान का है क्योंकि देखो जिनमतमें और परमतमें कोई तरहका फर्क नहीं मालूम होगा क्योंकि त्यागपच्चक्खाण व्रत उपवासादि अन्य मतवालेभी करतेहैं और तुमभी बिना भांगेके उसीरीतिसे पच्चक्खाण करोतो तुम्हारे और उनके फर्क कुछ नहीं । तो फिर तुम समकिती और तुम्हारे सिवाय सर्व मिथ्याती, सो तुम्हारा उनको मिथ्याती बताना मनुष्यकी पूंछकी तरह होजायगा । सो हेभोलेभाई ! कोई सतगुरु सत्यउपदेशदाता की सेवाकरो कि जिससे तुमको जिनमतका रह-

स्य मिले और दु खगर्भित मोहगर्भित मालखानेवाले कुगुरुओंका सग छोडकर शुद्ध जिनाज्ञाको अगीकार करो जिससे तुम्हारा अन्त करण शुद्ध होकरके बुद्धिरूपी नेत्र खुलें क्योंकि देखो सर्व मतोंसे जिनमतकी उत्तमता इसी कारणसेहै कि जैनी पेश्तरतो जानकार होय, दूसरा यत्नासहित करे इसलिये यहबात जैनियोंमें प्रसिद्धहै कि समकितीकी नौकारसी और अन्यमत अर्थात मिथ्यात्वीका मासखमणभी बरावर न होगा। हे देवानुप्रिय ! जो जैनीकी नौकारसीका फलहै सो मिथ्यात्वीके एक महीनेके उपवास का फल नहीं तो विचार कर देखो कि मिथ्यात्वी जानता भी नहीं और यत्न भी नहीं करता और जैनी जानकर यत्न सहित करता है सो ही जैनी है किन्तु जैनियों की कोई जात जैनी नहीं अथवा कोई नाम जैनी नहीं कदाचित् जातके जैनी व नाम के जैनी होय और श्री वीतराग की आज्ञा सहित विधि से न चले और शास्त्रोक्त फल मिले तो तुम्हारा कहना भी ठीक और शास्त्रोक्त में कही हुई विधि सर्वज्ञ देवकी निष्फल हो जायगी इसलिये हे भोलेभाइयो ! सर्वज्ञ देव की आज्ञा सहित ही करना ठीक है और कुगुरुके बहकाने से यथातथ फल नहीं मिलेगा ॥

शंका—अजी तुम कहते हो परन्तु अभी तो कोई प्रवृत्ति मार्ग में नहीं कराते हैं तो फिर आप क्यों आगे का आग्रह करते हो ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! इस नहीं करानेका हेतु तो हमने इसी ग्रंथके दूसरे तीसरे प्रकाशमें लिखाहै और उसी जगह लडाईका दृष्टान्त देकर अच्छीतरहसे खुलासा करआये हैं, सो वहासे जानलेना परन्तु इस जगह तो इतनाही कहतेहैं कि हुन्डासर्पनी काल पञ्चमआरे में दु खगर्भित और मोहगर्भित वैराग्यकी महिमासे प्रत्यक्ष दीखरहा हैकि

वह उसकी खोटी कहताहै वह उसकी खोटी कहताहै अर्थात् एक दूसरेकी निन्दा दिखानेको नाना प्रकारके प्रपंचमे अपनी अधिकता दिखातेहैं इस कारणसे न तो अपनी आत्माका अर्थ करतेहैं और जो उनके पासमें गृहस्थी आतेहैं उनकाभी आत्माका अर्थ नहीं होने देते हैं केवल उन गृहस्थियोंको दृष्टिरागमें बांधकर आप लड़तेहैं और उनको आपसमें लड़ातेहैं और जिनधर्म्मकी हीलना करातेहैं। कदाचित् कोई काल मूजिब ज्ञानवैराग्यसे जिनमत को अंगीकार करके भेषादिले तो कैसाही मनुष्य बचकर चले तोभी अपने प्रपंचमें मिलाकर उसकाभी सत्यनाश करतेहैं पन्तु जिसका शुभकर्म प्रबल पुण्यका उदय होगा वही इस प्रपंच में न पड़कर अपनी आत्माका अर्थकरेगा क्योंकि पूर्व आचार्योंके वचनोंसे मालूम होताहै सो पूर्व आचार्योंके बचनोंकी साक्षी दूसरेतीसरे प्रकाशमें लिखआयेहैं ऐसे २ कारणोंसे प्रवृत्ति की न्यूनताहै और इसीलिये न कराते होंगे परन्तु बिलकुल इस बातके बतानेवाले या जाननेवाले या करानेवाले नहीं सो नहीं किन्तु करानेवालेभीहैं क्योंकि देखो पचक्खाणके गुणपचास भांगे श्रावकोंके जाननेके वास्ते यंत्रादि अनेकरीतिसे पूर्व जानकार आचार्य वा साधुओंने बनायेहैं और उनको सिखातेभी हैं और जो अच्छे जिनमतके जानकारहैं वे एक 'करण' १ 'योग' से बारहव्रतादि अथवा और पचक्खाणादि उच्चारण करातेहैं इसलिये भांगेसे पचक्खाण कराना ठीकहै ॥

शंका—अजी आप युक्ति देतेहैं सो तो ठीकहै परन्तु किसी सूत्र वा प्रकरण मेंभी भांगेसे पचक्खाण करना लिखाहै या आप युक्तिसेही बताते हो ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! बिना भींतके चित्र कोई नहीं बना

सक्का भींत होगी उसीजगह चित्र होगा इसलिये भोदेवानुप्रिय ! तुम को सूत्र और प्रकरण सुननेकी इच्छाहै तो अब हम सूत्र और प्रकरणकी साख देकर दिखातेहैं । श्री 'भगवती' जी सूत्र शतक आठमा, उद्देस पाचवेंमें से थोडासा पाठ लिखतेहैं जो भगवतीजी बनारसमें छपीथी उस पुस्तक में पृष्ठ ६०० निर्श्रक वहासे पाचवा उद्देसा शुरू हुआहै सो पृष्ठ ६०३ तक भागोंकी कई तरहकी रीतिया कहीं हैं। परन्तु पृष्ठ ६०३के अकसे पहली पक्तिमेंसे मूलसूत्रमेंही जो एकसे लेकर गुणपचास तक बराबर भागे उठायेहैं सोही पाठ लिखतेहैं "तिविहतिविहेण पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करत नाणु जाणइ मणसा वयसा कायसा १।तिविह दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ करत नाणु जाणय मणसा वयसा २। अहवा न करेइ न कारवेइ करत नाणु जाणय मणसा कायसा ३। अहवा न करेइ वयसा कायसा ४। तिविहएविहेण पडिक्कममाणे न करेइ३मणसा ५। अहवा न करेइ ३ वयसा ६। अहवा न करेइ ३ कायसा ७। द्विविह तिविहेण पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा वयसा कायसा ८। अहवा न करेइ करत नाणु जाणइ मणसा, वयसा, कायसा ९। अहवा न कारवेइ करत नाणु जाणय मणसा, वयसा, कायसा १०। दुविह दुविहेणा पडिक्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा, वयसा ११। अहवा न करेइ न कारवेइ मणसा कायसा १२। अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा, कायसा १३। अहवा न करेइ करत नाणु जाणय मणसा, वयसा १४। अहवा न करेइ न करत नाणु जाणय मणसा, कायसा १५। अहवा न करेइ करत नाणु जाणय वयसा, कायसा १६। अहवा न कारवेइ करत नाणु जाणय मणसा,वयसा१७। अहवा न कारवेइ करतं नाणु जाणय मणसा, कायसा १८। अहवा न कार-

वेइ करंतं नाणु जाणय वयसा, कायसा १६। दुविहं एक्क विहेणं पडि-क्कममाणे न करेइ न कारवेइ मणसा २०। अहवा न करेइ न कारवेइ वयसा २१। अहवा न करेइ न कारवेइ कायसा २२। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणइ मणसा २३। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय वयसा २४। अहवा न करेइ करंतं नाणु जाणय कायसा २५। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय मणसा २६। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय वयसा २७। अहवा न कारवेइ करंतं नाणु जाणय कायसा २८। एगविहं तिविहेणं पडिक्कममाणें न करेइ मणसा वयसा कायसा २६। अहवा न कारवेइ मणसा, वयसा, कायसा ३०। अहवा करंतं नाणु जाणइ मणसा, वयसा, कायसा ३१। एक्कविहं दुविहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा वयसा ३२। अहवा न करेइ मणसा, कायसा ३३। अहवा न करेइ वयसा, कायसा ३४। अहवा न कारवेइ मणसा, वयसा ३५। अहवा न कारवेइ मणसा, कायसा ३६। अहवा न कारवेइ वयसा, कायसा ३७। अहवा करंतं नाणु जाणइ मणसा वयसा ३८। अहवा करंतं नाणु जाणइ मणसा, कायसा ३६। अहवा करंतं नाणु जाणइ वयसा, कायसा ४०। एगविहं एक विहेणं पडिक्कममाणे न करेइ मणसा ४१। अहवा न करेइ वयसा ४२। अहवा न करेइ मणसा ४३। अहवा न कारवेइ मणसा ४४। अहवा न कारवेइ वयसा ४५। अहवा न कारवेइ कायसा ४६ अहवा करंत नाणु जाणइ मणसा ४७। अहवा करंतं नाणु जाणइ वयसा ४८ अहवा करंतं नाणु जाणइ कायसा ४६। पडुप्पन्न संबरेमाणे किंतिविहेणं संवरेइ २ एवं जहा पडिक्कमणेणं ए गुणवर भंगा भणिया संवर माणेवि एगुणवन्नभंगा भाणियथा। अणगयं पच्चक्खमाणे किं तिविहं तिविहेणं पच्चखाए एवं

तचेव भगा ए गुणवन्न भाणियया जावअहवा करंत नाणु जाणइ कायसा। समणो वासगस्सण भते पुव्वामेवथूल एमुसावाए पच्चक्खाये भवइसेणभते पच्छापच्चाइक्खमाणे एव जहा पाणाइवायस्स सीयाल भगसय भाणिय तहामुसावायस्स विभाणियव्व, एव आदिन्नादाणस्सवि एव थूल गस्स मेहुणस्सवि, परिग्गहस्सजावकरत नाणु नाणुजाणइकायसा, एएखलु एरिसगासमणो वासगाभवति, नोखलु एरिसगा आजीवियो वसगा भवति" ॥ इत्यादि ६१० के अकदार पृष्ठ तक इसी मतलबका पाठ चलाहै सो आगे पीछेका पाठ जानलेना ॥

सो इसके अर्थको टीकाकार अच्छीतरहसे खुलासा करतेहैं औ-र टब्बामेंभी इसका अर्थ खुलासा लिखाहुआहै कि श्रावक होगा सो तो भागेसेही पचक्खाण करेगा और आजीविकाका श्रावक होगा सो इन भागोंसे पचक्खाण न करेगा क्योंकि इस पाठमें खुलासा लिखा है कि'समणोवासगा'अर्थात श्रीमहावीरस्वामीके श्रावकश्राविका भग-वतकी आज्ञा सहित भागेसे पचक्खाण करेंगे औरजो भगवतआज्ञाके नहीं माननेवालेहैं अर्थात आजीविकाके उपासकहैं वो इनभागोंको न जानेंगे न करेंगे इसलिये जिनमतकी चाहनावालेको अपनी आत्माके कल्याणकरनेकी इच्छाहोगीतो शास्त्रोक्त विधिमेंही पचक्खाण करेंगे नतु जैनी नामधरानेवाले। यहतो हमने श्रीभगवतीसूत्र का पाठ लिखकर साखदी। अब प्रवचनसारोद्धारमें पचक्खाणका चौथा द्वार क-हाहै उस चौथेद्वारके चलतेही पचक्खाणके चार भागे कहे सो चारोंभां-गोंका स्वरूप जिसरीतिसे प्रकरणरत्नाकरके तीसरे भागके ४० वें पृष्ठमें लिखाहै उसीरीतिसे इस जगह लिखतेहैं कि" प्रत्याख्यानने विषय च-तुरभंगीथायछे जेमके पोते प्रत्याख्याननु स्वरूपजाणतो छता जाणनारा

गुरुनीपाशे करेछे ए प्रथमभंग, गुरुजाणनाराहोय अनेपोतेअजाणछता गुरुनीपाशे करे ते द्वितीयभंग, शिष्य जाणहोय अने गुरुअजाण छता गुरुनी पासे करे ते तृतीयभंग. अने गुरु तथा शिष्य बन्ने अजाण-छता गुरुनी पासे करे ते चतुर्थ भंग जाणवो" । "ए चार भंग पोता-ना मने कल्पीनें करयानथी पण सिद्धान्तनें विषय कहेलाछे " " जा-णगोजाणगसगासे जाणगोअजाणगसगासे अजाणगोअजाणगसगासे इत्यादि " " तेमा प्रथमभंग शुद्धछैः केमके बन्नेने जाणपणुंछैः बीजो भंगपण शुद्धछैः केमके गुरु जाणनार अने शिष्य अजाणछतां तेने सं-क्षेपेथी बोधकरी प्रत्याख्यान करावेछैः अन्यथा अशुद्धछै, तीजोभंग जोपण अशुद्ध छै तो पण तथाविधगुरुनी अप्राप्तीछतां गुरुनां बहुमा-नेकरी गुरुसम्बन्धी पिता, पितृव्य, बंधु, मामा अने शिष्यादि बीजापण कोई साक्षीकरीने ज्यारे प्रत्याख्यान करेछै त्यारे शुद्धछै चोथोभंग अशुद्धछै ॥१८७।१८८॥ " इसरीति से प्रकरणरत्नाकरके ३ रे भागके ४० पृष्ठमें यह अर्थसाहित लिखाहै सो देखलेना इस रीतिसे इस प्रव-चनसारोद्धारकी टीकामें भी लिखाहै सो १८८ मीं गाथाकी टीका जिसकी खुशीहो सो देखलेना ऊपर लिखा भावार्थही टीकामें है इस-लिये वह पाठ न लिखा ॥

शंका—अजी आपने भगवतीसूत्र और प्रवचनसारोद्धारकी शा-ख देकर पाठभी लिखदिया सो इस भगवतीजी या प्रवचनसारोद्धारको आपके सिवाय जो वर्त्तमान कालमें पंडित बहुश्रुत कि जिन्होंने अनेक ग्रंथ देखे हैं ऐसे लोगतो कोई इस पचक्खाणको अर्थात् भांगेसहित नहीं करातेहैं सो क्या इन्होंने ये ग्रंथ नहीं देखे या नहीं पढ़ेहैं इस लिये हमारेको सामान्य विशेष का कारण मालूम होताहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! जो हमने सूत्रोंकी शाख दीहै सो सूत्र कुछ मेरे बनायेहुए नहीं सूत्रतो गणधरोंके रचेहुएहैं और प्रवचनसारोद्धारभी पूर्वधारियोंका रचाहुआहै इसलिये इसकी साख दीनीहै और जो तुमने कहा कि आपके सिवाय और कोई वर्त्तमानकालमें नहीं कराताहै सो कोईनही कराताहै इसमें तो मेरा कुछ जोर नहीं और मैं जो कराताहू सो शास्त्रोक्त विधिसे कराताहूं जो इसमें किसी तरहका दूषण होतो मेरेको बताओ तो मैं इस करानेको छोडदू और जो यह मेरा कराना शास्त्रानुसार भगवतआज्ञासे है तो मेरेको लाभकारीहै किन्तु भगवतआज्ञा विरुद्ध अलाभकारीहै। और जो तुमने कहाकि ऐसे २ बहुश्रुतहैं उन्होंने क्या ये ग्रथनहीं देखे सो मैंतो इसबातको नही कह सकू कि उनबहुश्रुतोंने न देखेहोंगे परन्तु जो वे लोग नहीं करातेहै तो उनका देखना अर्थात् पढ़नाभी न देखने अर्थात् न पढ़ने के समान है और कदाचित उन्होने पढ़ाभी होगा तो अपनीमतकल्पनासे पढ़ा होगा जो वे गुरुकुलवास से पढ़ेहोते तो भगवतआज्ञासे जो विधि पच्चक्खाणकी है उसको अडवड करके न चलाते अथवा भगवतआज्ञाकी यथावत श्रद्धा न होगी। जो वे यथावत श्रद्धावान होते तो शास्त्र मे विपरीत पच्चक्खाण आदि कदापि न कराते इसीलिये उपाध्याय श्रीयशविजयजी महाराजने ३५० गाथाके स्तवनकी चौदहवीं गाथामें जैसे बहुश्रुतों की तुमने साक्षीदी है हमजानें उन्हींके वास्ते लिखाहै सो गाथा यहहै "जिम २ बहुश्रुत बहुजन सम्मतो बहु शिष्यपरवरियो, तिम २ जिनशासननो वयरीजोनविनिश्चयदरियो रे" इस गाथाका अर्थ तो हमने स्याद्वादानुभवरत्नाकरके ३रे प्रश्न के उत्तरमें विस्तार करके लिखाहै सो वहासे देखलेना। और जो तुमने सामान्य विशेषकी कही

सोभी तुम्हारा कहना ठीक नहींहै क्योंकि जिनसूत्रोंकी हमने साक्षी दी है वे सूत्र विशेष प्रामाणिक हैं। कदाचित् इस आशयसे कहतेहो कि उनशास्त्रोंमें अनेकचीजोंकी विधिकहीहै इसलिये सामांन्य हैं तो अब देखो हम तुम्हारेको विशेष सूत्रकाभी प्रमाण देतेहैं कि जिसमें केवल पच्चक्खाण करनेकी विधि और आगार आदि गिनायेहैं सो पच्चक्खाणभाष्यकाही प्रमाण देतेहैं सो पच्चक्खाणभाष्यके ७में द्वारकी४३ वीं गाथाको लिखकर दिखाते हैं "एयंच उत्तकाले, सयंच मणवयणतणहिं पालणियं ॥ जाणगजाणगपासित्ति भंगचउगे तिसुअणुणे ॥४३॥" (एयंचके०) एपूर्वोक्तवली (उत्तकालेके०) उक्तकाल जे पोरिसियादिक कालप्रमाण रूपते (सयंचके ०) पोतानी मेले जेवीरीते बोल्युं होय यथोक्त रूपे जे भंगादिके लीधुंहोय ते भंगादिके (मणवयणतणहिके०) मनवचन अने कायायेंकरी (पालणियंके०) पालवायोग्य ते (जाणग २ पासि के०)जाणग २ पासेकरी एटले जाणअजाणयापासें करे (इति के०) एम (भंगचउगे के०) भंगचतुष्के एटले चारभांगोंने विषे करे तेमां(तिसअणुस्मा के०) पहिला त्रण भांगाने विषे अनुज्ञा एटले आज्ञाछे एटले पच्चक्खाणनो करनार शिष्य पण जाण होय अने बीजो पच्चक्खाण करावनार गुरुपण जाण होय ए प्रथम भंग शुद्ध जाणवो । बीजो पच्चक्खाण करावनार गुरुजाण होय अने पच्चक्खाण करनारा शिष्य अजाण होय ए बीजोभांगो पण शुद्ध जाणवो। तीजो पच्चक्खाण करनारा शिष्यपण जाणहोय अने पच्चक्खाण नो करावनार गुरु अजाणहोय ए तीजो भांगो पण शुद्ध जाणवो। चौथो पच्चक्खाण करनाराशिष्य अने पच्चक्खाणकरावनारा गुरु ए बेहु अजाण होय ते चौथो भांगो अशुद्ध जाणवो। ए रीते चारभांगा मांहेंथी त्रणभांगे पच्चक्खाण करवानी आज्ञाछेः

अने चौथाभागाने विषे आज्ञा नथी "इसरीतिसे पच्चक्खाणभाष्यमें लिखा है कि चौथाभागा भगवतकी आज्ञामें नही अब इस जगह 'पिण' शब्दजो दोजगह दियाहै उसी का विशेष अर्थ दिखानेके वास्ते हिन्दुस्तानीभाषामें लिखतेहैं जो शख्स पच्चक्खाणका करनेवाला है मो जानकार अर्थात् 'करण' 'जोग' से धाराहुआ जो पच्चक्खाण जिस भागेसे पालना होय उस भागेको धारकर गुरुके पासमें विनयसहित हाथ जोडकर खडा होय और कहे कि हेस्वामिन् ! अमुक भागा से फलाना पच्चक्खाण कराइये उस वक्तमें जो गुरु जाननेवाला है वह श्रावकका वचन सुनकर 'करण' 'योग' लगायकर भागेसे पच्चक्खाण करावे इसरीतिसे जो पच्चखाण करे वह सर्वज्ञदेवकी आज्ञासहित शुद्ध पच्चक्खाणहै ॥ अब दूसरा भागा कहतेहैं कि पच्चक्खाणका करानेवाला गुरुतो जानकार हो और करनेवाला शिष्य अजाण अर्थात् जानकर न हो यह दूसरा भागाभी शुद्ध है। पण शुद्ध जाणवो इसका अर्थ करतेहैं कि 'पण' शब्द क्योंदिया सो 'पण' शब्दका अर्थ दिखातेहैं कि जानकार गुरु पच्चक्खाण कराने के बाद जिज्ञासुसे कहे कि हेदेवानुप्रिय ! अमुक 'करण' अमुक 'जोग' अमुक भागेसे पच्चक्खाण करायाहै सो तू उपयोग रखकर पालियो इस कहनेके वास्ते 'पण' शब्द रक्खाहै और जो करानेवाला गुरु इसरीतिसे पच्चक्खाण करनेवाले को न समझावे तो यह भागाभी अशुद्ध अर्थात् आज्ञामें नहीं ॥ अबतीसरा भागा कहतेहै कि पच्चक्खाण का करनेवाला तो जानकार अर्थात् प्रथम भागे के लिखेमूजिब हो और करानेवाला गुरु अजान हो इस जगह गुरु शब्द करके पिता, काका, मामा, वडा भाई आदिक लौकिक गुरुको लियाहै नतु आचार्य, उपाध्याय, साधुकी अपेक्षा। यह तीसरा भागाभी 'पण' शुद्ध जाणवो मो इस जगहभी 'पण'

शब्दका अर्थ ऐसाहै कि उन लौकिक गुरु आदिकका बहुमान रखनेके वास्ते उनकी साक्षी लीनीहै परन्तु पच्चक्खाणका करनेवाला जानकार होनेसे यथावत् पालेगा इसलिये भगवतकी आज्ञामें है जो भगवत् आज्ञामेंहै सो शुद्धहै इसलिये इन तीनों भांगोंसे तो पच्चक्खाण करना भगवत आज्ञामेंहै ॥ शेष चौथा भांगा जो अशुद्धहै उसको अशुद्ध कहने का यही प्रयोजनहै कि कराने और करनेवाला दोनों अजानहैं इसलिये भगवतआज्ञामें नहीं क्योंकि देखो जिनमतमें तो जानकार यत्न करनेवालेकोही जैनी कहाहै इससे जो विपरीत सोही मिथ्यात्वीहै। इस मिथ्यात्वकी अपेक्षासेही जानकार यत्न करनेवालेको समकिती कहाहै और भी देखोकि दो पुरुष एक गांव जानेवालेहैं और वे दोनोंही अजानहैं तो गांवको पहुंचनाही कठिनहै, उन दोनोंमेंसे एकभी जानकार हो तो उस गांवको पहुंचना सुगमहै औरभी देखोकि अंधेको अन्धाभी मार्ग नहीं बता सक्ताहै इसी अपेक्षासे श्रीआनन्दघनजी महाराज १५वें श्रीधर्मनाथजीके स्तवनमें छठीगाथाकी पिछली तुकमें कहतेहैं कि "अन्धो अन्धपुलाय" इसरीतिसे करानेवाला और करनेवाला अजान होनेसे अन्धेके समानहैं इसीलिये यह चौथा भांगा भगवत आज्ञामें नहीं है ॥ सो हेभव्य प्राणियो ! शुद्ध जिनआज्ञाको अंगीकार करके कुमति कदाग्रह करानेवाले कुगुरुओंका संग तजो, और आत्मार्थी शुद्ध गुरु उपदेशदेनेवालेको भजो, इसलिये मुक्तिमार्गको जल्दी सजो, और मिथ्यात्वसे लजो, जिसमे तुम जल्दी शुद्ध होकर जिनमार्गमें आओ जिससे तुम्हारा कल्याणहो। इसलिये हे भव्यप्राणियो ! प्रथम पच्चक्खाण करनेकी रीति जिनाज्ञा सहित सीखो जिससे तुम्हारेको पच्चक्खाण करनेमें यथावत लाभहो और जिनाज्ञा शुद्ध पले और समकितकी प्राप्ति होय इसलिये

शास्त्रोंमें कहाहै कि समकितीकी जो नौकारसी का फलहै सो मिथ्यात्वी के मासखमणका फल न होगा इसलिये हमारा उपदेश आत्मार्थी भव्य-जीवोंके वास्ते उपकारी जबही होगा कि जो भव्यप्राणी जानकर अर्थात समझकर करेगा उसीके वास्ते नतु धमाधम करनेवालों के वास्ते ॥ ५ ॥ औरभी देखोकि जो वर्त्तमान काल में पचक्खाण की रीति चलरहीहै सो पचक्खाणभाष्यकी रीति से विपरीत अर्थात् औरकीऔर गच्छवाले लोग अपनी२ मत कल्पना और गच्छोंकी परम्परा अपनी वाडाबधी बाध-कर जुदी २ रीतिसे करातेहैं सो बुद्धिमान पुरुष अपनी आत्माके अर्थ की इच्छावाला होय सो हम पचक्खाण भाष्यमें जैसी आगारों कीसख्या लिखीहै उन्हीं आगारों के मुजिब केवल नमूनामात्र दिखानेके वास्तेजो पचक्खाणमें जितने२ आगारोंकी संख्या है उसको और पच्चखाण के नामको बतौर यत्रके लिखकर दिखातेहै इससे जानलेना सो यत्र प्रतिक्रमणके छापेकी पुस्तक में ४८४ के पत्रमें लिखाहै उसीकी नकल इस जगह करतेहैं और इन आगारोंकी सख्या प्रवचन सारोद्धारके ४थे द्वारमें लिखीहै वहासे देखलेना वह यत्र यहहै—

पचक्खाणके आगारोंकी सख्याके यत्रकी स्थापना।

अक	पचक्खाणके नाम	सख्या	आगारों के नाम
१	नौकारसी	२	अन्न सह
२	पोरसी	६	अन्न. सह. पच्छन्न. दिसामो साहुव सव्व.
३	साड्ढ पोरसी	६	,, ,, ,, ,, ,, ,,
४	पुरि मड्ढ	७	अन्न. सह पच्छ दिशा. साह सव्व. महत्त.

अंक	पचक्खाणके नाम	संख्या	आगारों के नाम
५	अवड्ढ	७	अन्न. सह. पच्छ दिसा. साहु. सव्व. महत्त.
६	एकासणु	८	अन्न. सह. सागा. आउं. गुरु. परि. मह. सव्व.
७	वियासणो	८	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
८	एकल ठाणु	९	अन्न. सहस्सा. लेवा. गिहत्थ. उक्खित्त. पडुच्च. परि. महत्त. सव्व.
९	विगई	९	,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,, ,,
११	आयविल	८	अन्न. सह. लेवा. गिह. उखि. परि. मह सव्व.
१२	उपवास	५	अन्न. सह. परि. मह. सव्व चोल पट्टागार यतिने.
१३	पाणाहार	* ६	लेवे. अले. अच्छे. वहु. ससित्थे. असित्थे
१४	अभिग्रह संकेत	४	अन्न. सह. मह. सव्व.
१५	दिवसचारिमं	४	अन्न. सह. मह. सव्व.
१६	भवचारिमं	४	,, ,, ,, ,,
१७	देसावगासिक	४	,, ,, ,, ,,
१८	समकेतना	६	राया. छणा. वला. देवा. गुरुनि. वित्ति.

अब इस पचक्खाणकी रीति कहनेके अनंतर सामायक की किंचित् विधि कहतेहैं. जो सामायक लेनेवाला हो वह पेश्तर क्या २ चीज सीखे तो पेश्तर नौकार को आदि लेकर इरियावही लोगस्स आदिक वीधि

* नोट—अनेसलेवा पनेसलेवा जो ६ आगर हैं सो साधु के वास्ते हैं नतु श्रावक के वास्ते. जिनशास्त्रों की हमने साक्षी दी है उन में खुलासा है सो वहां से देख लेना।

सहित सीखे ॥

शंका—नौकार, इरियावही आदिमें क्या विधि है सो विधि से सीखे ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! नौकारआदिककी विधि जो श्रीवीतरागसर्वज्ञदेवने शास्त्रोंमें कहीहै उससे शुद्ध अक्षर उच्चारण करना गुरुके पासमें यादकरे और उसका उपधान वहे ॥

शंका—अजी उपधान क्या चीजहै और उपधान वहना किस शास्त्रमें कहाहै और नौकार क्या गुरुके पास सीखे तबही यादहोगा और क्या घरादिकमें सीखे तो याद नहीं होगा ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! विना उपधानके तो श्रावकको नौकार गुननाही न सूझे अर्थात् कल्पे नही और गुरु के विना शुद्ध अक्षर उच्चारण नहीं होतेहैं और जो लोग इस कालमें लडकोंको उनके बापमहतारी लाडके वश होकरके नौकारको उच्चारण करातेहैं तब वे लडके पूरा बोलतो नही जानें परन्तु बापमहतारीके कहनेसे अक्षर उच्चारते है तब णमोअरिहन्ताण की जगह णमोहन्ताण ऐसाभी उच्चारण करजातेहैं इसरीतिके उच्चारणसे उलटी असातना होतीहै और इसीलिये वर्त्तमानकालमें घरमेंही नौकार सीखनेसे यथावत उच्चारण नहींकरते किन्तु महा अशुद्ध बोलतेहैं क्योंकि देखो णमोकी जगह नमो हरेक शख्स उच्चारणकरताहै बल्कि कितनेही मूर्खपुरुषोंने पुस्तकोंमेंभी णमोकी जगह नमो छपायदियाहै और तीसरे चौथे पदमें तो बिलकुल अशुद्ध बोलतेहैं सो दिखातेहैंकि 'णमोआयरियाण'के बदले 'नमो अरियाण' और'णमोउवज्झायाण'की जगह 'नमोउज्झारियान' बोलतेहैं सो गुरुके विना सीखनेसे इस नवकार मन्त्रको अडबड बोलकर नानाप्-

कारकी असातना करतेहैं इस असातना होनेहीसे वर्त्तमानके जैनियोंमें दिनपरदिन हानिही होतीचली जातीहै. और जो तुमने कहा कि उपधान क्या चीजहै इसका उत्तर सुनो कि उपधान उसे कहतेहैं विनयसहित उपवास आदिकरके गीतार्थ गुरुके पासमें उपदेश ले और जैसा२ गुरु क्रियाकी कहै वैसी क्रियाकरे जबतक उपवास आदि करके गुरुके पास उपदेश न लेगा तबतक उसको वह नवकारआदि गुनना यथावत फल न देगा और यह उपधानका बहना श्रीउत्तराध्ययनजीके बहुश्रुत अध्ययनमें अथवा महानिशीथ सूत्रआदि मेंकहाहै ॥

शंका—अजी वर्त्तमान कालमें तो तुम्हारी लिखी रीतिको कोई नहीं करताहै और हरेक करातेभी नहींहैं और प्रवृत्तिमार्गमें हजारों आदमी बिनाउपधान के ही कररहे हैं ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय! यह तेरा कहना बहुत अनसमझका है क्योंकि देख गुजरातमें सैकड़ों श्रावक श्राविका आत्मार्थी भव्यजीव उपधान बहतेहैं और मारवाड़मेंभी कितनेही श्रावक श्राविकाने उपधान बहकर अपना नौकर आदि गुनना सिद्धकियाहै इसलिये तेरा यह कहना नहीं बने कि वर्तमान कालमें कोई नहीं बहता (करता) है इसलिये हेभोलेभाई! उपधानादि बहकरही नौकार आदिको गुनना सफलहै बिना उपधानके जो क्रिया अर्थात् नौकार आदि गुननाहै सो निष्फलहै क्योंकि भगवतकी आज्ञा बिना जो काम करनाहै सो न करने के समानहै क्योंकि देखो उपाध्याय श्रीसमयसुन्दरजी महाराजने श्री महावीर स्वामीकी स्तुतिमें उपधान तप वर्णन कियाहै सो उसको किंचित् लिखकर दिखातेहैं कि बिना उपधान के कोई क्रिया करनी न कल्पे सो स्तवन यहहै ॥

श्रीमहावीरधरमपरगासे बैठीपरषदबारजी । अमृतवचनसुनी अतिमीठा पामेहरषअपारजी ॥१॥ सुणो २ रे श्रावक उपधानवह्याबिन, किमसूझे नवकारजी । उत्तराध्ययन बहुश्रुत अध्ययने एहभण्योअधिकारजी ॥२॥ सुणो० ॥ महानिशीथ सिद्धान्त माहेंपिण उपधानतपविस्तारजी । अनुक्रमशुद्ध परपरदीसई, सुविहित गच्छआचारजी ॥ ३ ॥ सुणो०॥ तपउपधान वह्या विन किरिया,तुच्छ अल्प फल जाणजी । जे उपधान वह्यानरनारी, तेनो जन्म प्रमाणजी ॥४ ॥ सु० ॥ तपउपधानकह्यो सिद्धान्तें जो नविमाने जेहजी । अरिहतदेवनी आणविराधे भमस्ये भव२तेहजी ॥ ५ ॥ सुणो० ॥ अघह्याघाट समा नरनारी विनउपधाणे होयजी। किरियाकरता आदेशनिर्देश थामसरे नहिं कोइजी ॥६॥ सुणो० ॥ इक घेवरनें खाडेभरियो अति घणो मीठोथायजी । एक श्रावक उपधान वहे तो धन २ तेह कहवायजी ॥७॥ सु ॥ " इत्यादि पीठका हमने लिखीहै बाकी "रत्नसागर"मेंहै सो देखलेना और उपधानके उपवास आदितो उपधान वहनेकी अर्थात् क्रियाकरानेकी पुस्तकोंमें लिखीहै कि जैसे नौकारके उपधानमें साढ़ेबारह उपवास करनेपडतेहैं और २०तथा २१ दिनलगतेहैं इसीरीतिसे इरियावही आदिक सबकी विधि कहीहै इस जगह ग्रथ बढ़जानेके भयसे सबकी विधि न लिखी इसलिये जो श्रावक विनय सहित उपधानादि क्रिया करके गुरुसे उपदेश लेकर जो सामायक आदि क्रियाकरेंगे अथवा नौकारको गुनेगे उनको जिनराजकी आज्ञासहित यथावत फलहोगा नतु अन्य रीतिसे ॥

अब सामायककी विधि कहतेहैंकि—प्रथम कहीहुइ रीतिकरके सहित हो व सामायकके वास्ते क्याकरे सो कहतेहैं कि प्रथम ३ नवकार गुणकर अथवा पचदिया कहकर स्थापनाजी स्थापे तिसके बाद स्था-

पनाजीके सामने २खमासमणा देकर नमस्कारकरे फिर सुख तप श-रीरनी विधि इत्यादिक इस गाथाकरके सुखतप पूछे फिर जिसके बाद 'अभुट्ठिओमि' कहकर मिच्छामीदुक्कडंदे फिर१खमासमाणादे इसरीति से पेश्तर स्थापनाजी स्थापले ॥

शंका— जिस जगह गुरुका अभावहो उसजगह स्थापनाजी करे या सबजगहही करे ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! इसका उत्तर ऐसाहै कि शास्त्रोंमें ऐ-सा कहाहै कि 'गुरुअभावेठमणा' इसका अर्थ ऐसा हुआकि जिसजगह गुरुका अभाव हो उसजगह स्थापना अवश्यमेव करे ऐसा भीअनुयो-गद्वार सूत्रमें कहाहै इसलिये गुरुके अभावमें थापना करना योग्यहै नतु सब जगहही स्था ना करना ॥

शंका—अजी आपने कहा सो तो ठीकहै परन्तु वर्त्तमान का-लमें साधूआदिक होतेहैं उस जगहभी बिना स्थापनाके नहीं करते हैं किन्तु साधूजी बैठेहों तोभी स्थापनाजी के बिदूना सामायक प्रतिक्र-मणआदिक नहीं करते बल्कि कहीं२ तो ऐसाभीहै कि किसी साधूके पास चन्दनकी स्थापनाहो विना आर्यकी स्थापनाके वे लोग सामायक प्रतिक्रमणआदि कोई नहीं करे सो वर्त्तमान कालमें तो विना स्थापनाके सामायक प्रतिक्रमण आदि कोई क्रिया नहीं करताहै तो फिर आपने अनुयोग द्वारका प्रमाण दियाहै सो गुरुके अभाव तो यह प्रमाण ठीकहै परन्तु जो गुरुके सत्तभावमें अर्थात् गुरुके बैठेहुए बिना स्थापनाके सामायकादि नहीं करतेहैं उसका कारण क्याहै ?

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! इस तुम्हारी शंका ऐसाउत्तरहै कि हमने तो प्रमाण शास्त्रकादिया है और जोकोई नहीं करते उनके

करानेके वास्ते तो हमारा कुछ जोर नहीं और जो तुमने कहीं २ के श्रावकों के मध्ये कहा सो वे श्रावक लोग गच्छ ममत्वरूप कदाग्रह में फसे हुएहैं इसलिये चन्दन की स्थापना को छोडकर आर्यकी स्थापना सेही कामकरतेहैं यह उनका कदाग्रहहै क्योंकि शास्त्रों में १० प्रकार की स्थापना कही है यथा "अक्खे वडाडे कट्ठेवा" इत्यादि इसरीति मे पाठ है पासेकी चाहे आर्यकी हो चाहे चन्दनकी हो चित्राम हो अथवा पोथीकी स्थापना हो इन्हीं के दसभेद होजातेहैं १ यावत कथक २ यत्रक इसरीति से शास्त्रों में कहाहै इसलिये शास्त्रोक्त कोई स्थापनाहो । और जो तुमने कहा कि साधुके सद्भाव मेंभी विना स्थापनाके क्रिया नहीं करते इसका कारण क्या सो तो ज्ञानीजाने परन्तु मुझको ऐसा प्राचीन आचार्योंका अभिप्राय मालूमहोताहै कि जो पचदियामें आचार्य के गुणकहेहैं वे गुण यथावत वर्त्तमान कालमें मिलना कठिनहै इस अभिप्रायसे आत्मार्थी आचार्य ने समझकर यह रीति चलाईहै कि उन गुणों के अभावमे स्थापनाजी करना और उस स्थापनाके सामने भव्यजीव आत्मार्थियोंकी क्रिया होना ठीकहै ऐसा होतो ज्ञानीजाने मेरी बुद्धिके अनुसार मैंने यह बात कही है इसमें मेरा कुछ आग्रह नहीं है ॥ इसरीतिसे स्थापना कियेके बाद श्रावक सामायक करे सो सामायक ३ रीतिसे शास्त्रों में उच्चारण करना कहाहै एकतो" जावो नेम पज्जुवासामी" ऐसा उच्चारण करे दूसरा" जावो साहु पज्जुवा स्वामी" इसरीतिसेभी सामायक करे तीसरा " जावो चेइया पज्जुवासामी" इसरीतिसेभी उच्चारण करे इन तीनों रीति में से जैसा जिसको मोका दीखे उसरीति से उच्चारण करे यह तीनों रीति भगवत आज्ञामें हैं ॥

शंका— अजी आपने जो यह तीन रीति लिखी सो हमारे तो

आंजतक श्रवण करनेही में न आई हां अलबत्ता " जावोनेमपज्जुवास्वा-मी " इसरीति का पाठतो छापेकी पुस्तकोंमेंभी देखतेहैं और वर्तमानका-लमेंभी सब कोई " जावोनेमपज्जुवास्वामी " इसरीतिसे करातेहैं परन्तु न मालूम आप यह अपूर्व रीति कहांसे सुनातेहो !

समाधान—भोदेवानुप्रिय ! हमतो कोई अपूर्व रीति कहते नहीं किन्तु शास्त्रके अनुसार कहतेहैं सो श्राद्धविधिमें येतीनों पाठलिखे हुए हैं और जो तुमने कहाकि हमने कभी सुनाही नहीं यह तुम्हारा कह-ना अनसमझकाहै क्योंकि शास्त्रों में अनेकबातें कहीहैं तो क्या तुमने सबही सुनलीनी, अथवा जो तुमने सुनीहैं वेही बातें सत्यहैं बाकी न-हीं ? इसलिये हेभोलेभाइयो ! कुगुरु कदाग्रही हठग्राहियों का संग छो-ड़कर आत्मार्थी शुद्धपरूपक गुरुकुलवाससेनेवाले शुद्ध साधुओंका संग करो तो तुमको इस स्याद्वाद जिनधर्म, बीतरागके मार्गकी यथावत मालू-महो । जब तुम्हारी दिव्य दृष्टि होवेगी तब श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव के कहे हुए शास्त्ररूपी समुद्रमेंसे चिन्तामणि रत्न हाथ लगनेसे तुम्हारा कल्या-ण होगा नतु अन्यरीतिसे. इसलिये चमको मत । जो हमने ३ रीति ऊपर लिखी हैं उनका जुदा २ उच्चारण करना और उस उच्चारण करनेमें जो प्रयोजन उसको तुम एकान्त चित्त करके सुनो कि "करोमिभंते सामाइयं सा वज्जंजोगपच्चक्खामि जावोनेमपज्जुवास्वामी दुविहं तिविहेण" इत्यादि पाठ जो है सो इसमें "जाउनियमपज्जुवास्वामी" इस पाठमेंतो तुम्हारे कुछ वि-वादहै नहीं क्योंकि इसरीतिसे तो तुम लोग करतेही हो परन्तु दोरीतियों में जो तुमको शंकाहै उसके दूरकरनेके वास्ते उन दोनों रीतियों को प्रयो-जनसहित कहतेहैं सो सुनो । आवश्यक सूत्रकी टीका २२००० श्रीहरि-भद्रसूरिजी महाराजकी कीहुई उसमें २१००० हजारसे ऊपर ऐसा

पाठहै जिसकी खुशी होसो देखलेना वह पाठ यहहै " करेमिभंते-सामाइय सावज्ज जोग पच्चक्खामि दुविध तिविधंजावसाहु पज्जुवास्वामि" इसरीतिसे पाठ लिखा हुआहै यह पाठ बोलनेका अभिप्राय क्या है सो हम दिखातेहैं कि जावसहुपज्जवास्वामी कहनेसे कालका नियम नहीं क्योंकि जितनी देर तक उसकी इच्छा हो ४ घडी २ घडी २ पहर तक जबतक वहै साधुके समीप अर्थात साधुके मकानमें बैठाहुआ है तबतक उसकी सामायक है और "जावनियमपज्जुवास्वामी" इस नियम शब्दके कहनेसे तो २ घडी कालका नियम होगया और साधु शब्द कहनेसे कालका नियम न रहा इसलिये "जावसाहु पज्जुवास्वामि" कहा॥

शंका—आपने शास्त्रोका प्रमाण देकरकहा सोतो शास्त्रों में होगा परन्तु जावसाहुपज्जुवास्वामी इस कहने का प्रयोजन क्याहै ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! एकाग्र चित होकरके प्रयोजन को सुनो कि " जावनियमपज्जुवास्वामी " इस कहनेमे तो काल अर्थात दो घडीके बाद सामायक अवश्यमेव पारनी होगी और जावसाहु पज्जुवास्वामी इस शब्दके कहनेसे कालका नियम न रहा तो उसकी खुशी आवे जब सामायक पारे पारने और नहीं पारनेका मतलब यह है कि जब वह भव्य जीव सामायक लेके बैठा और साधुजी से अनेक तरहकी स्याद्वादरीतिसे आत्मविचार पूछनादि करनेलगा। जब उस अगाह साधुमुनिराज से सबध चला और उससम्बन्धमें अध्यात्मरससे आत्मानन्द आनेलगा उस वक्तमें कालका तो ख्याल कुछ रहेगा नहीं और वह अपने अध्यात्मरसमें लैलीन होगा और अनेक तरहकी आत्मार्थकी बातें सुनेगा इसलिये "जावसाहु पज्जुवास्वामी" इस वाक्यके

उच्चारणसे कालका भय न रहेगा । कदाचित् वह जावोनियमपज्जुवा-स्वामी इस पाठको उच्चारण करता तो दो घड़ीका काल आनेसे सामायक पारनेसे और फिर लेनेकी क्रियामें अध्यात्मरससे आत्मानन्दका सम्बन्ध जो मुनिराज के मुखारविन्दसे सुननेका संयोगथा उसका क्रिया के करनेसे वियोग होजाता और फिर वह सम्बन्ध विलम्ब होनेसे मिलना मुश्किलथा और वह चित्त भी क्रिया करनेके बाद यथावत न रहा क्योंकि देखो यह अनुभव लोक में प्रसिद्धहै कि सम्बन्ध चलरहाहै उनमें से हटकर फिर उस सम्बन्धको चलावे तो वह मजा अर्थात रस हाथ नहीं आताहै । इसलिये श्रीवीतराग सर्वज्ञदेव सर्व्वदर्शी ने साधुमुनिराजके समीप "जावसाहुपज्जुवास्वामी" भव्यजीव आत्मार्थी के वास्ते उच्चारना कहाहै क्योंकि देखो संसारी सम्बन्धसे जो अनादि कालका सधा जो संसार उसकेही सम्बन्धमें विलम्ब होनेसे रस नहीं रहता तो अध्यात्म रस जो नवीन सधाहै उसके सम्बन्धमें विलम्ब होनेसे क्योंकर वह रस रहेगा? इसलिये साधुके समीप "जावोसाहुपज्जुवास्वामी" कहना ठीकहै और जो साधु का अभाव हो तो स्थापना आचार्यके सामने "जावनियमपज्जुवास्वामी" कहना ठीकहै इस प्रयोजनसे "जावसाहुपज्जुवास्वामी" कहा ॥

अब "जाओचेइयापज्जुवा स्वामी" इस की विधि कहते हैं कि आवश्यक की चूर्णी में श्रीदेवर्धी क्षमाश्रमणजी महाराज यह कहते हैं स्थूल चूर्णी में जहां रिड्ढीपतो अनरिड्ढी पतो श्रावक की विधि कही है उस जगह ऐसा कहा है कि रिड्ढीपतो अर्थात् राजा अथवा नगरसेठ आदि अथवा कोई कामदार आदि वह तो आडम्बर के साथ साधु के समीप ही आकर सामायक करे और जो अनरिड्ढी-

पतो अर्थात् गरीब श्रावक हैं सो साधुके समीप अथवा जिनगृहे अर्थात् जिनमन्दिरमें अथवा पोपदशालाया अथवा स्वघरमें निर्विघ्न अर्थात् जिस जगह कोई तरहका विघ्न न हो अपने चित्तकी स्थिरता हो उन चारों स्थानोंमें से खुशी आवे उसमें सामायक करे. ऐसा उस चूर्णीमें लिखा हुआहै जिसकी खुशीहो सो देखलेवे। यह तो पूर्वधर आचार्योंकी कीहुई चूर्णीका है दूसरा जोकि चौमासीव्याख्यान सालभरमें तीन दफा बचताहै उसमेंभी इसीरीतिसे जो हम ऊपर लिखआयेहैं लिखाहै जिसकी खुशीहो सो उन पन्नोंमें देखलेय अथवा जब चौमासी-व्याख्यान बचे तब उपयोग देकर सुनले तो जिनघरमें सामायक करना सिद्ध हुआ तो उसजगह जिनमन्दिरमें इसरीतिसे उच्चारणकरेकि "करे-मिभंत सामाइयसावज्जजोगपच्चक्खामि जावचेइयापज्जुवा स्वामीदुविह-तिविहेणइत्यादि"तो इस पाठसे ऐसा सिद्धहुआ कि जावचेइया पज्जुवा-स्वामी इसरीतिसेभी सामायक करे इस जगहभी कालका नियम नहीं जब तक उसकी खुशीहो तबतक सामायकमें बैठारहे ॥

शंका—आपने उस जगहतो साधुके सतसगका प्रयोजन अर्थात् अध्यात्मशैलीका श्रवण कहा परन्तु जिनमन्दिर अर्थात् प्रतिमाके सामने श्रवणका तो कुछ फलहै नहीं दर्शनके सिवाय पूजनादिभी नहीं बनताहै क्योंकि देखो सावद्यजोगका पचक्खाणहै इसलिये सचित वस्तुका तो सघट्टा कर नहीं सक्के इसलिये यहा कालका नियम नहीं रक्खा इसका कारण क्याहै ॥

समाधान—भोदेवानुप्रिय हमको इस तेरे कहनेसे मालूम होता है कि किंचित् किसी कुगुरुका बहकाया हुआहै जबतेरेको ऐसी शका हुई कि साधुके पास तो सतसंगसे अध्यात्मरसके श्रवण करनेका फल

है और जिनप्रतिमाके सामने सिवाय दर्शनके पूजनादिक भी करना नहीं बनता सो तू इस अशुभवासनाको अपने चित्तसे उठायकर कुगुरुको जलांजलि देकर स्याद्वादजिनमतके रहस्यको जाननेवाले सतगुरुओंकी चरणसेवा कर जिससे तुझको द्रव्यानुजोगकी शैली मिले और उस द्रव्यानुजोगसे उपादान कारण और निमित्त कारणको जाने और उन कारणों समेत जो तू व्यापार करे तो तेरेको कार्यहोनेकी मालूम पड़े इसलिये इस जगह तेरी शंका दूरकरनेके वास्ते किंचित् भावार्थ लिखतेहैं इस को एकाग्र चित होकर सुन जब सामायकमें कालका नियम न रहा तब वह आत्मार्थी भव्यजीव तरणतारण सबदुःखनिवारण पद्मासन लगायेहुए शांतरूप नासाग्र ध्यान करके संयुक्तको देखकर प्रभुके गुणोंको विचारने लगा और उन प्रभुके गुणोंको विचारते२ जब अन्तरंग दृष्टि अपने स्वरूपमें गई तब अपने स्वरूपको उपादान जानकर प्रभुको निमित्त कारण मानकर उनकी ओर अपने गुणकी तिरोधानकी सत्ता और आविर्भावकी प्रगटता अपेक्षा लेकर एकता करके रूपातीतादि ध्यानमें लगता हुआ उसमें जो उस भव्यजीवका चित्त लगाहुआहै उस चित्तके लगनेसे जो उसको आनन्द प्राप्त होताहै सो उस आनन्दमें विघ्न न होनेके वास्ते श्रीवीतरागसर्वज्ञदेवने ज्ञानमें देखकर भव्यजीवोंके वास्ते कालका नियम न रक्खा जो कालका नियम रखते तो काल पूरण होनेसे अवश्यमेव सामायक पारनी होती तो सामायक पारनेकी क्रियासे उस आत्मानन्द में विघ्न होजाता कदाचित् जो तुम ऐसा कहो कि फिर सामायक लेकर वह ध्यान करने लगे तो हम जो साधु मुनिराजके सत्संगमें कहआयेहैं वही बात इस जगह जानलेना क्योंकि 'गया वक्त फिर हाथ आता नहीं'। इसलिये हेभोलेभाई ! सर्वज्ञदेव बीतरागने काल

का नियम नहीं रहनेके वास्तेही "जावचेइयापज्जुवास्वामी" आत्मार्थी भव्यजीवोंके वास्ते कहाहै, नतु जिनमतके अजान पुरुषोंके वास्ते । इस रीतिसे तीन प्रकारसे सामायकका उच्चारण करना श्रीसर्वज्ञदेव वीतरागने कहाहै सो निष्प्रयोजन नहीं किन्तु सप्रयोजन है ॥

शका— आपने रीति कही सो तो ठीकहै परन्तु 'जावनियम' मेंभी तो यही बात आतीहै कि जितना वह नियम ले उतनाही काल का है ॥

समाधान— भोदेवानुप्रिय ! यह कहना तुम्हारा ठीक नहीं है क्योंकि अव्वलतो जो नियमका ठिकाना नहीं होता तो आचार्य लोग तीन प्रकारकी सामायक उच्चारना शास्त्रोंमें न कहते इसलिये 'जावनियम' शब्दके कहनेसे तो दो घडीकाही नियमहै नतु कमती जियादा इसलिये यह तुम्हारा शका करना व्यर्थहै इसलिये झगडेको छोडकर सामायक लेनेकी विधि को एकाग्र होकर सुनो । प्रथम एक खमासमण देकर "इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् सामायकलेवा मुहपत्तीपडिलेहु" फिर गुरुका वाक्य सुनकर "इच्छ" कहे और एक खमासमण देकर मुहपत्ती पडिलेहे उस वक्त २५ बोल मुहपत्तीके कहै सो बोल पुस्तकोंमें बहुत जगह लिखेहैं परन्तु इस जगह किंचित् भावार्थ दिखानेके वास्ते बोलोंको जुदे २ लिखकर दिखातेहैं १ सूत्रअर्थ साचो सद्दहु २ समगत मोहनी ३ मिथ्यात्वमोहनी ४ मिश्रमोहनी परिहरु यह चार बोल मुहपत्ती खोलती विरिया कहै । ५ कामराग ६ स्नेहराग दृष्टिरागपरिहरु यह ७ बोल मुहपत्तीके प्रथम कहना चाहिये । अब इनका हम भावार्थ कहतेहैं कि सूत्रतो श्रीगणधरमहाराजका कहाहुआहै और अर्थ श्रीअरिहन्तभगवन्तका कहाहुआहै क्योंकि "गडेहा-

गुथई अरिहाभाषई " इतिवचनात् इस सूत्र और अर्थ को निस्सन्देह हो सत्य मानै इस वाक्यमें कोई तरहका विकल्प न रहे उस विकल्प के दूरकरनेके वास्ते यह वचनहै ॥ अव दूसरा समगतमोहनी का अर्थ ऐसाहै कि देवगुरु पर जो राग उसको परिहरे अर्थात् प्रशस्तराग जोहै उसको दूरकरे । यहां प्रशस्तराग करके जो संसारी अर्थात् इन्द्रियआदिकोंके विषय उनके भोगकी इच्छासे देवगुरुके ऊपर जो राग उसको दूरकरे । यहां कोई ऐसी शंका करे कि समगत मोहनी कहनेसे तो देवगुरुका राग बिलकुल परिहरे इस के उत्तर में हमकहते हैं कि वे जिनआगमके रहस्यके अजान हैं जो वे अजान न होते तो इस वाक्यको न कहते क्योंकि देखो रागकी प्रकृति लोभहै वह लोभ दशवें गुणठाणे क्षय होताहै और यह कहना अर्थात् सम्यक मोहनीका परिहरन पांचवें गुण ठाणेसेही है इसलिये यहां प्रशस्त राग जो देव गुरुसे करना, उसका दूर करानाहै किन्तु अप्रशस्त राग तो देवगुरु पर रखना मुनासिबही है क्योंकि देवगुरु निमित्त कारणहैं जबतक निमित्त कारण का बहुमान आदि न करेगा तो उपादान कारणसे कार्यकी सिद्धि न होगी इसलिये मोहनीकर्म दशवें गुणठाणे तक रहताहै सो इस जगह सम्यक् मोहनी परिहरुं इस शब्दसे प्रशस्त राग परिहरनाहै नतु अप्रशस्तका । और मिथ्यात्व मोहनी मिश्र मोहनी परिहरना इसका अर्थ तो प्रसिद्ध है । अब कहतेहैं कामराग स्नेहराग दृष्टिराग इन तीनोंको दूर करे तो इसका भी ऐसा भावार्थहै कि कामराग अर्थात् संसारी काम अर्थात् इच्छा उसको दूरकरे और स्नेहराग के॰ संसारी जो प्रीति उसको दूरकरे और दृष्टिराग वाह्य जो चक्षु उनसे जो बंधा स्नेह उसको दूर करे । यहां कोई ऐसी शंका करे कि इन तीनों बोलों